अनूप-कथा-साहित्य-८

बुझने न पाय

[सन् '४२ की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास]

अनूपलाल मण्डल
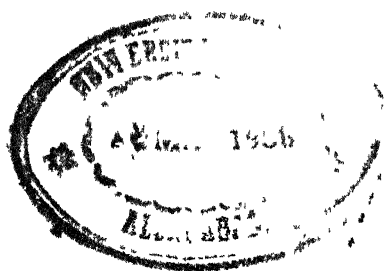
श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड

पटना ४

प्रकाशक
श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड
नयाटोला :: पटना ४

परिष्कृत संस्करण

होली सं० २००६ वि०

मूल्य सजिल्द ४)

मुद्रक
श्री मणिशंकर लाल
श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना ४

प्रथम संस्करण की भूमिका से

एक लंबी अवधि के बाद, यह मेरी सबसे अंतिम कृति (अभी के लिए मैं इसे अंतिम ही कह लूँ) पाठकों के समक्ष उपस्थित है। इसके सृजन के मूल में जिनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन अखंड रूप में विद्यमान रहे हैं, वे हैं हमारे साहित्यिक ऋषि आदरणीय भाई श्रीशिवपूजनजी सहाय। आपका मुझपर सदा से छलकता-सा स्नेह रहा है और आपकी उद्बोधक वाणी मेरे लिए क्लैव्यं मास्म गमः... मामनुस्मर युद्ध्य च... की याद दिलाती हुई मुझे अनुप्राणित करती रही है। उसीका परिणाम है कि जो लेखनी पाँच वर्षों से एकांत विश्राम ले रही थी, वह पुनः हाथ में आई। आज मैं आपके प्रति सश्रद्ध नतमस्तक हूँ।

बचपन से पढ़ने की जो मुझमें प्यास जगी, वह अबतक न बुझी; फिर लिखने की प्रवृत्ति ने होड़ बदा और मैं उस प्रवृत्ति-प्रवाह में बहता चला। क्या लिखता चला, मुझे स्वयं पता नहीं; पर अविराम गति में लिखता चला। तब भी नहीं जानता था कि मैं क्या लिख रहा हूँ और अब भी मैं पा नहीं रहा कि लिखना मेरे लिए इतना प्रिय क्यों है! प्रस्तुत कृति का प्रणयन उसी स्वाभाविक प्रवृत्ति का एक मूर्त्त रूप है।

साहित्य अपने समय का अनुगामी रहा है, साहित्य-स्रष्टा प्रयत्न करके भी अपने को उससे विलग नहीं रख सकता, मैं भी यहाँ अछूता न रह सका। फिर जान-बूझकर या अनजान में मुझसे जैसी कुछ रूप-सृष्टि हो सकी है, वह आपके सामने है। ये रूप आपको भायँगे ही— यह मैं जोर देकर नहीं कह सकता। फिर भी आपने यदि मेरी अन्य कृतियों की तरह इसे पसंद किया तो वह आपका सौजन्य होगा और मेरा सौभाग्य।

पटना, ५-५-४६ —अनूप

बड़े सौभाग्य और प्रसन्नता की बात है कि 'बुझने न पाय' का यह परिष्कृत दूसरा संस्करण पाठकों के हाथ आज जा रहा है। सन् १९४२ के भारतीय जन-आंदोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित यह उपन्यास पाठकों से समादृत हो चुका है, और आगे भी समादृत होगा—यह लेखक का विश्वास है। मनुष्य की कृति सर्वाङ्गपूर्ण नहीं होती, इसलिए इसमें भी खामियाँ हो सकती हैं· फिर भी लेखक को विश्वास है कि उसका प्रयास असफल नहीं रहा है।

—लेखक

प्रथम परिच्छेद

डा० शांतिस्वरूप लंबी अवधि तक एक बड़े शहर के हॉस्पिटल से सिविल-सार्जन का कार्य-भार सपादन कर प्रतिष्ठा के साथ अलग हट गए। अपने कार्यकाल मे यश के साथ अच्छी सपत्ति अर्ज्जन की, बड़े अच्छे बंगले बनवाए, बाग लगाया, अपने जन्म-स्थान के गाँव के आस-पास बहुत-सी जमीन खरीदी, उसी गाँव में एक उम्दा पुस्तकालय-भवन बनवाकर, अच्छी-खासी पुस्तकों से उसे सुसज्जित किया और अपने डीह पर एक अच्छा आलीशान मकान बनवाया। आज जब शहरो में लोगों की अपार भीड़ अस्त-व्यस्त-सी दीखी, तभी उन्होंने निश्चय किया कि शांति-पूर्वक जबतक वे जीवित हैं, उन्हें, उसी दिहात की ही शरण लेनी चाहिए और ऐसा विचार कर, एक दिन, अचानक वे अपने गाँव की ओर चल पड़े।

डा० शांतिस्वरूप अब शहर के नहीं—गाँव के एक सभ्य किसान हैं। किसानों के साथ उनकी अभिन्न आत्मीयता है, हृदय का बंधुत्व है, शालीनता है। आज उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि कभी उनका शहर के साथ घनिष्ठता रही हो। वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, बैठना-उठना—सभी बातो में शिष्टता, सरलता—जैसे सादगी ही उनके जीवन की प्रिय वस्तु रही हो,

जैसे अकृत्रिमता किसी ओर से भी उन्हे घेरने में कभी समर्थ न हो सकी हो। यही कारण है कि, जब से वे अपने गाँव में आ बसे तब से वे सभी के प्रियपात्र हो उठे—खासकर उनके, जो सब तरह से अपदस्थ समझे जाते हैं, जो सब तरह से त्रस्त हैं, संत्रस्त हैं, दीन हैं, दुखी हैं, अकिंचन हैं,—ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने सुख को सुख कहकर कभी स्वीकार नहीं किया, जिन्होंने हँसते दिन और इठलाती रातों के रंगीन सपने कभी नहीं देखे, जो अपनी बुभुक्षा परिश्रम के पसीने से नहीं भर सके, जिनकी प्यास सदैव अन-बुझी-जैसी ही कंठ को क्लेश देती रही!

मगर शांतिस्वरूप इतनों के प्रियपात्र होकर भी क्यों राजा बाबू के लिए विष का काँटा समझे गए, यह न तो डा० स्वरूप स्वयं कह सकते हैं, न उनके अन्य दूसरे ग्रामीण बन्धु ही! जब कभी कोई डा० साहब के पास आ ओंठों में इसका कारण उनसे पूछ बैठता है तब वे हँसकर इतना ही कह देते हैं—भाई, यह तो मनुष्य का स्वभाव है। यदि मैं उन्हें न अच्छा लगता हूँ तो मैं क्या करूँ?—और वह बात वहीं-की-वहीं शेष हो जाती है।

मगर बातें शेष नहीं हो पातीं। राजा बाबू गाँव के एक दबंग जमींदार हैं। उनकी अपनी एक शान है। रात को दिन और दिन को रात वे बनाना जानते हैं। हाकिम-हुक्कामों में उनकी बड़ी पैठ है। आए दिन एक-न-एक जल्सा उनके दरबार में हुआ करता है। उनके साथ बैठने-उठनेवाले अपनी एक प्रतिष्ठा और धाक समझते हैं। उनमें जी-हुजूरों की भी कमी नहीं। जी-हुजूरी इसलिए कि अन्य दूसरे लोग उससे भय खायें, उनके लिए सभी तरह के रास्ते खुले रहें। वे नहीं चाहते कि उनके रास्तों में कोई रोड़ा बनकर पड़ा रहे, वे रोड़े को उठाकर दूर फेंक देना चाहते हैं और इतनी दूर कि फिर वहाँ आने की कोई हिम्मत न करे, वह चूर-चूर होकर धूल बन जाय। हाँ, उनके सामने जो भी कुछ रहें, धूल बनकर ही रहें। इससे ज्यादा किसी का अस्तित्व वे

देख नहीं सकते। जब उनके दरबारियों की इतनी चलती-बनती है, तब खुद राजा बाबू के विषय में और कुछ कहना व्यर्थ है। राजा बाबू अब तक गाँववालों को इसी रूप में रखते आ रहे हैं। जैसे वे रहनेवाले ग्रामीण निरा धूल हों—धूल से अधिक उनका मूल्य नहीं। जैसे वे जीवित मृत की प्राण-हीन, किन्तु हिलती-डुलती हुई प्रतिमा हों।

मगर यहीं पर एक बड़ा प्रभेद है। जो एक के लिए धूल से अधिक अस्तित्व नहीं रखता, वही दूसरे के लिए विश्वात्मा का एक अंश-विशेष है। वह अंश-विशेष ही नहीं—वह तो स्वयं उनका उपास्य है, वही तो उसका नारायण है! डा० स्वरूप वैज्ञानिक हैं सही, पर उनमें विज्ञान गौण है, और ज्ञान प्रधान है। वे मस्तिष्क से किसी का मूल्य निर्धारित नहीं करते—हृदय से करते हैं। हृदय ही उनकी जैसे अपनी वस्तु हो, मस्तिष्क की प्रधानता वे स्वयं स्वीकार नहीं करते। फिर भी उनका मस्तिष्क उतना ही पुष्ट और सबल है जितनी उनकी देह-यष्टि। मगर वे सदैव से हृदयवान ही अधिक रहते आ रहे हैं। इससे उनकी आत्मा बलवती रही है। इसीसे वे सदैव प्रसन्नचित्त हैं। आपद-आशंकाओं की झंझा में निर्वात-दीप-शिखा की तरह अडिग, हँसकर दुनिया में चलनेवाले, दुनिया को सदेव सजीव की तरह माननेवाले। जीवमात्र को विश्वात्मा का अंश समझना और समझकर उनके प्रति प्रेममय, दयामय होना शातिस्वरूप का स्वभाव-सा हो गया है। फिर जहाँ एक ही परिधि के ओर-छोर पर राजा बाबू और डा० साहब रह रहे हो—वहाँ मन का मेल तो दूर की बात, प्रभेद की प्रमुखता ही अधिक निकट है। पर यह प्रभेद राजा बाबू की ओर से चाहे जैसा हो, जिस कारण हो, डा० स्वरूप अपने हृदय से उसे प्रभेद नहीं मानते। वे समझते हैं कि जबतक उनकी ओर से कोई भूल नहीं होती तब-तक दूसरों से हानि होने की संभावना नहीं। अगर हो भी तो उसके लिए दुःख क्या?

इसलिए डा० स्वरूप अपने जीवन की गति में निर्विघ्न बहते र
रहे हैं। उन्हे इधर-उधर, दायें-बायें, घूम-घूमकर देखना पर
नहीं—अपने रास्ते पर, दृष्टि को सामने की ओर रखे चलना
अधिक उपयुक्त जान पडता है। उन्हे न किसी की शिकायत र
शिकवा की परवाह है और न मान-सम्मान की प्यास। उन्हे
शांति चाहिए और शाति का निःश्वास निर्द्वंद्व वे ले रहे हैं।
इतना ही जानते हैं, वे इतना ही चाहते हैं। उनका काम अपनी गां
में चल रहा है।

वे प्रातः उठते और नित्य-नैमित्तिक कार्यों से छुट्टी पाक
वायुसेवन को निकल पड़ते—निकल पड़ते बड़ी दूर तक—गाँ
से बाहर—खुले मैदान में—जहाँ हरे-भरे खेत-ही-खत नजर आते
उन्हे यह हरियाली बहुत भाती और उषाकालीन हरियालिं
पर जब बाल सूर्य की सुकुमार किरणें अपने मुसकानों क
फुहारें बिखेर देती, तब वह ज्ञान-तपस्वी डा० स्वरूप अप
निर्निमेष नेत्रों से उस सुषमा को अपने-आप में भरकर आत्म
विभोर हो उठते हैं। लगता है जैसे उन्हें उपने स्वरूप का ज्ञा
भी उस क्षण नहीं रह पाता। पर कौन कह सकता है, वे सचमुच
अपने को उस समय अधिक खो देते हैं या उसी समय अपने-आप
और भी अधिक उज्जीवित, और भी अधिक प्राणवान—और, और अ
अधिक स्वरूपमय हो उठते हैं! जो भी हो, उन्हें यह प्रातःकाली
वायु-सेवन अधिक प्रिय है—और जब गाँववाले प्रातःकाल उठक
और कामों में लगे होते हैं, तभी वे देखते हैं कि, सूर्योदय की गां
के साथ स्वयं डा० साहब पूरब की ओर से टहलकर अपने स्थान प
आ रहे हैं।

मगर वे अपने स्थान पर आ भी नहीं पाते कि कभी तो रास
में ही कोई उनके सामने पहुँचकर हाथ बाँध खड़ा हो जाता है
और सुनाता है कि, उसके घर में अमुक बीमार है, अमुक क
अमुक रोग लग गया है, तब उनके लिए यह जरूरी हो जाता है

कि चलकर वे उसे देख ही ले क्यों न। और जब वे उस टोले में जा पहुँचते हैं तब सिर्फ उस बीमार को ही वे देख नहीं लेते, बल्कि उस आस-पास के घरों की खैर-कुशल जान लेना भी उनके लिए बड़ा आवश्यक हो उठता है। इस तरह से उनका काम प्रारम्भ हो जाता है। फिर तो उनके घर लौट आने पर दिन-भर आने-जाने-वालों का क्रम बना रहता है। मगर यह उनका अब व्यवसाय नहीं—सेवा मात्र है। व्यवसाय के लिए दो-एक डाक्टर-वैद्य उस गाँव में अवश्य हैं और उन्हें जब कभी डा० स्वरूप से राय-परामर्श की आवश्यकता बोध होती है तब वे बहुत प्रसन्न वदन उन्हे अपनी राय देते हैं। इस तरह उनकी जीविका को इनसे बल ही मिलता है, कुछ व्याघात नहीं। डा० स्वरूप को अवश्य एक स्वप्न है—और वह स्वप्न है—ग्रामीणों को किस तरह वे प्रसन्न और स्वस्थ देख सकें। वे सोचते हैं–बीमारी इतनी क्यों हैं? क्यों लोग आए दिन एक-न-एक रोग के शिकार बन बैठते हैं? उनपर उनकी अपनी दृष्टि है और उसी दृष्टि से वे चाहते हैं कि किस तरह आमूल सुधार किया जाय। मगर अभी तक तो उनका अन्वेषण है, अभी तो उनका प्रयोग आना ही चाहता है।

और उस प्रयोग में हाथ बटाने के लिए एक दिन जब अनायास ही उनकी एकलौती कन्या—अभया—एक सुसंस्कृता सुन्दरी अपने नागरिक जीवन की मधुरिमा लेकर, मेडिकल कालिज की अंतिम परीक्षा में पास हो, अपने पिता के पास आ पहुँची तब उस ग्रामीण नर-नारियों ने एक विस्मित दृष्टि से देखा—देखा कि यह जो अभी-अभी नारी-मूर्त्ति में उनके सामने है, वह क्या है? वह नारी है या देवी या और कुछ? और जो कुछ वह है, वह कुछ कम कौतुकमयी नहीं, कम विस्मयात्मिका नहीं।

हाँ, अभया कौतुकमयी ही है, विस्मयात्मिका ही है—न केवल सौंदर्य में, लावण्य में, रंग की रमणीयता में और न कमनीयता में ही, वरन् बुद्धि की प्रखरता में भी, विचार की गहनता में भी, साथ ही वय की चपलता में भी, तीक्ष्णता में भी। एक शब्द में यदि कहा

जाय तो कहा जा सकता है कि वह एक नारी-मूर्त्ति में अदम्य दुस्साहस है, झंझा है, वात्याचक्र है, सिंधु की गर्जन और भैरव की लास्य है।

और ऐसी अभया जब अपने पिता से कहती है—तुम यहाँ क्यों आए पिताजी, ये गाँववाले कितने उजड्ड हैं न बैठने का शऊर, न बोलने का सलीका, आखिर ऐसी जगह कोई आदमी रह सकता है भला, तब उसके पिता हँसते हुए कहते हैं—यहीं तो आदमी रह सकता है, अभय, आदमी नाम का जीव यहीं रह सकता है—दूसरी जगह नहीं। शहर में जो रहता है—वह तो निरा एक मशीन है। उसे उतनी फुर्सत कहाँ कि वह घूमकर देखे औरों को—औरों की बात तो दूर रहे, अपनेआपको ही तो देखे, देखे कि वह क्या है, उसके जीवन का उद्देश्य क्या है, वह किधर जा रहा है और क्या करने जा रहा है। उतना भी उसे सोचने-विचारने का अवकाश कहाँ? आखिर वैसी जिन्दगी किस काम की, जिसमें सरसता नहीं नवीनता नहीं, न जीने की कोई साध, न मन की कोई हवस? ओह वह भी कोई जीना है!

—जीना!—आश्चर्य से अपने पिता की ओर देखती हुई हँसकर तब वह अभया पूछ बैठती है—यह क्या कह रहे हो, पिताजी, जिन्हें हम यहाँ देख रहे हैं, ये भी क्या जीवित हैं? क्या इन्हें जीवित कहना इनका उपहास करना नहीं है?

—उपहास!—डा० स्वरूप अपनी पुत्री के प्रश्नों को सुनकर कुछ क्षण तक मौन हो जाते हैं। उन्हें शीघ्र कुछ उत्तर देते नहीं बनता। अभया ऐसी नहीं है कि उसे ऐसी-वैसी बातें कहकर भुला लिया जाय। वे कुछ क्षणों तक ऊहापोह में पड़े रहते हैं फिर गम्भीर होकर वे बोल उठते हैं—नहीं, उपहास मैं नहीं कर रहा, अभय, जो सत्य है, वही मैं कह रहा था। तुम देखती हो, ये कितने सूधे हैं, सरल हैं, निष्कपट हैं। जो दिल में है, वही होठों पर, यहाँ भीतर कुछ और बाहर कुछ—सो न पाओगी। यहाँ

सच, सच है और झूठ, झूठ। ये सच को झूठ और झूठ को सच बनाना नहीं चाहते—नहीं जानते। यहाँ कपटाचार, छल-छंद नहीं। यहाँ आम को इमली कहकर नहीं पुकारा जाता। इतनी निष्कपटता तुम अन्यत्र न पा सकोगी। ये दुःख में रहना पसन्द करते हैं, पर सुख के लिए दूसरों की जेब नहीं कतरते। फिर जिसने जान-बूझकर दुःख को अंगीकार कर लिया है, उसके सामने दुःख रह ही कहाँ गया, अभय। तुम इनके बाहरी स्तर को देखकर समझती हो कि ये रुखड़े हैं, अधिक कठोर हैं, उद्दण्ड हैं; पर नहीं, अगर तुम इनके अंतःप्रदेश में घुसकर एक बार देखने का प्रयत्न करो तो देखोगी कि ये कितने निर्मल, कितने स्निग्ध, कितने दयामय और कितने हृदयवान हैं। और जिसका हृदय निर्मल नहीं, स्निग्ध नहीं, दयामय नहीं, उसे क्या तुम मनुष्य कहोगी अभय? तभी तो मैं कह रहा था······

अभया कुछ क्षणतक स्तब्ध रहकर अपने पिता की ओर देखने लगती है। फिर खिंची-खिंची-सी वह बोल उठती है—तुम्हें तो भीतर-भीतर की बातें ही अधिक प्रिय हैं, बाबूजी, तुम तो ऐसा कहोगे ही। अगर न कहते तो ऐसों के बीच आज तुम्हें धूनी रमाने की शायद जरूरत नहीं पड़ती। मगर··· मैं···मैं···ओह, मैं··· बाबूजी, माफ करो—मैं यहाँ जी न सकूँगी—हाँ, सच कहती हूँ—मैं जी न···

—यहीं तो जी सकोगी, बिटिया—यहीं तो···

और कहते-कहते डा० स्वरूप ठहाका मारकर हँस पड़ते हैं। अभया अपनी वक्रता लिये हुए वहाँ से अन्यत्र चली जाती है। डा० स्वरूप उसकी ओर घूमकर देखते हुए हँसते-हँसते ही बोल उठते हैं—पागल है, पागल!

द्वितीय परिच्छेद

डा० स्वरूप के लगातार कई सताने हुईं; पर सब-की-सब अकाल काल-कवलित हुईं, अन्त में जो बची और बच रही है—अभया वही है। यही कारण है कि पिता का सारा स्नेह इसी पर केंद्रित है। अभया जैसे ही भूमिष्ठ हुई, उसकी माता चल बसी; मगर उसकी माता के देहावसान से डा० स्वरूप विचलित न हुए—न हुए इसलिए कि उनकी प्रियतमा भार्या ने अपनी धरोहर के रूप में प्रसूतिकागृह में ही, उस नवजात शिशु को सौंपते हुए उनसे कहा था—देखना, इसकी सँभाल रखना। क्या हुआ—यह पुत्री है, पर पुत्र से कम यह ओजस्विनी न होगी—इतना मैं कहे जाती हूँ—और डा० स्वरूप ने भी उस आसन्न-मृत्युमुखी को आश्वासन के शब्दों में कहा था—पुत्र-पुत्री का विभेद मेरे सामने कोई मूल्य नहीं रखता, सुखदे। तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारी थाती क्या होकर रहेगी—यह तो समय ही बतलायगा। काश, तुम जीवित रहतीं······

और डा० स्वरूप ने सचमुच अपनी प्रतिज्ञा बड़ी प्रतिष्ठा के साथ निबाही। उन्होंने अभया को पाला-पोसा और अपने हृदय के रस से उसे संजीवित किया। उस आदर-यत्न से पाली-पोसी गई मातृ-हीना कन्या अभया ने जब दुनिया को देखा तब उसने पाया कि वह अपनेआपमें हँसती हुई—चाँदनी बिखेरती हुई,

सभी ओर से और सब तरह प्रसन्न है, दुख नाम की वस्तु वहाँ जैसे है ही नहीं; जो इच्छा की, उसकी उसी क्षण पूर्ति। न कृपणता, न संकीर्णता, न उदासीनता, न कोई न्यूनता।

उन्होंने उसे उसी बचपन से पुरुष के रूप में रखा। उसे पुरुष-रूप में रखना ही उनके जी को अधिक भाता, ढीला पाजामा, कमीज—यही उसकी पोशाक रहती। केश गर्दन तक आकर कटे हुए, बचपन से ही खूब दौड़ना-कूदना, उसके बाद घुड़सवारी, घुड़सवारी में होड़ बदना। वे आप भी अच्छे सवारो मे थे। यही कारण था कि अभया में पुरुष-प्रकृति ही प्रधान रही; पर जन्मतः वह नारी है, इसलिए नारीत्व भी उससे कुछ दूर जा नहीं पाता। तीक्ष्ण तो वह थी ही, दर्जे में कभी किसी से पीछे न रही—न सिर्फ पढ़ने-लिखने में ही, वरन् लड़ाई-झगड़े में, मार-पीट में—किसी बात में उन्नीस नहीं—सदैव बीस ही रही। स्वभाव से उद्धत, चलने में तेज, बोलने में वाचाल, झगड़ने में जमीन-आस्मान को एक कर देनेवाली, किसी की आँखें न सही, किसी का ताव न सहा, किसी की शान को अपनी शान के सामने बढ़ी हुई न देखा, ऐसी प्रखर थी वह।

और तभी तो उसके पिता ने उसका नाम अभया रखा—एकांत उपयुक्त।

और इस तरह अभय कदम-कदम बढ़ते हुए, मंजिल-पर-मंजिल पार करते, बहुत कम उम्र में, बी० एस-सी० परीक्षा में सर्वप्रथम रही। तब उसके पिता ने एक निश्चिन्तता की साँस ली और उसे बुलाकर पूछा—अब क्या चाहती हो अभय, जो चाहो—कहो···

—मैं डाक्टर बनूँगी।

—डाक्टर!—पिता हँसकर बोले—क्या बाप का पेशा अख्तियार करोगी अभय, चीरना-फाँड़ना······

—हाँ, चीरना-फाँड़ना ही मुझे अच्छा लगता है बाबूजी—अभया हँसी—मैं जोड़ना क्या जानूँ। जोड़ना-तगड़ना मुझे अच्छा नहीं लगता। सच कहती हूँ, बाबूजी, मुझे डाक्टर ही बनने दो।

—मगर, डाक्टर का काम जोड़ना-तगड़ना ही है, अभय, यह तुम्हें न भूलना चाहिए—हँसकर डा० स्वरूप ने कहा।

—मगर, पहले तो चीरना-फाड़ना ही होगा, बाबूजी, यह भी आपको याद रखना चाहिए—हँसती हुई ही अभया ने उत्तर दिया।

और पिता-पुत्री—दोनों हँस पड़े और हँसते-हँसते ही पिता ने कहा—तो उसे भी पूरा कर लो, बेटी। मैं रोकूँगा नहीं।

और आज, फल-स्वरूप, अभया एम० बी०, बी० एस० परीक्षा में सफल तो रही ही, सर्जरी में सर्वप्रथम रही।

जो एक दिन मारने-पीटने मे पटु थी, आज सर्जरी के तेज अस्त्रों को चलाने में उतनी ही दक्ष, उतनी ही पटु और उतनी ही निष्णात है।

और सजरी में निष्णात उस अभया ने जब अपने पिता से, एक दिन पूछा कि अब मैं क्या करूँ? क्या इतने दिनों की तपस्या, यों ही, इस दिहात में व्यर्थ जायगी? पिताजी, क्या कहते हो? तब उस चतुर पिता ने उत्तर में कहा—तपस्या व्यर्थ की चीज नहीं हुआ करती, बेटी। जिस चीज के लिए तुम्हारी वह अनरवत तपस्या थी वह तो तुमने पूर्ण कर ली है। रहा अब उसका कार्यरूप में संचालन, सो वह भी हो लेगा। तुम्हें उसके लिए चिन्ता न करनी पड़ेगी। और अगर उसका संचालन न भी करना पड़े तो इससे क्या? विद्या यों व्यर्थ की चीज नहीं है, अभय! वह तो मनुष्य-तन का एक शृंगार भी है—शोभा भी है। तुम अभी दिहात की बात कह रही थीं। आज दिहात में ही तो तुम-जैसे डाक्टरों की आवश्यकता है। जहाँ के लोग पैसे के अभाव में अपनी चिकित्सा नही करा सकते, जहाँ के लोग यह नहीं जानते कि रोग कहाँ से, कैसे और क्यो फूट निकलते हैं और उनसे बचने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए। आज उनकी आँखें खोलना क्या कम बड़ी बात है? इससे बढ़कर तुम्हारी विद्या का सुन्दर सदुपयोग और कहाँ हो सकता है? अभय, मैं चाहता हूँ कि यहाँ के लोग स्वास्थ्य का साधारण ज्ञान रखें, उन्हें यह बताया

जाय कि रोग की उत्पत्ति कहाँ से होती है और किस तरह उनसे उन्हें बचाया जा सकता है। क्या यह काम कुछ सामान्य है, अभय ? मगर, खैर, अभी-अभी तुम बहुत परिश्रम कर आई हो, बेटी, अभी तो तुम्हे कुछ दिनों के लिए पूरा आराम चाहिए ही। फिर देखा जायगा। काम की क्या कमी है ?

डा० स्वरूप बोलकर चुप हो गए। अभया भी कुछ क्षणों तक चुप हो उनके विचारो पर सोचती रही, फिर वह आप-ही-आप बोल उठी—तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध मुझे कुछ कहना नहीं है, बाबूजी; पर मैं समझ नहीं पाती कि, जो काम खुद अपने-आप तुम कर सकते हो, उसकी ओर मुझे क्यों घसीटना चाहते हो, जबकि मैं पाती हूँ कि जो काम तुम्हारे लिए आसान हो सकता है, उसे तुम मुझपर क्यों सौपो ? मुझे इससे भिन्न ही क्यों न रहने दो, मैं क्यों न अपनी राह अपने से खोज निकालूँ ? क्या यह मेरे लिए उचित नहीं ?

—क्यों नहीं, क्यों नहीं, अभय—हँसते हुए डा० स्वरूप बोल उठे—मैं जनता हूँ, तुम ऐसा क्यों कह रही हो। पर, मुझे इसके लिए कोई खद नहीं। मैं जानता हूँ, तुम्हारा यहाँ मन नहीं लगता, तुम्हारी तबीयत यहाँ जमती नही दीखती—सो तो ऐसा होगा ही। तुम्हारे लिए मन लगाने का यहाँ साधन नहीं, सोसाइटी नही, तुम अपनेआपमें स्वतन्त्र हो, मैं तुम्हारी स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं करना चाहता। मैं उसका आदर करता हूँ। तुम अपनी राह अपने से तैयार कर सकती हो। मुझे तुमपर गर्व है। तुमपर विश्वास है, पर कुछ दिन क्यों न यहाँ रहकर देखो, फिर जब इच्छा होगी, जैसी इच्छा होगी, कर लेना। मैं रास्ता रोककर खड़ा न हो सकूँगा—इतना भर तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ। क्यों, ठीक है न ? क्या कह रही हो ?

—मुझे और कुछ कहना नहीं है, बाबूजी। मैं तुमसे बगावत नहीं करती, जो भी कहोगे—वही होगा, वैसा ही होगा।

अभया वहाँ से उठकर चल पड़ती है और डा० स्वरूप बाहर की ओर चल देते हैं।

जो अभया नागरिक जीवन से इतना ओत-प्रोत है, उसके लिए निरा दिहात का वातावरण उसके मानस-स्तर को अचचल किये है। वह नहीं चाहती है, वह अचंचल होकर ठूँठ-सी पड़ी रहे, उसमें हलचल न हो, वह स्तब्ध होकर नहीं रहना चाहती। वह पाती है कि, यह जो स्थिरता है, वह तो नितांत शीतल है, बर्फ से भी अधिक शीतल। और शीतलता जीवन नहीं है, उसे तो उष्णता चाहिए, उष्णता के अभाव में वह पीलापन के अधिक निकट पहुँच गई है, उसे लालिमा चाहिए, उस लालिमा में तरलता न हो, वह ठोस हो, वह सघन हो और सघनता के लिए वह विह्वल-बेचैन हो उठती है। वह चारो ओर दृष्टि दौड़ाकर देखती है—देखती है कि उसके आस-पास, जहाँ तक उसकी दृष्टि जाती है, फूस के छोटे-बड़े झोपड़े है, झोपड़ों की घनी पंक्तियाँ हैं, उनमें औरत-मर्द बूढ़े-बच्चे किलबिल-किलबिल करते हैं। कहीं से धूएँ निकलते हैं, कहीं से कवल धूल-ही-धूल निकलकर, हवा के साथ बहती हुई, वातावरण को धूमिल किये छोड़ती ह। वह पाती हैं, बहुत-से औरत-मर्द बाहर खेतो से घास या अनाज के बोझों को सिर पर लादे हुए हँसते-बोलते आ रहे हैं, कुछ ही दूरी पर वह पाती है कि छोटे-छोटे चरवाहे खेतो से मवेशियों को चराकर, धूल उड़ाते हुए गाँव की ओर आ रहे है। शीत का दिन है; पर उनके शरीर पर ढँकने को पूरे वस्त्र नहीं—जो भी है, काफी गन्दे! अभी-अभी कुँए पर चारों ओर से घेरकर जो औरतें पानी भर रही हैं, उन्हें भी तो जैसे सर्दी लगती नहीं, पहनने को उनकी वे गन्दी साड़ियाँ और बदन पर गन्दे सलूके···उफ, यही दिहात ह! बाबूजी का दिहात ···जहाँ उनके देवता का निवास है···उफ कितनी गहरी गरीबी के शिकार है ये अभागे मानव! और यही शोभा है इस दिहात की!!

अभया इससे अधिक सोच नहीं सकती, वह अपनी जगह से उठ पड़ती है, वह अपने बदन को आईने के पास आकर

देखती है—देखती है, और उसे लगता है, जैसे उसकी साँस बहुत धीमी गति में चल रही है। लगता है, जैसे उसका दम घुट रहा है। ओह, वह इस तरह जिन्दा नहीं रह सकती, उसे बाहर की हवा चाहिए—वह शुद्ध और खुली हवा के बिना जी नहीं सकती। वह अपने घर में ही किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहती है। वह सोच नहीं सकती कि उसे अब क्या करना चाहिए; पर वह कुछ समझ नहीं पाती। वह वहीं चक्कर काटने लगती है, फिर भी उसका मन शात नहीं होता, वह कमरे से बाहर निकल पडती है, दरवाजे पर आती है, दरवाजे की फुलवारी में कुछ क्षण घूम-घूमकर फूलो को देखती है, उसी क्षण वह पाती है कि उसका नौकर किसुन फूल के पौदों में पानी पटा रहा है। किसुन उसकी ओर देखता है और देखते ही हँसकर पूछ बैठता है—क्या कुछ फूल तोड़ दूँ? ये गेंदे—नहीं, गुलाब! देखो, ये कैसे फूल रहे हैं? दूँ, तोड़ दूँ······

अभया कुछ क्षणतक उसी तरह उदास रहती है, फिर कहती है—नहीं नहीं, पेड में ही रहने दो, वहां अच्छा लगता है······

किसुन कुछ समझ नहीं पाता। वह सीधा है, बूढ़ा है, वह सदा से गाँव में ही रहा, वहीं बालक से जवान हुआ और जवान से बुढ़ापे में आया; पर कही हिला नहीं—डोला नहीं! वह अभया की ओर देखता है; पर वह समझ नहीं पाता कि किस तरह वह उसकी अभ्यर्थना करे—फूल तोड़कर वह देना चाहता था—आखिर अपनी अभ्यर्थना प्रदर्शित करने के लिए ही तो! पर अभया ने उसकी कद्र न की, उसने उसके जी को न जाना। किसुन अब भो अपनी आँखों में कौतूहल भरकर ठिठका-सा, खोया-सा उसी तरह खड़ा है। पटाने के लिए भरा हुआ कलसा उसके हाथ में ज्यों-का-त्यों अटका है ····

मगर अभया चार-पाँच कदम आगे बढ़ते ही रुककर बोल उठी—तुम गुलाब तोड़ना चाहते थे न किसुन, लाओ एक तोड़कर, देखना, एक से ज्यादा नहीं······

और किसुन अपनेआपमें हरा हो उठा, और हँसते हुए ही बोला—एक ही तोड़ूँगा, बेटी रानी। देखो, ये कितने फूले-फूले हैं। मैं तो खुद नहीं तोड़ना चाहता! इतनी सुन्दर फुलवारी और कहाँ देखने को मिलेगी? डाक्टर साहब को इन फूलों से कितना प्यार है? जभी तो वे इनका इतना सँभार रखते हैं......

किसुन बड़े यत्न से एक छोटी-सी टहनी से लगे गुलाब का एक फूल तोड़कर उसके हाथ पर रख देता है। अभया उसे लेकर आगे बढ़ जाती है......

अभया आगे बढ़ जाती है। उस समय सूर्य की किरणों से पश्चिम का क्षितिज रंगीन हो उठा है, दूर पहाड़ की शिखाएँ उन रंगों से और भी रंगीन हो उठी हैं। अभया उस ओर देखती है, उसका हृदय आह्लादित हो उठता है। वह घर से ब हर निकलते ही सड़क पर आ जाती है और उसपर बढ़ निकलती है; पर उसे कुछ पता नहीं है कि वह कहाँ जा रही है, क्यों जा रही है और कहाँ तक वह जायगी। वह जा रही है—बढ़ती हुई जा रही है। इस तरह वह बहुत दूर निकल पड़ती है। उस समय लोग सिमटे हुए, खेतो से थके-माँदे अपने-अपने घरों की ओर लौट रहे हैं। वे लौटनेवाले जब अभया को अकेली और उन्मुक्त उस रास्ते पर बढ़ते हुए देखते हैं, तब उनकी डगें शिथिल पड़ जाती हैं और उचक-उचककर उसकी ओर घूरने लगते हैं। अठारह-उन्नीस की हृष्ट-पुष्ट तरुणी अपनी सौंदर्य-श्री को बिखेरती हुई, कहाँ जा रही है, किसकी खोज में जा रही है, वे लौटनेवाले कुछ समझ नहीं पाते। मगर अभया का इस ओर ध्यान नहीं है। कौन क्या कहता जा रहा है उसके विषय में, उस ओर वह घूमकर देखना नहीं चाहती, वह तो बढ़ते हुए जाना चाहती है, जैसे उसे आगे बढ़ने के सिवा और कुछ काम रह नहीं गया है। जैसे वह कहीं विश्राम लेना ही नहीं चाहती।

मगर उसे विश्राम लेना ही पड़ा। जब उसने पाया कि बाहर की सर्द हवा उसके खुले केशों को ही न केवल छितरा रही है,

वरन् उसके अंग-प्रत्यंगों को भी झकझोर रही है, तब वह शीत का अनुभव करती है। ओह, उसने गर्म कपड़े तो घर पर ही छोड़ रखे हैं। अब तो सूर्य भी जाने कब अस्त हो गया, धूमिल संध्या देखते-ही-देखते कुछ सघन हो आई और पूरब क्षितिज के ऊपर त्रयोदशी का चाँद हँसता हुआ दीखने लगा! तब वह अपनी सीमा पर ठिठकी-सी पड़ी रही। पहाड़ अब भी दूर था, उसकी इच्छा थी कि वह टेकरी पर चढ़कर डूबते हुए सूर्य की शोभा निहारेगी; पर वह गाँव से पहले-पहल बाहर निकली है, उसे उसका ज्ञान भी नहीं है कि पहाड़ कितनी दूर पर है। तब वह ललचाई-जैसी खड़ी रह जाती है, पर और अधिक खड़ी नहीं रह सकती, वह लौट पड़ती है। लौटने में ही उसे सतोष का अनुभव हो रहा है। वह बड़ी निर्भय मुद्रा में जिस तरह अकेली निकली थी, उसी तरह उस चाँदनी रात में अकेली लौट रही है—न कोई चिंता, न द्वन्द्व, उन्मुक्त होकर, निर्बंध होकर।

मगर जैसे ही वह गाँव के पश्चिमी छोर पर आ पहुँचती है वैसे ही वह चंचल हो उठती है; पर वह क्यो चचल है—उसे कारण का कुछ पता नहीं लगता। उसकी चाल मद पड़ जाती है, वह किंचित् अस्त-व्यस्त हो उठती है, फिर भी उसका ध्यान अपनी जगह संयत है। वह अपनी चाल को द्रुत करना चाहती है, पर वह कर नहीं पाती। उसी समय उसके कानों में रोने की आवाज प्रखर हो उठती है, तब वह समझती है कि क्यों उसकी चाल धीमी पड़ी हुई है। शायद यही रोने की आवाज तो बहुत धीमी गति में आकर उसके कानों से टकरा-टकरा रही थी इतनी देर तक! अब वह समझ गई कि अबतक जो आवाज आ रही थी, वह यही थी और इसी घर से आ रही थी। वह किंचित् रुकी, फिर वही रोने की आवाज आई! ओह, यह आवाज! कितनी कष्ट-दायक, कितनी पीड़ित!

अभया रुकी थी, पर अब रुकी न रह सकी और जिधर से

आवाज आ रही थी, उसी ओर अयाचित अतिथि की तरह वह अपनी द्रुतगति में चल पड़ी।

दिहात की दरिद्रता का इतना वीभत्स रूप हो सकता है—अभया को इसका रंचमात्र भी अनुभव न था; पर जैसे ही वह उस घर में घुसी, उसे लगा—दरिद्रता नग्न होकर उसके सामने जैसे बिलख रही है ! आजन्म सुख की सेज पर पली, बढ़ी और आनन्द के हाथों सँवारी वह अभया भग्नगृह के भग्नतम देह-यष्टि में सिसकती-बिलखती एक बूढ़ी को देख सिहर उठी। जिस डा० अभया ने जाने कितने शरीर पर तीक्ष्ण अस्त्रों का सफल नृत्य करते देखा होगा और स्वयं अपने हाथों उन्हें नचाया होगा, आज वह स्वयं सिहर उठी है—यह कितनी बड़ी विडंबना है ! नहीं, यही तो नग्न वास्तविकता है।

तृतीय परिच्छेद

अभया ने उस दिन मरणोन्मुख वृद्धा की जितने बड़े धैर्य के साथ परिचर्या की, वह एक स्मरणीय घटना है। रोगियो की सेवा की जा सकती है, परिचर्या हो सकती है, उनकी दवा-दारू भी उचित मात्रा में की जा सकती है, पर उन्हें मृत्यु-मुख से लौटाना सेवक का, परिचायक का या डाक्टर का काम नहीं हो सकता। वह तो उसका काम है जिसने जीवन दिया है। जीवन-मृत्यु जिसका चिरंतन अभिनय है—लीला है! पर यदि मृत्यु के मुँह से निकाल लेना मनुष्य के वश की बात होती तो अवश्य अभया का नाम बड़े आदर से लिया जाता! फिर भी अभया को सतोष है और संतोष है इसलिए कि उस वृद्धा के लिए उसने उस रात को कुछ उठा न रखा।

अभया जब वहाँ से लौटी तब रात के ग्यारह बज चुके थे। उसे जो कुछ वहाँ करना चाहिए—सब-कुछ कराकर जब बूढ़ी को नींद हो आई, तब उसने एक निश्चिंतता की साँस ली और तब उसे याद हो आई कि अब उसे घर लौटना ही चाहिए। उसने एक बार रोगिणी की नाड़ी पकडी, फिर उसकी ओर देखा, तब वह बोली—सुन, चँपी, तू घबराना नहीं, अब नींद हो आई है, इसे इसी रूप में सोने दे। अगर नींद टूट जाय तो सिर पर पानी की

पट्टी चढ़ा देना और चढ़ाए रखना; देखना, वह सूखने न पाय। मैं अब जाती हूँ, अपने घर से कम्बल भिजवाए देती हूँ। क्यों, घबरायगी तो नहीं? मैं जाऊँ?

भोली ग्यारह साल की चंपी उत्तर में कुछ न बोली, केवल उसने सिर हिला दिया।

अभया घर से बाहर आई और आँगन से बढ़कर ज्योंही दर-वाजे की ओर मुड़ने को ही थी कि वह फिर लौटी और लौटकर बोल उठी—तूने मेरा घर देखा है री चंपी?

—हाँ, देखा क्यों नहीं, वह तो सफेद-सफेद पक्की गढ़ी-जैसी है...

—पक्की गढ़ी—शब्द सुनकर अभया भीतर-भीतर हँसी, पर हँसने का वक्त वह न था, दूसरा वक्त होता तो अभया खुलकर हँसती और उसे बताती कि पक्के के जितने मकान होते हैं, सभी गढ़ी नहीं होते; मगर इस समय वह इतनी ही बोली—हाँ, ठीक, तूने देखा है। अगर रात को ऐसी बात हो जाय जब कि मेरी जरूरत तुझे जान पड़े, तो तू भागती हुई मेरे पास आना। अच्छा!

—अच्छा।—चंपी ने अपनी स्वीकृति जतलाई।

और अभया चल पड़ी। उसने घर पहुँचकर देखा कि उसके पिता उस समय बिछावन पर पूरी तरह रजाई से अपने तन को ढँके, लेटे-लेटे ही कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं। वह उनके कमरे में प्रवेश करते ही आप-ही-आप बोल उठी—मुझे आज बहुत देर हो गई, बाबूजी, नहीं, क्यों!

—ओह, अभय—चौंककर उसकी ओर एक नजर डालते हुए डा० स्वरूप बोल उठे—देर तो हुई ही, मगर अबतक थी कहाँ बेटी? न जान-न पहचान, मैं समझ नहीं पा रहा था कि आखिर तुम गई कहाँ? मगर मुझे कोई चिंता नहीं थी! यह दिहात है न। यहाँ के लोग निश्छल होते हैं, सूधे-सादे! भय की बात नहीं। मगर थी कहाँ, अभय!......मगर, यह क्या, तुमने गर्म कपड़े क्यों न रख लिये थे

अपने साथ ? सर्दी लग जायगी—अभय, सर्दी ! यह दिहात है न ! यहाँ सर्दी ज्यादा पडा करती है ।

—सर्दी मुझे न पकड़ेगी, बाबूजी !—हँसती हुई अभया बोली और बोलते-बोलते ही अपने कमरे में जाकर अलवान लपेट आई। फिर उसने अपने विलंब का कारण संक्षेप में कह सुनाया, फिर उसे याद हो आई कि अभी तो उसे रोगिणी के लिए अपने घर से कम्बल भिजवानी है, तब वह दौड़ी हुई अपने स्टोर रूम में गई और वहाँ से एक चुनकर किसुन के लड़के सुगला को बुलाकर कहा—जा चंपी के घर इसे लेकर, उसे दे आ ।

सुगला समझ न सका कि कौन चंपी है और कहाँ उसे जाना है, वह अभया के मुँह की ओर ताकने लगा ।

अभया ने उसे देखा कि वह अकबक खड़ा है, वह बिगड़ी और बिगडकर बोली—क्यों, इस तरह खड़ा क्यों रह गया ! जा चंपी के यहाँ ! क्या चपी को नहीं जानता ?

—नहीं ।

—नही ! गाँव में दिन भर चक्कर काटता है और जानता है नहीं !—अभया तुनुककर बोली—निकम्मे लड़के !

फिर उसने कौन सी चंपी है, उसका पूरा पता बतलाते हुए पूछा—क्या अब भी उसे नहीं जानता ?

—अब जान गया—कहकर वह बाहर की ओर कम्बल लेकर चलता बना ।

अभया, तब, अपने पिता के पास आई और पैर लटकाए पलंग के एक सिरे पर बैठते हुए बोली—जीने की उम्मीद तो बहुत कम है, क्या ऐसी हालत में और कुछ किया नहीं जा सकता ?

डा० स्वरूप उगँठकर बैठते हुए बोले—मेरा खयाल है, वह बच जा सकती है; फिर देखा जायगा, अभी जब उसे नींद हो आई है, तब आसार कुछ बुरा नहीं। मगर, रात ज्यादा हो रही है, रसोई ठंढी हो रही होगी। जाओ अभय, पहले जो करना चाहिए—करो ।

—और तुम ?

—मैं खा चुका हूँ ।

अभया जाने संभलकर क्या कहने आई थी, पर वह कह नहीं पाई। वह कुछ क्षण तक द्वंद्वात्मक अवस्था में पडी रही; पर पड़ी न रह सकी, वह उठकर दूसरे कमरे की ओर चल पड़ी।

डा० स्वरूप ने लैंप की बत्ती धीमी की और सारा शरीर ढीला कर लेट गए। आज डा० स्वरूप के ओठो पर अतीव प्रसन्नता थी और हृदय में अनिर्वचनीय उल्लास !

किन्तु अभया को न उल्लास है न प्रसन्नता ! वह अपने पलंग पर आ लेटी है, सारा शरीर मखमली इटालियन लेप से ढँका है; पर उसकी आँखों के सामने उस रोगिणी वृद्धा का, विभीषिकामयी नग्न दरिद्रता के बीच, अवश-शिथिल शरीर स्नेह-हीन दीप-शिखा की तरह निस्तेज, बिलकुल बुझने-बुझने की अवस्था में पड़ा है—और केवल यही नहीं, वह चपी जिसकी आँखों के आँसू सूख-सूखकर उसकी आकृति को ही न केवल विकृत बना रहे हैं, वरन जिसका भविष्य स्वयं एक समस्या बनकर भीमाकार हो उठा है—वह कितनी करुण है, कितनी भोली, कैसी अनजान !

अभया लेटी है सही, पर वह चौंक उठती है, उसका ध्यान बाहर की ओर लगा है, लगता है जैसे किसी के आने की आहट तो नहीं आ रही हो; पर वहाँ किसी तरह की आहट नहीं है। हाँ, बाहर से, बहुत दूर पर से कुत्ते के भूँकने की आवाज, बहुत ही वीभत्स रूप में, उसके कानों से अवश्य टकरा उठती है। वह निश्चिंतता की साँस लेती है, फिर उसका ध्यान अपनी जगह आ टिकता है, वह पाती है कि, नहीं, अभी वह रोगिणी लेटी ही पड़ी है, गहरी नींद में है। हाँ, उसका उपचार काम कर गया है, चंपी ध्यानस्थ हो रोगिणी की ओर देख रही है, उसके घर की वह मिट्टी के दीप की आखिरी बत्ती अपने आप में जलकर धुआँ उगलकर अपनी अंतिम साँस छोड़ रही है, उससे निकली हुई धुंधली रोशनी चंपी के मुँह की एक ओर, केवल

गाल के निचले हिस्से में पड़ रही है। चंपी सोच रही है अपनी स्वास्थ्यवती तरुणी डाक्टर के प्रति जो उसके समीप अयाचित अतिथि की तरह आकर उसे दिलासा देते हुए कह रही है—तेरी माँ मरेगी नहीं—हर्गिज नहीं, तू चिंता मत कर······

अभया इसी तरह जाने क्या-क्या सोच जाती है, आज उसकी चिन्ता का कोई कूल-किनारा जैसे मिलता ही नहीं। मगर, अब वह अपने चिन्ता-भार से थक गई है, अलसा गई है। तब वह एक बार अँगड़ाइयाँ लेती है, वह जरा तनती है, शरीर को बिलकुल ढीला छोड़ देती है और लेप को और जरा ऊपर खींचकर अच्छी तरह उससे अपने मुँह को भी ढँक लेती है। लैंप अपनी जगह उसी तरह जल रही है, पर मुँह ढँक जाने के कारण उसे प्रकाश नहीं—अंधकार-अंधकार ही दीख रहा है। वह अपनी आँखें भी अब बंद कर लेती है।

अभया सो गई, और गहरी नींद में सोई, फिर न जाना कि कब रात शेष हुई, कब सुबह हुई और जाना तब, जब कि बाहर से प्रातः वायु सेवन कर, और कई घरो का चक्कर लगाते हुए, कई आदमियों के साथ डा० स्वरूप लौटकर दरवाजे पर आ गए हैं। वह इत्ते दिनचढ़े तक सोई रहने पर अपने आप पर खिझी, वह हड़बड़ाकर उठी और नित्य-नैमेत्तिक कामों के लिए चल पड़ी।

मगर अभया जिस स्वप्न को लेकर सोई थी वह स्वप्न उसको निद्रा के साथ ही शेष हो चुका था। अब उसके सामने जो कुछ था—वह प्रकाश था—स्वच्छ, निर्मल प्रकाश······और वह अपने निर्मल प्रकाश में रात्रि के सारे अवसाद खो चुकी है। अभी-अभी सद्यः-स्नाता के रूप में स्वच्छ वस्त्रो से आवृत, केश-लटों को हाथ से सँभाले धूप में एक कोच पर आ बैठी है। मस्तिष्क शात है, मन प्रसन्न है और हृदय आवेगमय। वह मन-ही-मन जैसे कुछ गुनगुना रही है। तभी वह सुनती है जमींदार की ड्योढ़ी की ओर से आती हुई रसन-चौकी-शहनाई की आवाज—ओह, वह कितनी मधुर—कितनी मधुर!···अभया अपने आपको छोड़ बैठती है उस आवाज की ओर!

जाने यह आवाज उसे इतनी मधुर, इतनी उत्तेजक क्यों जान पड़ती है। वह भूल जाती है अपने आपको! ओह, वह शहनाई कितनी श्रुति-मधुर हो उठी है उसके लिए!

मगर वह पूर्णतः भूल नहीं पाती जब कि उसका ध्यान खिंच आता है दूसरी ओर, वह पाती है कि गाँव के कुछ विशिष्ट सभ्रांत व्यक्ति, प्रसन्न मुद्रा में आकर, डा० स्वरूप के प्रति अपना अभिवादन-ज्ञापन कर रहे हैं।

और डा० स्वरूप स्वयं खड़े हो प्रति अभिवादन ज्ञापन करते हुए कहते हैं—आज हम बड़े सनाथ हुए! आइए, विराजिए······

और वे आगंतुक पास की पड़ी कुर्सियों पर बैठ जाते हैं, डा० स्वरूप भी अपने आसन पर बैठते हुए, अभया की ओर देख कर बोल उठते हैं—अरी, आरी बेटी, यहाँ, देखो, तुम्हारे राजा बाबू आज सशरीर तुम्हारे यहाँ विराजमान हैं।

अभया लजाती नहीं, प्रसन्न-बदन अपने पिता की ओर दौड़ पड़ती है और समीप आकर राजा बाबू को प्रणाम कर खड़ी रह जाती है।

राजा बाबू का नाम अभया के लिए अपरिचित नहीं है, पर उसे आज ही उनसे परिचित होने का अच्छा अवसर मिला है। अभया खड़ी-खड़ी देखती है कि यही हैं क्या राजा बाबू, जो गाँव के जमींदार हैं; बड़े शक्ति-संपन्न व्यक्ति!

और स्वयं राजा बाबू अभया को एक बार सिर से पाँव तक देखते हैं, फिर वे अपने चश्मे को आँखों पर अच्छी तरह जमाकर कहते हैं—अभया बेटी अब तो बड़ी सयानी हो गई, डा० भाई! यह जब बच्ची थी, तब इसे लेकर आप एक बार गाँव आये थे। क्यों, याद है न! सुना—इसने भी डाक्टरी पास की है। बड़ा अच्छा, बाप और बेटी—दोनों डाक्टर!··· यह तो बड़े भाग्य की बात है डाक्टर भाई।

—मैं तो नहीं चाहता था राजा बाबू—डा० स्वरूप बोले—मगर इसने स्वयं जिद्द की, मैंने भी देखा—क्या हर्ज है। अगर यह पढ़ना

चाहती है तो क्यों न इसे इस तरह का मौका दिया जाय! और इसे इस तरह का मौका दिया गया।

—बेजा क्या है डा० भाई!—राजा बाबू ने अपनी प्रसन्नता ही प्रदर्शित करते हुए कहा—आज कल पढ़ने की ओर तो लोगों का ध्यान योंही नहीं जाता, फिर डाक्टरो की भी तो कुछ जरूरत कम नहीं! और लेडी डाक्टर तो और भी बहुत कम है! सो इस कमी को हमारी बेटी अभया यदि पूरी करती है तो यह हमलोगो का कुछ कम सौभाग्य नहीं। मुझे बड़ी खुशी हुई इसे देखकर!

राजा बाबू बोल कर कुछ क्षण तक चुप रहे, फिर अभया की ओर मुखातिब होकर बोल उठे—क्योंरी अभया बेटी, तुम जाने कब से यहाँ आ गई हो, पर तुम अपनी चाची और बहन के साथ अभी तक मिलने को क्यो न आई? क्या वह घर तुम्हारा नहीं है?

—क्यो नहीं है—अभया हँसती हुई बोली—मगर आप लोग बड़े आदमी हैं, और बड़े आदमियों के यहाँ बे-बुलाये जाना अभया जानती नहीं......

राजा बाबू जरा अप्रतिभ हो उठे, उन्हे अभया की निर्भय मुद्रा और साभिमान वचनो से भीतर-भीतर कुछ वितृष्णा भी हुई, कुछ चोट भी लगी, फिर वह अपने मनोभावो को भीतर पचाकर मुस्कान लिये बोल उठे—सो कहना नही होगा अभया, मैं भी जानता हूँ कि डाक्टर बे-बुलाए हुए बड़े आदमियों के यहाँ नहीं जाया करते! मगर बड़ा आदमी जब स्वयं बुलाने आए, तब भी जाने में कोई उज्र होगा......

—उज्र!—अभया फिर उसी तरह बोल उठी—उज्र हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है!

—मानी?

—मानी साफ है—अभया हँस पड़ी—बुलाना सब तरह का हो सकता है, जरूरत का भी और बेजरूरत का भी! क्योंकि मैं लेडी डाक्टर हूँ न!

अभया इस बार खिलखिलाकर हँस पड़ी, डा० स्वरूप भी हँसे, राजा बाबू और दूसरे लोग भी हँस पड़े। मगर इस बार डा० स्वरूप ने परिस्थिति को सम्भालते हुए कहा—राजा बाबू तो कुछ दूसरे नहीं हैं, अभय, तुम्हें तो इनका आदर करना ही चाहिए ! ये बड़े जरूर हैं, मगर इनमें बड़प्पन का अभिमान छू भी नहीं गया है। जभी तो ये तुम्हारे यहाँ आए हैं······

—यह इनकी अतिशय कृपा है, सो क्या मैं नहीं जानती, पिताजी !

—नहीं, कृपा नहीं—राजा बाबू संशोधन करते हुए बोल उठे—कृपा कहना ठीक नहीं, अभया बेटी, मैं कृपा करने को तुम्हारे यहाँ नही आया हूँ ! यह तो भाईचारे का नाता है ! डाक्टर भाई रोज मेरे यहाँ आवें और मैं डाक्टर भाई के यहाँ न आऊँ—यह कैसे हो सकता है ! और आज तो मैं आवश्यक काम से—और सच पूछो तो, खासकर तुम्हारे लिए ही आया हूँ—और वह आवश्यक काम यह है कि तुमने शायद सुना भी होगा, इसी माघ पचमी को मृणाल का शुभ-विवाह है, जिसके लिए निमन्त्रण तो यों समय पर आयगा ही—आज मैं स्वयं तुम पिता-पुत्री को आमन्त्रित करने के लिए ही आया हूँ। डा० भाई केवल वय के वृद्ध नहीं, ज्ञानवृद्ध भी हैं, दुनिया का अनुभव रखते हैं, इनके सत्परामर्श की ऐसे अवसर पर मुझे कितनी आवश्यकता है, यह मैं अनुभव करता हूँ—और तुम······तुम तो बेटी अभया, मेरे गाँव की गर्व-गौरव हो—और इस समय जब कि तुम गाँव में आ पहुँची हो—तुम्हारे आने से हमारी हवेली कितनी खिल उठेगी—इसका अनुमान तो तुम खुद लगा सकती हो ! मृणाल और उसकी माँ तुम्हें देखने को उल्लसित हो रही हैं ! क्या तुम अपनी चाची और मृणाल को, ऐसे शुभ अवसर पर चलकर प्रसन्न न करोगी, अभया, बेटी ! क्यों डाक्टर भाई, तुम क्या कहते हो ?

—कहना क्या है ?—डा० स्वरूप आश्वस्त के स्वर में बोल उठे—मैं तुम्हारे काम में न लगूँ और तुम मेरे काम में न लगो—

यह कैसे हो सकता है! और बेटी मृणाल तो कोई दूसरी नहीं! उसका विवाह सर्वाङ्ग सुन्दर रूप में सम्पन्न हो—इससे बढ़कर आनन्द की और क्या बात हो सकती है!

—ऐसी ही तुम से आशा है, डा० भाई!—राजा बाबू प्रसन्न हो बोल उठे, फिर अभया की ओर देखकर बोले—और अभया बेटी, तुम कुछ बोली नहीं।

—मैं नहीं जाऊँगी।

यह उत्तर पाने के लिए राजा बाबू प्रस्तुत न थे। वे अभया के मुँह की ओर देखने लगे। उन्हे कुछ समझ में न आया कि ऐसा क्यों वह बोल सकी। फिर भी उन्होने जरा हँसकर ही पूछा—क्यो न जाओगी, बेटी! मृणाल की शादी हो और तुम न जाओ—यह कैसे हो सकता है······

—मगर मैं आप के बुलाने पर कैसे जा सकती हूँ? पिताजी जा सकते हैं, क्योंकि आप उन्हें बुलाने आए हैं!

—फिर कैसे जा सकती हो?—राजा बाबू ने हँसते हुए पूछा।

—जा क्यो नहीं सकती, राजा बाबू, जाऊँगी और जरूर जाऊँगी, मगर जब मृणाल खुद मुझे ले जाय! क्यों, मृणाल मेरे यहाँ नहीं आ सकती?

इस बार राजा बाबू ने समझा—अभया क्या है और वह क्या चाहती है। दूसरा वक्त होता तो राजा बाबू की त्यौरियाँ चढ़ चुकी होती, पर यह अवसर ही भिन्न था। वह कुछ क्षण तक अप्रतिभ हो रहे, फिर भीतर-ही-भीतर अपने को संयत कर बोल उठे—मृणाल को तुम्हारे यहाँ आने में प्रसन्नता ही होगी, अभया बेटी! खैर, अभी वही रहे, मृणाल को मैं भेज दूँगा!

—हाँ, भेज दीजिएगा मृणाल को, तभी मैं उसके साथ चली आऊँगी।

अभया बोलकर खड़ी न रह सकी, वह अपने कमरे की ओर चल पड़ी।

राजा बाबू कुछ क्षण तक डा० स्वरूप से बातें करते रहे, फिर वे अपने और व्यक्तियो के साथ उठ पड़े। डा० स्वरूप ने भी दरवाजे तक उनका साथ दिया, बिदा होते समय राजा बाबू बोल उठे—तो शाम को जरूर आप आएँगे, डा० भाई; रात का भोजन भी वहीं होगा।

—भोजन की कौन-सी बात है—डा० स्वरूप मुस्कराते हुए बोल उठे—मैं शाम को जरूर आ जाऊँगा।

डा० स्वरूप उनसे बिदा लेकर जब लौटे तब बरामदे पर अभया खड़ी दीखी! वे उसके पास पहुँचते ही बोल उठे—तुम्हें उस तरह की बातें न करनी चाहिए थीं, अभय!

—मैंने ऐसी कौन-सी बात कही, बाबूजी!—अभया निश्छल होकर बोल उठी—मैं जानती हूँ, उनके घर की स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलतीं। जब वे एक दूसरे के घर नहीं जायँगी तब दूसरे को ही क्या पड़ी है कि वह उनके घर दौड़ी जाय। यह कैसी बात, दिखाने को तो वे भाई-चारा दिखाएँ; पर दूसरों को छोटा समझ कर—यह कैसे हो सकता है! यदि समानता का भाव न रहा तो फिर भाईचारा कैसा? तभी तो मैंने कहा—जब उसकी मृणाल मेरे घर आयगी तब यह अभया भी उसके घर जायगी। इसमें बुरा क्या है? इसमें मेरी गलती कहाँ है?

डा० स्वरूप अभया को जानते हैं, यह भी जानते हैं कि अभया कच्चे धातु की बनी नहीं है। जो अभया चंपी के घर बे-बुलाए जा सकती है, उसकी रुग्णा माता की तीमारदारी और दवा-दारू कर सकती है, जहाँ घृणा को घृणा लगती है, वहाँ वह घंटों बैठकर भी घृणा नहीं—स्नेह से आप्यायित हो सकती है, वही अभया अभिमान से लदे, आभिजात्य वंश के प्रमुख व्यक्ति-द्वारा बुलाए जाने पर स्पष्ट कह दे सकती है कि वह तभी जा सकती है जब उस घर की लड़की स्वयं उसे बुलाने को आय। डा० स्वरूप मन-ही-मन जाने कुछ क्षणों तक क्या-सोचते रहे, फिर आप ही बोल उठे—मैं गलती की बात

नही कह रहा, अभय; ऐसी बातें नहीं होनी चाहिएँ जिनसे दूसरों का जी दुखे। तोडने में मजा नहीं है, अभय, मजा तो तब है, जब टूटे हुए को जोड़ा जाय।

अभया इस बार हँस पड़ी और हँसती हुई ही बोली—जोड़ना तो तुम जानो, बाबूजी, मुझे तो तोडना ही आता है और तोड़ना ही सीखा है अबतक! फिर भी कोशिश करूँगी, किसी दिन जोड़ सकी तो अच्छा ही।

हाँ, यही आशा रखता हूँ तुमसे अभय—डा० स्वरूप ने कुछ गंभीरता के साथ कहा।

और अभया ने शायद पिता के वचनो को पूरा-पूरा सुना या नही, नहीं कहा सकता। क्योंकि वह बाहर की ओर देख रही थी, और जिसे वह देख रही थी, वह तो रातवाली चंपी है, जो उसके बंगले के हाते के पास पहुँचकर उसके भीतर घुसने को कुंठित-सी हो रही खड़ी है। वह उसकी ओर लपकी और लपकते हुए बोल उठी—क्यों री चपी, खड़ी क्यों है? भीतर आ······

तबतक अभया भी कुछ आगे बढ़ गई थी, वह भी इसकी ओर बढ़ी। उसके हाथ में वही रातवाली कंबल थी। वह बोली—माँ अच्छी है, उसने मुझे भेजा है, कहा—दे आ कंबल उनको, सो यह कंबल, कहाँ रख दूँ?

अभया को रुग्णा के अच्छी होने का समाचार पाकर सुख ही हुआ; पर यह कंबल? कबल—वह बोली—लिये जा चंपी, मैं जानती हूँ, अभी इसकी वहीं जरूरत है! क्या और कुछ नहीं कहा? मेरी जरूरत वहाँ नहीं है क्या?

—जरूरत—चपी सुधाई से बोली—सो तो माँ ने नहीं कहा! मगर तुम चलोगी वहाँ? शायद जरूरत हो, न भी तो हो सकती है··· मगर माँ ने ऐसा कुछ कहा कहाँ! मगर मैं तुम्हें जाने को नहीं कह सकती। माँ खूब भोर-भोर सोती रही···जब नींद खुली, तब वह बोली—बोली मुझसे कि, वह कौन थी चंपी? कोई देवी-देवता

तो नहीं ! कोई तो मेरे घर पर नहीं आता, फिर देवी-देवता ही तो वह हो सकती है ? माँ दुरगा को पूजती जो है ! उसका विश्वास है कि, आदमी जब देवी-देवता को पुकारता है तब वह चुपके-चुपके आ जाता है और चुपके-चुपके चल भी देता है। क्या तुम······

अभया चंपी की सूधी-सूधी बातों पर खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—हाँ री चंपी, क्या बोल रही थी वह ? बोल-बोल, रुक रही क्यों ?

चंपी सिर झुकाए थी और सिर झुकाए ही बोली—तुम कोई देवी-देवता हो ? नहीं, क्यों ?

और अभया ने इस बार पाया कि चंपी की आँखें आँसुओं से गीली हो उठी हैं। दिहात की ग्यारह साल की चंपी प्रत्यक्ष अपने सामने देवी-देवता को जो देख रही है !

अभया हँस पड़ी और हँसती-हँसती ही बोली—देवी-देवता क्या इतना प्रत्यक्ष होकर आते हैं चंपी ! तू खुद देख रही है, मैं आदमी हूँ, मेरा यह घर है, यहाँ मेरे बाबूजी रहते हैं, वे डाक्टर भी हैं। फिर ऐसा न कहना !

—तो फिर तुम्हें क्या कहूँ ?

—क्या कहोगी ?—मेरा नाम है—अभया, तू अभया बहन कह, और क्या कहेगी।······मगर, अभी चल मेरे साथ, खड़ी रह, मैं भीतर से आती हूँ।

और अभया कुछ क्षण के बाद भीतर से आकर चल पड़ी, चंपी कम्बल को फिर उसी तरह संभाले उसका साथ देती चली।

चतुर्थ परिच्छेद

अभया जब चंपी के घर से लौटी तब दिन ढल चुका था। खुले प्रकाश में गाँव से निकलने का यह पहला ही अवसर था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि उसके आने-जाने के समय रास्ते में जो भी मिले, मिलनेवालों ने उसकी ओर इस तरह देखा जिस तरह कोई अजनबी चीजों को लोग देखा करते और देखते ही रह जाते हैं। उन्मुक्त-कुन्तला अभया का दर्पमय मुख-मंडल, विकसित-यौवन-श्री, भाव-भंगिमा, उसके वेश-विन्यास—सभी बातों में वह अनूठी है! फिर अनूठी वस्तु की ओर लोगों का एक स्वाभाविक आकर्षण है, जैसे उसने बरबस देखनेवालों और वालियों को अपनी जगह जकड़ रखा है! अभया को इस बात का पता है, वह भी एक बार देखनेवालों की ओर देख लेती है, मगर वह देखने के लिए रुकी नहीं रहती—वह बढ़ती ही चलती है। इस तरह रास्ते को तय कर आ जाती है—और जब वह लौटकर अपने दरवाजे के पास आ पहुँचती है, तब देखती है कि दरवाजे पर कई पालकियाँ बद पड़ी रखी हैं और एक ओर ढोनेवालों का एक गिरोह खड़ा और बैठा दीख रहा है।

मगर अभया उस ओर आँखें उठाकर देखती नहीं, वह सीधे बरामदे पर आकर ही रुकती है और उलटकर देखती है, चंपी अभी

हाते को ही पार कर रही है। वह रुकी हुई रहती है, इतने में ही चंपी भी आ जाती है और भीतर की ओर से कुछ स्त्रियाँ और कुछ किशोरियाँ वहाँ आ पहुँचती हैं, तभी उसका बूढ़ा नौकर किसुन उसके सामने आकर कहता है—ये सब राजा बाबू के यहाँ से आई हैं, रानी बेटी! अभी-अभी तुरत आई हैं।

—ओह आप?—उन इकट्ठी नारियों की ओर अभिवादन करती हुई अभया बोली—मेरी गैरहाजिरी में आप लोगों को बड़ी तकलीफ हुई! मुझे तो मालूम था कि मृणाल आयँगी मेरे यहाँ! मगर मैं काम से बाहर चली गई थी! आइए-आइए, बाहर इस तरह खड़ी क्यों हैं, भीतर ही आइए........

और वह स्वयं आगे-आगे भीतर गई और सबको यथास्थान बिठलाते हुए बोली—मगर मैं जान न सकी कि इनमें मृणाल कौन हैं?

उनमें से एक चतुर युवती हँसती हुई बोल उठी—मृणाल कौन हैं, उनसे परिचय कराने की जरूरत नहीं पड़ेगी! जो स्वयं स्वप्न में रँग रही हैं, जिनकी आकृति पर स्वयं आगत पति का सौन्दर्य प्रतिभासित हो उठा है, वह आकृति स्वयं बतलायगी कि मृणाल कौन हैं! क्या अब भी आप उन्हें न पहचान सकेंगी?

और इतना बोलकर वह युवती अपने-आप हँस पड़ी, उसकी हँसी में औरो ने भी साथ दिया, पर उनमें एक ही ऐसी थी जो सिर झुकाए पड़ी थी।

अभया ने भी सबकी हँसी में योग दिया, फिर वह हँसती हुई ही बोल उठी—देखती हूँ, आपने साहित्य का गंभीर अध्ययन किया है; मगर आप जानती हैं, मैं साहित्य-शास्त्रिणी नहीं, मैं विज्ञान की उपासिका हूँ; फिर भी मैं इतना अवश्य कहूँगी कि मेरी मृणाल बहन को इस तरह काम-कला की शिक्षा देनेवाली जो युवती हैं, वह मेरी नमस्य हैं, उन्हे आदर से यदि मैं भाभी कहूँ तो वह अवश्य स्वीकृत होगी, क्यो नहीं?

—यह मेरा सौभाग्य है!—उस युवती ने समर्थन में कहा।

—मगर यह सौभाग्य मुझे जिसके चलते उपलब्ध हुआ है, वह मृणाल चुप क्यों है ? आओ, मृणाल, अब तुम अकेली नहीं, मैं भी तुम्हारे साथ हूँ—कहकर मृणाल के गाल पर मीठी चपत लगाते हुए अभया बोली—तुम भाभी को क्यों नहीं कहती कि इन्हों ने भी कुछ कम तपस्या न की थी एक दिन जब, ये स्वयँ···

मगर अभया बात पूरी न कर पाई कि उसे स्मरण हो आया—अभी तो उसे चंपी को दवा देना है, वह जो ठिठकी-सी, ठगी-सी खड़ी है······

और तभी अभया बोल उठी—जरा मुझे छुट्टी चाहिए भाभी जी, बाहर वह चंपी खड़ी है, उसे दवा जो देना है, मैं अभी तुरत आई दवा देकर।

और वह पुकार उठी—चपी, ओ चंपी, आ जा, यहाँ आ, दवा दिये देती हूँ।

और वह दरवाजे की ओर बढ़ी, फिर उसे लेकर दूसरे कमरे की ओर गई, वहाँ उसने दवा तैयार की, फिर उसे विदाकर स्नान-घर की ओर गई और जितनी जल्दी हो सका, नहा-धोकर कपड़े बदल दालान में आई, जहाँ सब-की-सब उसकी प्रतीक्षा में थीं। इस बार अभया और भी खिली दीखी। वह आते ही बोल उठी—माफ कीजिएगा ! मैं थोड़ा ही वक्त लेकर गई थी, मगर देखा कि जब देर हो ही रही है तब नहा ही लूँ क्यों न ?

—मगर देर न करे तो अच्छा—वही युवती फिर से बोली—आप जानती हैं, विवाह का घर है, काम ढेरो पड़े हैं। हमलोग घर की सब-की-सब आ गई हैं, माँजी हैं, उनसे अकेली कुछ करते नहीं बनता !

—जब यह बात थी तो आप आईं क्यो ?—अभया हँसती हुई बोल उठी—और जब आई हैं तब देर-सबेर का भार मुझ पर छोड़ दीजिए, मैं खुद जाकर चाचीजी को समझा लूँगी। यों बहाना बनाकर आप छोड़ी नहीं जा सकतीं !

अभया बोलकर चुप रही, फिर मृणाल की ओर देखकर बोली—क्यों, मृणाल, तुम्हें भी देर हो रही है? भाभी का दिल तो जाने कहाँ अटका है—सो तो वे ही जानें! मगर तुम आओ मेरे साथ! मैं यहाँ अकेली हूँ, मगर अभी मैं अकेली नहीं, तुम मेरे साथ हो—आओ।

और बल पूर्वक मृणाल का हाथ पकड़कर अभया उसे दूसरे कमरे की ओर ले गई। मृणाल स्वयं लज्जाशीला है, फिर वह एक अनजान और विदुषी अभया-जैसी युवती से बोलने का कैसे साहस करे! मगर मृणाल ने अब तक अभया का उड़ती-फिरती खबरों में, जो रूप देखा था, प्रत्यक्ष में उसने पाया कि, वह तो अधिक-अधिक स्नेहमयी है, अत्यन्त ही कोमल है, अत्यंत ही सहृदया है मृणाल को भीतर ले जाकर अभया ने कहा—मैं आँटा गूँधती हूँ। मृणाल, तुम स्टोव जलाओ। थोड़ा जलपान तो कर ही लिया जाय। फिर तो जाना है ही। जब भाभी खुद आई हैं तब उन्हें इस तरह कैसे जाने दूँ। तुम तो मेरी बहन ठहरी, तुम से काम लेने का मेरा हक है! नहीं क्यों मृणाल?

मृणाल मुस्कराई और मुस्कराते हुए ही बोली—मैं ही आँटा गूँध लूँ, तुम······नहीं-नहीं। वह स्पिरिट है। कुछ मिहनत तो पड़ेगी। देखो, हो चला······

और जब कुछ क्षण के बाद छन-छन की आवाज दालान में आ पहुँची तब भाभी ने समझा कि क्यों मृणाल को लेकर वह भीतर गईं और वहाँ क्या हो रहा है। भाभी गुमशुम बैठने वालियों में न थी। वह भी भीतर की ओर लपकती हुई बोलती आई—देखना मृणाल, तुम दोनो बहनें ही चुपचाप न खा लेना······

—खातिर-जमा रखें भाभी—अभया वहीं से हँसती हुई बोल उठी—आपका हिस्सा भी रहेगा। और इतने में भाभी सशरीर वहाँ पहुँचकर बोली—इतना-सा परबत उठाए लिये बैठी हैं आप लोग! ओह!

—मगर भय की बात नहीं, भाभी, आप इस पर्वत से दबेंगी नहीं। इतना मैं अभी से विश्वास दिलाए देती हूँ।—कह कर अभया हँस पड़ी, भाभी भी हँसी और मृणाल भी!

और सभी की इकट्ठी हँसी जब दालान में पहुँची तब सब-की-सब भीतर ही आ पहुँचीं। फिर तो वहाँ रंग जम गया, सभी को कुछ-न-कुछ काम में हाथ बटाना पड़ा। यों घर पर सब-की-सब काम कुछ-न-कुछ करती ही हैं, मगर इस तरह का काम, जो स्वयं एक मनोरंजन के लिए हो, सभी के लिए एक विशेष आनंद का कारण हुआ।

अभया इतनी अतिथि-परायणा हो सकती है, इसका ज्ञान उसे तब हुआ जब भाभी ने अपने घर में चल कर माँ से उसकी चर्चा बड़े विशद रूप में कह सुनाई।

और अभया ने उस चहारदीवारी अट्टालिका के प्रांगण में एक छोटी सी चौकी पर बैठी हुई प्रशसात्मक शब्दों में अपनी चाचीजी से कहते सुना—विद्या-विनय से जो सम्पन्न है, वह आतिथ्य करना तो जानेगी ही बहूरानी। और हमारी अभया बेटी तो उन हजारों में एक है। किसके पास इतनी विद्या है, तुम्हीं सच बताओ बहूरानी! यह तो हमारा सौभाग्य है कि मीनू (मृणाल) की शादी में अभया बेटी को हम पा सकीं। अगर आज यह अपने गाँव में न होती तो क्या इतनी आसानी के साथ हम इसे यहाँ पा सकतीं?

मातृ-हीना अभया ने चाची का स्नेह पाकर जाना कि कोई ऐसी चीज है जो उसके जीवन से बहुत दूर रही है और वह चीज क्या है—अभया खुद नहीं जानती; मगर वह इतना जान पायी है कि मृणाल बड़ी भाग्यवती है—और शायद भाग्यवती वह इसलिए है कि वह चाचीजी ही उसकी माँ है।

अभया आनन्द लेकर ही अपने घर से चली है और उस आनन्दोदधि में आ पहुँची है, जहाँ वह पाती है कि चारो ओर से उसकी लोल लहरें उसके हृत्तल को आन्दोलित-उच्छ्वसित कर रही है। एक ओर उसकी चाचाजी के स्नेहोज्ज्वल हृदय का वात्सल्य-

रस उसे सिंचित कर रहा है और दूसरी ओर से उसकी भाभियों की मुग्धमयी चटुल उपालंभ परिपूर्ण लाक्षणिक विदग्धकारिणी वाक्यावली उसके मन को सभ्रम में डालकर उसके रोम-रोम में सिहरण पैदा कर रही है। अभया समझ नहीं पाती कि जो-कुछ उसे वहाँ मिल रहा है, वह क्या है! उसे वह अबतक क्यो नहीं मिल सका! क्यों उसका अन्तर वह-कुछ पाने के लिए जैसे रिक्त-सा हो पड़ा है! वह रिक्तता आज जिस रूप में परिपूर्ण हो रही है, वह रूप उसकी दृष्टि में कितना मनोहर, कितना मूर्त और कितना सुष्ठु है! काश, उस रूप का पता उसे पहले लगा होता!

अभया को आज जैसे अपने आप तक का भी पता नहीं है! उस जन-समागम में, जहाँ अपनापन चारो ओर से संपुट और सुपुष्ट हो चला है, अभया को यह भी पता नहीं लगता कि किस तरह से दिन बीता, सध्या आई और गई—अब रात हो आई है, अट्टालिका के सारे कमरे लैंपों के प्रकाश से विहँस रहे हैं—और उस प्रकाश में वह अपनी सद्यः सहेलियो से घिरी हुई जाने कितनी प्रसन्न है! सिंह-द्वार पर बने ऊँचे मच से शहनायियों का मधुर-करुण स्वर उसे आत्म-विभोर बना रहा हैं। ओह, आज वह क्या है, कहाँ है वह?

व्यष्टि में जो अभया रुक्ष थी, समष्टि में आकर वही तरल हो उठी है। उसके अग-प्रत्यंगो से वह तरलता छनक-छनक कर उसे रस-सिक्त करने लगी है। उसकी भाभियाँ उसे गुदगुदा-गुदगुद कर उद्बुद्ध कर रही हैं, उसे जड़से चेतन बना रही हैं और उस विवाहोत्सव कालीन वातावरण से उसकी आँखो-पलकों के बीच इन्द्रजाल की रंगीनियाँ भर उठी हैं। उसके ओठों को जाने कौन रह-रहकर स्पंदित कर जाता है, उसे उसका पता नहीं! क्यों रह-रहकर वह मुस्करा उठती है, क्यों उसका वक्षःस्थल रह-रहकर तरंगायित हो उठता है! वह पूछना चाहती है अपनी भाभी से; वह जानना चाहती है इसका कारण; पर उसके मुँह से वाणी नहीं निकलती और जो वह बोलना चाहती है, वह बोल नहीं पाती और जो वह कहा नहीं चाहती, वही उसके मुँह से

बरबस निकल पड़ता है। इस पर उसकी भाभियाँ अट्टहास कर उठती हैं, पर अभया उतने ही क्षण में अपने को सचेत कर लेती है वाचाल तो वह है ही, प्रखरता में भी कुछ कम नहीं—और उस अट्टहास का प्रत्युत्तर इतने तीक्ष्ण व्यंगों से देती है कि वे भाभियाँ अचचल से चंचल और मुकुलित से प्रस्फुटित हो उठती हैं और तभी वे हँसकर बोल उठती हैं, हम तुमसे नहीं सकेंगी, अभया बहन, तुम्हारी हार नहीं—जीत रही, हम जीते मगर यह हमारी हार है।

मगर अभया मन-ही-मन समझती है कि इसमें कौन हारी और किसकी जीत रही !

और इस तरह हार-जीत के भीतर से ये पाँच छः दिन किस तरह बीत गए, कुछ पता न चला ! अब तो वह क्षण उपस्थित है, जब लोगों का जमघट लगा है, उस सुविस्तृत प्रांगण में, जिसके बीच मंडप की रचना हुई है, सुहागिन स्त्रियाँ, कुमारियाँ और बाल-वृन्द मधुर कलरव से दिशा-विदिशाओं को मुखरित कर रहे हैं ! सभी अस्त-व्यस्त हैं, सभी उथल-पुथल में हैं; किन्तु अभया एक निर्दिष्ट स्थान पर बैठी मृणाल के वेश-विन्यास और अंग-प्रत्यंगों को अलंकार एवं मांगलिक प्रसाधनो से तूलिकाओं द्वारा चित्रित कर रही है। वह इस कार्य में जैसे डूब-सी गई है। कोलाहल उसके ध्यान को भंग नहीं कर रहा, वह संयम की सीमा पर पहुँचकर अपने कार्य में तल्लीन है, इस कार्य में तिलमात्र का अन्तर उसे सह्य नहीं—और इस तरह जब वह मृणाल को सज-सजाकर तयार कर चुकी है, तब वह स्वय पाती है कि अब जिस मृणाल को वह देख रही है, वह तो स्वयं अपर्णा है—कुछ मानवी नहीं। और ऐसी मृणाल को एक बार अपने सुकुमार अंको से भरकर धीरे से उसके ओठ चूम लती है।

और उसी समय मृणाल विवाह-मंडप पर ले जायी जाती है। वहाँ जितनी भी स्त्रियाँ हैं, सभी विविध और विभिन्न वेश-भूषाओं और अलंकारो से अलंकृत हैं; पर अभया ही एक ऐसी है जिसे अपने आपको सजाने का या तो चाव नहीं या उसे वह अवसर ही न मिल

सका है। फिर भी अभया का स्वाभाविक वेशभूषा अपने आप में ही पूर्ण है ! वह इतना ही चाहती है, इससे अधिक नहीं। वह इसी रूप में और स्त्रियो के साथ, जिनमे अग्रणी वे भाभियाँ हैं, आ खड़ी हैं ! वह देखती है—मडप के मध्य में होमाग्नि प्रज्वलित हो रही है, पुरोहित मंत्रोचारण कर रहे हैं, वर की तलहथी पर मृणाल की तहलथी पडी है...... फिर दोनों होमाग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं...... फिर यथा-स्थान दोनो बिठलाये जाते हैं......

और स्त्रियो के बीच से शंखध्वनि गूंज उठती है, मागलिक गीत मुखर से करुण हो उठते हैं और सभी आनन्द-महार्णव मे उद्बुद्ध होने लगते हैं; किन्तु अभया जाने क्यों वहाँ ठहर नहीं पाती, चुपचाप वहाँ से निकल पड़ती है !

वह निकल पड़ती है अपने घर की ओर, भोर होने-होने को है, सिंह-द्वार के मच से शहनायियों का भरो राग अत्यन्त ही हृदय-स्पर्शी एवं चेतनोन्मुख हो उठा है। अभया रास्ते पर चढ़कर भी लौट आना चाहती है,पर वह लौटती नहीं—जाने कौन-सा आकर्षण उसे आगे की ओर खींचे लिये जा रहा है—आगे और आगे; और, अब तो पाती है कि वह अपने हाते में पहुँच गई है। उसका नौकर किसुन बठे-बैठे सुर्ती लगा रहा है, वह अपनी जगह से ही बोल उठता है—कौन ?

—मैं हूँ, किसुन।

—ओह, तुम—रानी बेटी !—वह खड़ा होकर उसकी ओर बढ़ते हुए कहता है—अभी कैसे आईं ? क्या शादी हो चुकी ?

—हो चुकी—कहती हुई वह आगे बढ़ती है देखती है कि दरवाजे पर ताला जड़ा है, किसुन आगे बढ़ता है और उसे खोलते हुए बोला—बाबूजी तो राजा बाबू के यहाँ हैं......

वह भीतर जाती है और अपने पलंग पर जिस रूप में आई थी, उसी रूप में पड़ जाती है।

मगर वह पड़ी नहीं रह सकती। ज्यों ही नींद लगने को होती कि उसे लगता—जैसे बाहर कुछ हो-हल्ला मच रहा है ! कोई चिल्ला-

चिल्लाकर पुकारना चाहता है और किसुन उसे वैसा करने नहीं देता, रोकता है—डॉटता है। अभया की नींद उचट जाती है, वह उठ बैठती है और दरवाजे की ओर बढ़ते हुए कहती है-किसे डॉट रहे हो, किसुन? कौन है वह?

किसुन सकपका जाता है, वह चभलाए-चभलाए बोलता है—यह—यह तो वह चपी है।

—चंपी?—अभया बरामदे पर आकर कहती है—तुम इसे डॉट क्यों रहे थे? क्या तुम्हें सीधे मुँह बात नही की जाती! बूढ़े हुए और तमीज नहीं आई! लोग आयँगे ही रात-बेरात—जब उन्हें जरूरत होगी—और उन्हें डाँट-डाँटकर तुम परेशान करोगे? इसीलिए तुम रखे गए हो? याद रहे—यह मुझे अच्छा नहीं लगता!

किसुन सकपकाकर खड़ा हो जाता है एक ओर। वह अभया को जानता है; पर आज की अभया उसकी आँखों में बड़ी प्रखर हो उठती है। कभी उसने इस तरह की डाँट जो नहीं खाई थी उससे!

अभया रुकी न रही, वह आगे बढ़ी, उसने देखा—वह चपी ही है! वह सिसक रही है। वह पूछ बैठी—क्यों री, क्या ह ल है?

—बच ओ माँ को अभया बहन, वह तो दम तोड़ रही ह···

—दम तोड रही है! अरी क्या कहती है तू? वह तो अच्छी हो चली थी न ·क्या कुछ खिलाया-पिलाया तो नहीं·····

चंपी कुछ न बोली, वह तो उसी तरह सिसकती ही रही···

अभया एक बार भीतर गई, फिर तुरत वहाँ से निकलकर बोल उठी—चल चपी, देखूँ तो भला, हो क्या गया!

और वह द्रुत गति से चंपी के साथ उसके घर की ओर चल पड़ी। उसने एक बार राजा बाबू की हवेली की ओर देखा—डे-लाइटो की रोशनी अब उतनी उज्वल नहीं, धूमिल पड़ रही है, कोलाहल निस्तब्धता में परिणत हो गया है, और शहनायियों का सुहावना स्वर जाने क्यों विषाद का रोदन-जैसा प्रतीत हो रहा है; फिर भी अभया द्वन्द्व-अन्तर्द्वन्द्व के बीच यथासंभव निर्द्वंद्व होकर

ही बढ़ती जा रही है'''और इस तरह जब वह चंपी के घर के पास पहुँच पाती है, तभी कुत्तों का एक झुंड वीभत्स रूप से काँय-काँय कर उठता है। अभया चंचल हो उठती है, फिर भी हिम्मत नहीं हारती; पर उसका उत्साह भीतर-ही-भीतर शिथिल-सा जान पड़ता है। चंपी आगे बढ़ती है और जैसे ही दरवाजे की टट्टी हटाती हुई वह भीतर घुसना चाहती है, त्योंही एक जोर की चीख आती है और रुग्णा का सारा शरीर अकड़ कर रह जाता है! अभया दौड़कर भीतर जाती है, रुग्णा का हाथ अपने हाथ पर लेकर उसकी नाड़ी टटोलती है, फिर नाक के पास हाथ ले जाकर देखती है। उसके मुँह से एक सर्द आह निकल पड़ती है और तभी चंपी ढाहकर चित्त गिर पड़ती है।

कितना करुण वह दृश्य है! अपने अध्ययन काल में अभया जाने कितनी मृत्यु को खुली आँखों देख चुकी है; पर कभी उसने आह न भरी! मगर आज उसके सामने शव पड़ा हुआ है और वह अपने आप में इतना बल नहीं पाती जिससे वह ग्यारह साल की मातृ-हीना चंपी को आश्वासन बँधा पाय। एक टिमटिमाता चिराग था, बुझ चुका, आग की बची-खुची राख में छिपी एक चिनगारी थी, वह स्वय राख में निभ चुकी!

और उस समय भी राजा बाबू के सिंह-द्वार के ऊँचे मंच से शहना-यियाँ भरवी के स्वर में आलाप ले रही हैं!

पंचम परिच्छेद

मृणाल के विवाहोत्सव के कारण गाँव में जो आनंद की सरिता फूट निकली थी, वह उसकी विदा के साथ रुक गई। एक ज्वार उठा, फिर अपनी जगह जा रुका, एक उत्तेजना आई, फिर वह सो गई। अब चारो ओर वही कर्म-कोलाहल मुखर है। वही पुराना राग, वही धंधा, जो सदियों से होता आया है और शायद आगे भी जो इसी तरह चलता रहेगा। डा० स्वरूप राजा बाबू के घर जाते हैं, राजा बाबू भी डा० स्वरूप के घर आते हैं। डा० स्वरूप ने मृणाल के विवाहोत्सव में रात-की-रात और दिन-के-दिन राजा बाबू के घर बिताए। उन्होंने अपने विवेक, अनुभव, सहनशीलता और धैर्य का जो परिचय दिया, इससे राजा बाबू के भीतर जो-भी उनके प्रति छिपी दुर्भावना थी, वह शात हो गई। डा० स्वरूप ने समझा कि वह उत्सव राजा बाबू का नहीं, स्वयं उनका था और मृणाल राजा बाबू की नहीं, उनकी अपनी कन्या है। मृणाल ने अपने स्नेह-तंतु से दो को निकट ला बिठलाया। अब वह उस गाँव की नहीं, किन्तु गाँव की एक सजल स्मृति है। और उसी सजल स्मृति को लेकर वे दोनो वृद्ध जैसे जी रहे हैं।

मगर अभया इन दिनों अधिक-अधिक चंचल हो उठी है। क्यों वह चंचल है—इसका कारण वह नहीं जानती। उसके स्मृति-पथ

पर बहुत-से चित्र आते-जाते हैं, पर कोई अचल हो टिक नहीं पाता। अभया नहीं चाहती कि कोई उसे झकझोरे—कोई उसे चंचल-विभोर करे। वह अब तक जिस तरह अपने आप को दमन करती आ रही है, उसी तरह वह अपने आप को दमन कर लेगी। वह संयम करना जानती है और वह अपने को सयम की सीमा से बाहर ले जाना पसद नहीं करती। उसका जीवन कर्म-कठोर है। वह रुग्ण स्थान पर जिस सफलता पूर्वक अब तक अस्त्र चलाती रही है, उसे वह पूर्ण रूप से स्मरण है। वर्षों की साधना क्षण-भर की सजल-तरल स्मृति-लहरी में किस तरह डूब जाय! नहीं, अभया उसे डूबने न देगी। वह अपनी जगह सजग है, वह अपनी जगह अचल है।

अभया को गाँव की पहाड़ी अतिशय प्रिय है। उसका मन जब कभी उलझता है तब वह सीधे पश्चिम ओर की राह पकड़ लेती है। वह कभी परवा नहीं करती कि कौन क्या उसके बारे में कह रहा है। वह चल पड़ती है पहाड़ी पर—उस पर धीरे-धीरे चढ़ती है और टेढ़ी-मेढ़ी उबड़-खाबड़ पगडंडियों पर बढ़ती, गिरती, संभलती ऊपर की चोटी पर जा पहुँचती है, जहाँ की समतल सतह पर एक शिवालय है, और छोटे-बड़े एक-दो चौपाल और दो-एक झाड़ियाँ भी! वह स्थान अवश्य रमणीय है। वहाँ भादों चतुर्थी और फाल्गुन शिवरात्रि को मेला-सा लग जाता है! यों जो शिव-भक्त हैं, वे नित्य प्रति प्रातःकाल आकर शिवजी को पत्र-पुष्प और धूप-दीप से प्रसन्न करना नहीं भूलते। मगर अभया का उद्देश्य उनसे भिन्न है, वह प्रातःकाल तो नहीं, अपराह्न में आती है और संध्याकालीन सूर्य को डूबते हुए देखती है और देखती है कि उस पहाड़ी के सटे बक्र होकर दक्षिण-पश्चिम की ओर जो नदी बह निकली है, वह कितनी सुन्दर है, कितनी सजीव!

मगर आज जब वह उस पहाड़ी पर चढ़कर पश्चिमांचल की ओर देख रही है, तब वह पाती है कि कुछ दूर पर एक कार गाँव की ओर दौड़ी जा रही है। वह चोटी पर से देखती है कि वह कार ऊपर से कितनी छोटी दीख रही है, जैसे वह कार एक खिलौना है, जो

चाभी से स्प्रिंग भरकर चलाई जाती है। वह उस कार को इतना लघु रूप में पाकर स्वयं हँस उठती है और उसकी हँसी उस समय और भी द्विगुणित हो जाती है, जब उस पर के चढ़े हुए व्यक्ति उसके रुक-रुक जाने पर, उतर-उतर कर, उसे पीछे से धक्का देते और आगे बढ़ाते हैं! इस तरह कार चल तो पड़ती है कुछ दूर तक, फिर रुक जाती है और अब जो रुकी तो रुकी हुई है! उस पर के चढ़े हुए व्यक्ति खुले खेत के टीलों पर खड़े हो इधर-उधर ताकते हैं और कार अपनी जगह पर ज्यों-की-त्यों पड़ी है।

अभया यह-कुछ ऊपर से ही देख रही है, पर इस पर वह जमी नहीं रहती। वह सूर्य की ओर मुँह किये बैठी है जिससे उसका सारा बदन आरक्तिम हो उठा है। उसे कुछ याद आता है, वह आप-ही-आप कुछ गुनगुनाने लगती है। और जब संध्या कुछ धूमिल हो आती है, तब वह दौड़ती हुई उतर पड़ती है और उतरकर सड़क पर आते-आते संध्या और घनी हो उठती है। वह गाँव की ओर चल पड़ती है। वह चल पड़ती है द्रुत गति में, जैसे उसे अधीर-अस्थिर किये कोई आगे की ओर खींचे लिये जा रहा है; पर उसकी गति स्वयं मंद पड़ जाती है जब वह चंपी के घर के पास आकर सुनती है कि जैसे कोई किसी को डाँटकर कह रहा हो—क्यों री कलमुँही, तू माँ के साथ मर गई क्यों न!

—कलमुँही—अभया मन-ही-मन सोचती है कि कलमुँही किसके प्रति कही जा रही है। अभया जानती है कि उस घर में चंपी के सिवा दूसरी और है कौन? फिर कलमुँही कौन है? अभया रुकी नहीं रह पाती, वह उस ओर मुड़ पड़ती है और 'चंपी ओ चंपी' पुकारती हुई आँगन में पहुँचकर देखती है—चंपी घर के ओसारे की टूटी चटाई पर अस्तव्यस्त दशा में पड़ी है और वहाँ कुछ लोग खड़े हैं।

अभया वहाँ पहुँचकर कुछ समझ नहीं पाती और वस्तुस्थिति को जानने के लिए वह उसके सामने खड़े उन लोगों से नहीं, खुद चंपी से ही पूछती है—क्यों, क्या हाल है री चंपी?—कहती हुई वह उसके बदन पर हाथ फेरने लगती है।

मगर चंपी कुछ बोलती नहीं, बोलता है उन खड़े आदमियों में से एक—यह मोटर से टकराकर गिर पड़ी थी। चली थी मोटर देखने, भोंपा बजा और दौड़ पड़ी! खैर हुई कि दबी नहीं, मगर टक्कर बचा न पाई।

—ओह, आई-सी!—अभया बोल उठी और चपी के बदन पर हाथ फेरते हुए कहा—कहाँ चोट है री चपी?

चंपी दर्द से व्याकुल थी, वह उसी व्याकुलता को लेकर अपना हाथ दर्द की जगह पर फेरती हुई बोली—ओह! बड़ा दर्द है यहाँ।

अभया दर्द की जगह पर हाथ फेरती है, उसे दबाती है—दबाते ही चंपी कराह उठती है। कराह से अभया व्यथित नहीं होती, उसका रोष ही उबल पड़ता है और उबलते हुए रोष को लेकर उन खड़े आदमियों की ओर देखते हुए कहती है—तुमलोग इस तरह क्या मुँह ताकते हो? बिगड़ना तो जानते हो, मगर यह नहीं जानते कि बिगड़ने से इसका दर्द हलका नहीं होगा! पानी गरम करो, अभी अच्छा हो जाता है······

सामयिक उपचार उस समय जो-कुछ होना चाहिए—कर-करा-कर चंपी से अभया कहती है—अभी मैं घर जाती हूँ और एक आदमी को साथ लिये जाती हूँ। इसके हाथ मालिश के लिए तेल भेजूँगी! उसकी दर्द की जगह पर लेप कर देना। हलकी ठोकर लगी, हड्डी टूटने से रही, खरियत रही, अब जो दर्द है, वह भी जाता रहेगा। अब इस तरह मोटर की ओर दौड़ मत पड़ना। क्यों?

चंपी कुछ बोली नहीं, अभया अपने घर की ओर चल पड़ी।

मगर अभया जब अपने हाते में आ पहुँचती है, तब वह वहीं से देखती है कि सामनेवाले दालान में उसके पिता बैठे हुए हैं और एक कोट-पैंटधारी सज्जन से हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं। अभया अपनी मुद्रा में जिस गति से आई है, उसी गति से वह उसी दालान होकर अपने कमरे की ओर बढ़ जाती। डा० स्वरूप अभया को जाते

समय अवश्य देख लेते हैं और देखकर कुछ सोत्सुक होकर कुछ कहा भी चाहते हैं; पर वे जो कुछ कहा चाहते हैं, कह नहीं सकते। अभया अपने कमरे में आकर स्नान-घर की ओर चल देती है।

कुछ ही क्षण के बाद जब अभया अपने कपड़े बदलकर स्नान-घर से बाहर निकलती है तब वह सुनती है कि उसके पिता उसे पुकार रहे हैं। अभया रुकती नहीं, वह सीधे दालान की ओर जाकर अपने पिता के पास पहुँचकर कहती है—क्या है बाबूजी?

—आओ—इधर आओ, अभया बेटी—कहकर डा० स्वरूप अभया की ओर देखते हुए कहते हैं—तुम्हें जानकर प्रसन्नता होगी कि जिन सज्जन को तुम सामने बैठे पा रही हो, हैं मि० आनंदकौशल! आप इंजिनियरिंग की ऊँची डिग्री लेकर अभी-अभी लिड्स युनिवरसिटी से आये हैं। आप की इच्छा है कि यहाँ कुछ एकड़ जमीन लेकर एग्रीकल्चर का एक फार्म खोलें। राजा बाबू की जमीन आपको पसंद आई है ··और मि० कौशल—डा० स्वरूप इस बार मि० कौशल की ओर मुखातिब होकर कहते हैं—अभी-अभी मैं जिसके बारे में आपसे कह रहा था, वही मेरी पुत्री—अभया···

—ओ, गुडलक—कहकर मि० कौशल कुशन से जरा उठते और हैंड-सेक करने के लिए अभया की ओर अपना दायाँ हाथ बढ़ा देते हैं। मगर अभया अपना हाथ नहीं बढ़ाती, बल्कि अपने दोनों हाथों को जोड़कर उनके प्रति अपना नमस्कार जनाती है और एक खाली पड़ी कुशन की ओर बैठने को बढ़ती हुई बोल उठती है—यह तो अच्छा रहा बाबूजी। पहले यहाँ एक पागल था, अब दो पागल हुए। मगर मैं समझ नहीं पाती कि जो लिड्स युनिवरसिटी की ऊँची डिग्री लेकर अभी-अभी विदेश से आये हैं वह ऐसे दिहात में आ जायँ जहाँ कोई चार्म नहीं······ ··

मि० आनंद कौशल समझ जाते हैं कि अभया क्या कहा चाहती है, इसलिए वह बीच ही में बोल उठते हैं—आपका अन्दाज कुछ गलत नहीं मिस स्वरूप! पागल भी जो आपने कहा है, वह भी [illegible]

सही है; मगर डा० स्वरूप में और मुझमें कुछ अन्तर है और वह अन्तर मौलिक है ! डा० स्वरूप अपने जीवन की लंबी अवधि नगरों में काटकर शांति की खोज में यहाँ आ बसे हैं और मैं···आप कह सकती हैं, मैं अभी से शांति की खोज में हूँ। अगर आप यह कहा चाहती हैं तो शायद गलत होगा। मैं शांति-वांति कुछ नहीं चाहता, आप जानती हैं कि मैं हथौड़ा चलानेवाला आदमी हूँ, मुझे तो वह कठोर कर्म ही चाहिए—धूप-गर्मी-बरसात···जो सामने आये, खुले बदन उसे झेलूँ···और वह झेलना···उसे झेलने के लिए ही तो मैं जंगलों को आबाद करने आया हूँ······

मि० कौशल इस बार अभया की ओर देखते हैं, अभया का मुँह टेबिल पर पड़ी लैंप के प्रकाश की ओर लगी है जिससे मि० कौशल को स्पष्ट जान पड़ता है कि उनकी बातों से अभया की आकृति प्रसन्न नहीं है, वे पाते हैं कि अभया की भवें जरा सिकुड़ आई हैं······मि० कौशल उधर से अपनी दृष्टि हटा लेते हैं और कुछ कहा ही चाहते हैं कि स्वयं अभया बोल उठती है—जंगलों को आबाद करना कहने में जितना सहज है, काम में उतना सहज नहीं ! शायद हो भी सकता हो—मैं ठीक नहीं कह सकती। मगर मैं जानना चाहती हूँ कि आप नेशनलिस्ट हैं क्या ?

अभया बोलकर मि० कौशल की ओर बड़े गौर से देखने लगती है और उसे लगता है कि मि० कौशल के कोट-पैंट और कमीज का खुला भाग—सब-के-सब खादी के हैं।

मि० कौशल अभया की बातों पर हँस पड़ते हैं और हँसते हुए ही कहते हैं—ऐसा कुछ मैं नहीं हूँ जो आप समझ रही हैं ·····

—तो क्या मैं गलत समझ रही हूँ ?—अभया इस बार उनकी ओर बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि से देखने लगती है।

—शायद यह गलत नहीं !

—फिर शायद क्यों ?—अभया गंभीर होकर ही कहती है—खुलकर आपको कहने में इतनी परेशानी क्यों हो रही है ? मैं सी० आई०

डी० नहीं, आपको इतमीनान होना चाहिए और नेशनलिस्ट होना कुछ बुरा तो नहीं है! क्यों?

मि० कौशल मुस्करा उठते हैं और उत्तर में कुछ कहा ही चाहते हैं कि अभेया को स्मरण हो आता है कि उसके साथ जो अभी-अभी आदमी आया है, वह बाहर बैठा हुआ है, उसके हाथ चपी के लिए तेल और दवा भिजवानी है, वह बोल उठती ह—कुछ क्षण के लिए मुझे इज़जत दीजिए ·····मैं अभी आती हूँ······

और अभया भीतर की ओर चल देती है और कुछ ही क्षणों के बाद दो शीशियाँ लकर बाहर बैठे उस आदमी को दे आती हे। वह अभी बठने भी न पाती ह कि मि० कौशल बोल उठते हैं—आप इतनी रात को भी दवा देना नहीं भूलतीं?

—आपने ठीक ही समझा—अभया कुछ गभीरता लिये हुए बोलती है—भूलूँ कसे? भूल वह कर सकता है जो अपने आप में ही भूला हुआ है! जो गाँव में आते-आते ही ऐक्सीडेंट कर सकता है···

—ऐक्सीडेंट—इस बार डा० स्वरूप बोल उठे—कैसा ऐक्सीडेंट, बेटी!

—सो तो आपसे ही पूछ क्यों नहीं लते बाबूजी?

—क्या बात है मि० कौशल? रास्ते में·····

—रास्ते में बड़ी परेशानी रही, डा० स्वरूप—मि० कौशल कहते हैं—मेरे दोस्तों ने बतलाया कि रास्ता ठीक है कार चली जायगी; मगर रास्ता इतना खराब निकला कि मत कुछ पूछिए, किसी तरह जब गाँव में कार आई तब अमूमन लडके दौड़ पड़े और उसी समय शायद कोई लड़की थी—वह इस कदर दौड़ी आई जब कार रोकना कठिन हो गया, बहुत बचाते-बचाते जरा ठोकर लग ही गई। वह ऐसा ऐक्सीडेंट न था कि जिसकी ओर मिस स्वरूप ध्यान दिला रही हैं······

—आखिर दिहात जो ठहरा—डा० स्वरूप कुछ आश्वस्त होकर कहते हैं—शहर की बात कुछ और है; मगर क्या बात है, अभया? ऐसी कुछ चोट ज्यादा तो नहीं·····

—ज्यादा और कम की बात मैं नहीं कह रही, बाबूजी !—अभया बोली—मैं तो कह रही थी कि जो लिड्स युनिवरसिटी के डिग्री-होल्डर हैं, इंजिनियर साहब, उनकी थोड़ी भी गलती······

—आखिर गलती हो जाती है, अभय—डा० साहब बोल उठते हैं—मशीन जो ठहरी, बे-काबू हो जाना कुछ असभव नहीं···

—फिर भी मैंने उसे काबू किया, डा० स्वरूप !—मि० कौशल अपने आप प्रसन्न होकर ही बोले—चोट कुछ सिरियस टाइप की तो नहीं, मिस स्वरूप ? मेरा खयाल है कि ऐसा कुछ न होगा, अगर हो भी तो अब डर नहीं, जब मैं पाता हूँ कि आप खुद डाक्टर हैं······

—हाँ, मैं डाक्टर हूँ !—अभया जरा अपनी भवों पर बल डालते हुए कहती है—आप ऐक्सीडेंट करते चलें और मैं मरहम-पट्टी लगाती चलूँ ! यही आपके कहने का मतलब है न ? क्यो, नहीं ?

—नहीं-नहीं, मिस स्वरूप !—मि० कौशल जरा अपने आप में ही सकुचाते हुए कहते हैं—यह मेरा मतलब नहीं—कतई नहीं ! मगर मुझ से भूल तो हो चुकी है, यह तो मान ही रहा हूँ।

—मगर मुझे भय है कि जब आपका कल-कारखाना खुल जायगा, तब आपसे जाने इस तरह की कितनी भूलें न होंगी और शायद गाँव-वाले इस तरह जाने कितने परेशान न होंगे !

अभया ने इस बार कसकर अपना रिमार्क पेश किया। मि० कौशल अपने आप में अस्त-व्यस्त जैसे दीखे, मगर अभया अब भी उनकी आकृति की ओर ही देख रही है; मि० कौशल उतने ही कुछ क्षणों में अपने आपको सभालते हैं और सभालते हुए ही कहते हैं—परेशान करना मेरा उद्देश्य नहीं, मिस स्वरूप ! मैं जानता हूँ कि दिहात के आदमी सूधे-सादे हैं, अपने तरीके से चलते हैं; मगर जिस तरह वे चलते आए हैं, उन्हें समय के अनुकूल नहीं कहा जा सकता ! इन्हें पथ-प्रदर्शन चाहिए। आज विदेशों में जो इतनी उन्नति हुई है, वह मशीन के द्वारा ही हुई है। वे लोग वैज्ञानिक तरीके से काम करना जानते हैं। वहाँ जमीन की बहुत कमी है; पर ऊपज अच्छी कर

लेते हैं। यहाँ जमीन की कोई कमी नहीं; मगर जिनके पास भी इफरात हैं, वे भी उतना गल्ला नहीं पैदा कर सकते, जिनसे वे सुखी-संपन्न कहला सकें। मुझे वही आदर्श यहाँ सामने रखना है। मैं यह दिखलाना चाहता हूँ कि किस तरह हमारी जमीन अधिक-से-अधिक गल्ले दे सके, किस तरह हमारे किसान भाई, कम मिहनत और थोड़ी-सी जमीन में, अपने सुख के साधन जुटा सकें! यही हमारा उद्देश्य है और यही मैं चाहता हूँ। इसीसे मैं गाँव की ओर मुड़ा हूँ। मैं समझता हूँ कि आप भी इस विचार को पसन्द करेंगी! आपके पास, जैसा कि डा० साहब ने मुझे बतलाया है, काफी जमीन है। इतनी जमीन से बहुत-कुछ किया जा सकता है; मगर इस तरह से नहीं—जिस तरह से अभी आपलोग चल रहे हैं! सुधार तो चाहिए ही, क्या आप सुधार को पसन्द नहीं करतीं, मिस स्वरूप?

इस बार अभया अपने आप हँस पड़ती है, मगर उस हँसी का अर्थ मि० कौशल समझ नहीं सकते, वे अभया की ओर देखते रह जाते हैं···

और अभया हँसते-हँसते ही बोल उठती है—आपकी स्पीच कुछ बुरी नहीं! जान पड़ता है कि आपने अपनी युनिवरसिटी में इंजिनियरिंग ही नहीं—ओरेटरी भी सीखी है। क्यों, नहीं?

इस बार मि० कौशल भी अपनी हँसी को रोक नहीं सकते! पर, वह खुलकर हँस नहीं सकते, वह कुछ गम्भीर होकर ही कहते हैं—आप मेरी बातों को इतनी लाइट न समझें, मिस स्वरूप! मैंने जो कुछ कहा है—कुछ ओरेटरी दिखाने के खयाल से नहीं—और ओरेटरी से मेरा कुछ खास वास्ता नहीं! हमलोग मजदूर हैं और मसक्कत करना जानते हैं—इतना ही भर मैं कह सकता हूँ, इससे ज्यादा नहीं।

—ओह, धन्यवाद मजदूर साहब को!—अभया हँसती हुई कहती है—अब मैं समझ पायी कि आप मजदूर हैं!

और अभया खिलखिलाकर हँस पड़ती है। वातावरण जिस रूप में धूमिल हो चला है, वह अभया की हँसी से स्पष्ट हो उठता है और उस समय और भी स्पष्ट हो उठता है, जब मि० कौशल अपनी हँसी के

वेग को संभाल नहीं सकते।

बातें जाने और कब तक चलतीं; मगर इसी समय राजा बाबू की हवेली से एक नौकर आकर इत्तिला देता है कि इंजिनियर साहब को अब वहाँ चलना ही चाहिए।

और मि० कौशल उठ खड़े होते हैं और अभया से कहते हैं—जो भी हो, मिस स्वरूप, आप से मिलकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई! मैं जानता था कि यह निरा दिहात है—वह गलत साबित हुआ, जब कि आप-सी यहाँ सच है, जहाँ डा० स्वरूप जैसे वयोवृद्ध अनुभवी व्यक्ति मौजूद हैं! कौन कहता है कि यहाँ चार्म नहीं है···

—ओह, चार्म!—अभया उठ खड़ी होती है और मुस्कराती हुई कहती है—खूब चार्म है—इतना कि, आपकी तबीयत अघा गई होगी···

—बेशक, मिस स्वरूप!

मिस्टर कौशल इस बार बिदा लेते वक्त डा० स्वरूप से नमस्कार करते हुए कहते हैं—अगर रायबहादुर को मेरे विषय में आपके परामर्श की जरूरत पड़े तो······

—आप निश्चिन्त रहिए मि० कौशल!—डा० स्वरूप आश्वासन के स्वर में कहते हैं—मेरी ओर से कोई बात अधूरी न रहेगी। जब आप सब तरह तयार हैं तो यह सेटलमेंट होकर ही रहेगा, मैं अवश्य-अवश्य आपका साथ दूँगा!

—आप साथ देंगे, यह तो आशा है ही—मि० कौशल कहते हैं, फिर अभया की ओर देखकर हँसते हुए कहते हैं—मगर मैं कह नहीं सकता, मिस स्वरूप ···

—मिस स्वरूप से आप भय ही खाते रहिए—अभया हँसी में ही बोलती है—मैं यह हर्गिज नहीं चाहती कि आप एक्सीडेंट करते चलें और मैं मरहम-पट्टी करती चलूँ······

—खैर, मरहम-पट्टी करनेवाली ही अधिक धन्यवाद के पात्र हैं और उनके प्रति मेरा नमस्कार रहा—कहते हुए मि० कौशल बंगले से बाहर चल पड़ते हैं।

षष्ठ परिच्छेद

आनंदकौशल उन युवकों में से नहीं है जिनमें कार्य करने की उमंगें तो रहती हैं, पर उन उमंगों में स्थायित्व नहीं; बल्कि जो केवल रंगीन स्वप्नों के जाल ही नहीं बिना करते, उन स्वप्नों का साकार रूप भी देना चाहते हैं—देना जानते भी हैं। समृद्ध परिवार का युवक आनंदकौशल विदेशों में वर्षों अपनी उग्र साधना में तप चुका है, वहाँ की अच्छाइयों और बुराइयों के भीतर रहकर भी उसने अपने जीवन के लिए अच्छाइयों को ही विशेष चुना है। स्वाधीन देशों में परिभ्रमण करने से न केवल उसकी देह ही सुपुष्ट हुई है, वरन उसका मन और मस्तिष्क भी स्थिर और बलवान हुआ है। वह चाहता तो अपने देश के बड़े ओहदे पर सरकारी नौकरी ग्रहण कर सकता था, पर उसके स्वतन्त्र विचार इस कार्य में उसे सम्मति न दे सके और उसने अपने अध्यवसाय और उद्यम को जिस दिशा में लगाना चाहा, वह है उसका ग्राम्य भूमि को ऐग्रिकल्चर फार्म के रूप में देखना। मगर यह कार्य इतना सुगम नहीं, अनेक अन्तराय हैं, अनेक बाधाएँ भी; फिर भी वह उन बाधाओं की ओर देखना नहीं चाहता, वह देखता है सुदूर भविष्य को, और वह वहाँ पाता है कि उसके खेत लहलहा रहे हैं, बिजली की मशीनों से पानी पटाया जा रहा है, बंजर जमीन में खाद डाली जा रही है,

उसकी जाँच की जा रही है; और उसकी वहाँ एक प्रयोगशाला है जिसके चारो ओर की कुछ जमीन प्रयोग के लिए सुरक्षित रख छोड़ी गई है, जिसमें आये दिन एक-न-एक प्रयोग चलता रहता है। जब वह प्रयोग सफल हो जाता है तब उस प्रयोग को विशेष रूप मे कार्य के रूप में परिणत किया जाता है। इस तरह उसका एग्रिकल्चर फार्म एक आदर्श, एक उन्नत एवं समृद्ध संस्था के रूप में समझा जाता है और इस सस्था के द्वारा वह देहातियों को भी अपने संपर्क में लाना नहीं भूलता। किसान उसके पास आते हैं, उन्हें प्रयोगशाला दिखाई जाती है, उन्हें अपने सफल प्रयोग समझाये जाते हैं। इस तरह उन किसानो को उससे बल मिलता है, इस तरह उन्हें अपने जन्मगत सस्कारों की पुष्टि मिलती है। तब वे समझ पाते हैं कि जो कृषि-कर्म उनके लिए आनंद का नहीं,—केवल वितृष्णाओं से भरा एक नीरस-अस्वादु कार्य था, वही कार्य कितना आनंदप्रद, कितना सुखमय और कितना प्रतिष्ठित है···

मगर आनंदकौशल का यह रंगीन स्वप्न ही नहीं है, वह केवल अपने स्वप्नों में उलझा-उलझा-सा नहीं रह पाता, वरन् उसका उद्यम, इस दिशा में, आगे बढ़ रहा है और प्रारभिक कठि-नाइयाँ हल हो चुकी हैं। आज पाँच सौ एकड़ जमीन राजा बाबू से बंदोवस्त हो चुकी है—इसमें उसे एक बड़ी रकम लगानी पड़ी है और यह रकम उसकी खास संपत्ति नहीं, वह लिमिटेड कनसर्न से उसे प्राप्त हुई है जिसका वह मैनेजिंग डाइरेक्टर है। अवश्य रायबहादुर और डा० स्वरूप दो ग्रामीण ही अभी इस कनसर्न में आ पाये हैं, शेष जो हैं, वे नागरिक और प्रतिष्ठा-संपन्न व्यक्ति हैं; पर सबसे अधिक शेयर उसका निजी ही है···

आनन्दकौशल धुन का पक्का युवक है! उसका उद्योग अपनी दिशा में सतत सचेष्ट है। फिर भी उसके सामने हँसनेवालों की कमी नहीं! वे हँसनेवाले कौशल को निरा पागल

ही नहीं समझते, सनकी, मूर्ख, अहंकारी और जाने क्या-क्या नहीं समझते ! किन्तु वह अपनी जगह अटल है, वह अपने विश्वास के निकट सच्चा और अडिग है। वह उपेक्षा-भरी हँसी पर स्वय हँस पड़ता है। जान पड़ता है, कि जैसे अपनी हँसी की मंदाकिनी में उपेक्षकों की हँसी और व्यंग-कर्दम को सुदूर बहा ले जाना चाहता है वह !

और ऐसा सतत सचेष्ट आनन्दकौशल जब उस रात को अभया से विदा लेकर रायबहादुर का आतिथ्य स्वीकार कर अपने बिछावन पर आ लेटा, तब उसके मानस-पटल पर अभया की निर्भय निर्भ्रांत मूर्ति कई बार आई, गई; पर उसने पाया कि जो अभया इतनी प्रखर-प्रचंड है, जिसके व्यग-बाण इतने तीखे-विषाक्त हैं, वह चाहे अपने-आप में जो भी हो, वह उसके कार्य की विद्वेषिणी नहीं हो सकती। अवश्य वह उदार है और सदय भी; फिर एक सदय-सहृदय से उसके कार्य में बाधा नहीं आ सकती, वह उस काम की बाधिका नहीं हो सकती··

मगर वह उस अभया की ओर उन्मुख क्यों हो ? वह जिस कार्य के लिए आया है, वही उसके लिए उपयुक्त है, वही करणीय है ! वह अभया की ओर क्यों झुके ? वह अभया की मूर्त्ति को क्यों अपनी पलको के बीच झूलने दे ! नहीं, वह अभया उसके विचार को अस्तव्यस्त कर डालेगी, वह अभया उसे कभी स्थिर न रहने देगी ··नहीं, नहीं; उसे अभया की ओर झुकना उचित नहीं, वह स्वयं कर्मठ है, स्वय कठिन-कर्मा है··· वह···वह···

और वह आनन्दकौशल अपने मानस-पटल से अभया को अनिच्छित वस्तु की तरह दूर फेंककर एक स्वस्ति की साँस लेता है और इस तरह वह अपनी निद्रा को बुला पा सकता है··· अभया झंझा की तरह उसके सामने आई और उसी झंझा की तरह वह चलती बनी, किन्तु जो झंझा उसके हृदय को एक बार

झंकृत कर गई है, उस हृदय के भीतर अस्पष्ट रूप में, छाया-सी एक मूर्ति का आभास मात्र अब भी विद्यमान है, पर वह कर्मठ आनदकौशल अत्यन्त प्रयत्नशील होने पर भी उस आभास को अपनी जगह से तिलमात्र हटाने में असफल है! ओह, वह आभास···वह आभास···

आनंदकौशल अब उस गाँव के लिए अपरिचित नहीं। पहाड़ी और पद्मा नदी से घिरी जो जमीन सदियों से अपनी छाती पर विभिन्न तरह के जंगली गाछ-वृक्षों, झाड़ियों और लताओं को लादे पड़ी थी जिनके भीतर वन्यजन्तुओं और विषधरों का अविचल निवास था, आज उसी पद्मा के किनारे, उसी जमीन की एक ओर में, जो पहाडी की तलहटी में पड़ती है, झोपड़े तैयार हो रहे हैं। उन देहातो से बाढ़ की तरह मजदूर आ रहे हैं, जो दिन भर का काम करके चले जाते हैं; मगर वे मजदूर जो दूर-दूर के हैं, उन झोपड़ों में रहते और दिन-भर काम कर चुकने के बाद, रात को रसोई बनाकर खाते-पीते और ढोलक मृदंग पर तुलसी बाबा की रामायण, सूर के पद और कबीर की साखियाँ गाते-बजाते और फिर निद्रा की शरण लेते हैं। कौशल भी उन मजदूरों के गीतों में रस लेता है। वह भी एक मजदूर ही तो है···

मगर आनंदकौशल केवल मजदूर ही नहीं है, वह वैज्ञानिक भी है। नयी-नयी मशीनें मँगाई जाती हैं, पद्मा नदी का वह स्थान, जहाँ सतह अधिक गहरी है, साफ किया जा रहा है, उसके सामने पानी के मोटे-मोटे बंबे रखे जा रहे हैं, कुछ दूरी पर, जहाँ की मिट्टी ईंटें बनाने के काम में आ सकती है, ईंटें बनाई जा रही हैं, उनके पकाने के लिए दूसरी जगह चिमनियाँ बैठाई जा रही हैं और बाकी जगह में अपार जन-समूह जंगलों को साफ करने में लगा है! जंगली जानवर जान लेकर अपनी पनाह ढूँढ़ते फिरते हैं, उनमें से जो सामने आ पड़ते हैं, गोली का शिकार बनते हैं, उनके चमड़े उधेड़ लिये जाते हैं तथा मांस और हड्डियाँ सड़कर खाद बनने को गड्ढों में डाल दी

जाती हैं। विषधर सर्पों का भी यही हाल है! उनके रंग-बिरंगे चमड़े मसाले डालकर धूप में सुखाये जा रहे हैं! उखाड़ी और काटी गई लकड़ियों में से कुछ से तो चारो ओर के घेरों में काम लिया जाता है और जो तख्ते बनाने के काम में आ सकती हैं, उन्हें चीरा जा रहा है और अधिकांश एक जगह एकत्र कर रखी जाती हैं। चारों ओर से उद्यम का प्रवाह जैसे चल रहा है! काम—केवल काम!·जैसे लगता है कि उन काम-गारों में जाने कहाँ की चेतना सजग हो आई है! औरत-मर्द, बच्चे-बूढ़े—जो भी वहाँ पहुँचते हैं, शक्ति भर काम करते हैं। किसी को काम करने के लिए दबाव नहीं डाला जाता! वे एक दूसरों को काम में पिल पड़े देखकर अपने-आपमें अजीब जोश और बल का अनुभव करते हैं। आनंदकौशल की अविराम गति में देख-रेख चल रही है। उसका ध्यान एकरस सर्वत्र छाया है। कोई उसकी आँख से बच नहीं पाता! जो गाँव सदियों से निष्प्राण थे, उनमें चेतना की लहर दौड़ पड़ी है, जो अपने कर्म पर खिन्न थे, उनकी खिन्नता आनंद में परिवर्त्तित हो गई है। लगता है, जैसे आनंदकौशल कर्म-प्रवाह के साथ आनंद का एक बड़ा खजाना लाकर उड़ेल रहा है वहाँ!

मगर आनंद अकेला नहीं है, उसके साथ और भी एक्सपर्ट् हैं जो अपने-अपने विषय के अच्छे जानकार हैं। उनमें अधिकांश वेतनभोगी हैं और लाभांश पर कुछ हिस्सेदार भी! सबके साथ आनंदकौशल का एक-सा व्यवहार है, वह बड़े-छोटे का भेद नहीं मानता, पाँच रुपए से पाँच सौ रुपएवाले व्यक्तियों में रुपए का जो भी प्रभेद हो, पर व्यवहार में सब एक-से हैं! मजदूर नहीं जानते कि वे मजदूर हैं, वेतन-भोगी नहीं जानते कि उन्हें वेतन से ही सिर्फ मतलब है। बड़े-छोटे सब सम हैं, इस तरह वह एग्रिकल्चर फार्म एक ऐसों की आज कालिनी है जो बुद्धि-जीवी हैं, जो श्रमिक हैं, जो बे-घर-बार के हैं, जो निराश्रित और निरवलंब हैं···पर वहाँ न कोई निरवलंब है, न निराश्रित! सभी को एक दूसरे का भाई-चारा प्राप्त है, सभी

एक वृहत् परिवार के कुटुम्ब हैं, कोई बेगाना नहीं, कोई बे-घरबार नहीं, रहने को स्वच्छ, सुन्दर हवादार कमरे, टहलने को सुर्खी से पटी पीली-पीली सीधी सड़कें, खेल-कूद के लिए खुला मैदान, आमोद-प्रमोद के लिए अलग सामान······

उबड़-खाबड़ जमीन समतल-चौरस की जा रही है, एक ओर से मशीन के हल मोटरों से चलाये जाते हैं, बिजली के डायनमो से नलो-द्वारा ऊँचे मंच-स्थित भीमाकार टंकों में पानी इकट्ठा किया जा रहा है—और इसी डायनमो से प्राप्त वह कालिनी रात को रोशनी से दीवाली की याद करा देती है······

अभया अब भी पहाड़ी के शिखर पर आती है और पाती है कि वन-जंगलों की जो हरीतिमा संध्याकालीन लालिमा के बीच अधिक उज्ज्वल हो, उसकी आँखों में एक स्वप्न की सृष्टि कर छोड़ती थी, वहाँ आज वह सुन पाती है डायनमो और दानव-जसे मशीन-हलों का भीम गर्जन ! उसकी आँखों में रात की दीवाली स्वप्निल तंद्रा नहीं भरती। वहाँ वह पाती है कि स्वच्छन्द विचरण करनेवाले जन्तुओं की हुतात्माएँ अपनी लाल-लाल आँखों से वहाँ के रहनेवालों की ओर घूर रही हैं। अभया समझ नहीं पाती—यह कर्म-उद्योग क्या है ? क्यों इतनी हाय-हाय है ? क्यों अनादिकाल से सोई श्यामल पृथ्वी के वक्षस्थल को इतनी बेरहमी के साथ, क्यों इतनी बुरी तरह—विदीर्ण किया जा रहा है ! वह पृथ्वी जो वसुन्धरा है···वसुन्धरा ही तो, वीरभोग्या वसुन्धरा···तो क्या आनन्दकौशल उन्हीं वीरों में है···

और इस प्रश्न के निकट पहुँचकर अभया की वितृष्णा कराह कर नीचे दब जाती है, उस स्थान पर एक स्नेह का हल्का-सा झोंका बह जाता है, अभया के अंग-प्रत्यंगों में सिहरन होती है, वह नहीं जानती कि यह सिहरन क्या है और क्यों है ! क्यों वह अभय-निर्भय रहनेवाली प्रखर अभया उस स्पर्श सिहरन के वेग को सँभाल-सँभाल नहीं पाती ! क्यों वह कमजोर हो पड़ती है ! क्यों वह इतनी कमजोर हो······

और वह अपने-आपमें कमजोर पड़ी जब उस रात्रि में, उस शिखर पर से आनंदकौशल की प्रयोगशाला—जो खास आनंदकौशल का एकमात्र आश्रय-स्थल है—की ओर आँखें उठाकर देखती है, तब वह पाती है कि प्रयोगशाला का द्वार बंद है, किन्तु उसकी एक खिड़की खुली है जिससे छनकर प्रकाश आ रहा है और उस प्रकाश में वह देख पाती है कि हाफसर्ट पहने, जिसका कालर बे-तरतीब उठा हुआ है, एक कर्मठ युवक, उस तीक्ष्ण प्रकाश में, टेबिल के सहारे खड़ा हो, किसी चीज को गौर से देख रहा है ···· कितना मनस्वी है युवक !······जिसका ध्यान, बस, एक चीज पर जमा है, वह इधर-उधर कुछ नहीं देखता···क्या इधर-उधर देखने लायक कोई चीज रही नहीं गई है ? ·····

और अभया अपने-आपमें कुढ़ जाती है, वह उस ओर से अपनी आँखें हटाकर, जितना शीघ्र बनता है, शिखर, से नीचे उतरती और जैसे दौड़ती हुई अपने घर की ओर चल पड़ती है .

अभया जाने क्यों अपने-आपमें एक अस्वस्ति का अनुभव करती है, वह अस्वस्ति किस ओर से आ रही है, उसका पता वह नहीं पाती; वह केवल इतना ही पाती है कि उसके जीवन में जो धूमकेतु बनकर उदित हुआ है, वह और कोई नहीं, आनंदकौशल है—वह इंजिनियर है, वह नेशनलिस्ट है···वह दुस्साहसिक वैज्ञानिक और कर्मठ मजदूर है······जो स्वयं अल्प-अल्प बोलता है; पर जो कुछ बोलता है, उसमें सुन्दरता रहती है, दृढ़ता रहती है, गंभीरता और उसके मन की संलग्नता रहती है ! वाणी, हृदय, मन और चेतना का पुंज ही तो वह आनंद है। जो उसे अपनी ओर खींचे लिये जा जाना चाहता है···वह कर्मठ युवक, जिसके सामने काम—केवल काम का एक अम्बार बना-जैसा रहता है सतत, जो अपनी नजरों को दुनिया की ओर नहीं डालता—शायद अपने-आपकी ओर भी जो देखना पसंद नहीं करता ! तभी तो अपने को वह इतना अस्तव्यस्त रखता आ रहा है, अपनी ओर से बिलकुल लापरवा—इतना कि,

लगता है, उसे सँभालने के लिए कुछ चाहिए—कोई चाहिए—वह जो अपने प्रयोगशाला में बैठा जाने कौन-सी गवेषणा में इतना डूबा हुआ है कि उसे, बाहर क्या हो रहा है—पता नहीं! नहीं, अभया उसे अस्तव्यस्त रूप में रहने नहीं देगी···वह नहीं चाहती कि एक मनस्वी युवक अपने-आपको इतना नगण्य समझे···

अभया आनंदकौशल के लिए इतनी सदय नहीं है जितनी वह सोच रही है उसके प्रति! कौशल जब-जब अभया से मिला है तब-तब उसने उससे एक-न-एक व्यंग, एक-न-एक उपालंभ, एक-न-एक कटूक्ति और एक-न-एक वितृष्णात्मक शब्द ही सुना है; फिर भी उसे इतना पता है कि उन वितृष्णात्मक व्यंग-कटूक्तियों में उसकी ईर्ष्या नहीं है, द्वेष या हिंसा की भावना नहीं है! जो-कुछ है, वह अभया के अतलस्पर्शी हृत्तल की एक संवेदनशील सुकुमार शिशु-सी भावना है, जो अपनी जगह से झाँककर वहीं सोयी पड़ी रहना चाहती है—किन्तु जिसे अभया स्वय नहीं पहचानती और न पहचानते हुऐ, बाहर-बाहर, नारियल के खोपड़े की तरह सख्त-सख्त बातें कर जाती है! आनंद इन बातों से बुरा नहीं मानता, बुरा मानना उसका स्वभाव भी नहीं है और तभी वह हँसते हुए कह देता है—शायद आप ठीक समझ रही हैं मि० स्वरूप······

अभया समझती है—इतना जल्द अपनी भूल को स्वीकार कर लेनेवाले व्यक्ति आनंद ही हो सकते हैं—दूसरा नहीं हो सकता। कौन अपने अहं को इस तरह, इतनी आसानी के साथ, अपनी ओर मोड़ ले सकता है? अभया उसके उत्तर से मन-ही-मन खिन्न होकर अपने-आपमें छोटी हो उठती है! जो अभया के लिए जीत है वही तो उसकी सबसे बड़ी हार है—इसे समझने में उसे कुछ द्विविधा नहीं रह जाती कि आखिर आनंद ने उसकी बात का खडन न कर स्वीकार क्यों कर लिया इतना शीघ्र, जहाँ कोई भी व्यक्ति बड़ी बेरहमी के साथ खंडन करने से नहीं चूकता! तो क्या आनंद इतने ढुनमुन विचार का व्यक्ति है!

नहीं; आनंद ऐसा नहीं हो सकता, जो अपनी विद्या-बुद्धि, ज्ञान और संपन्नता में इतना समृद्ध हो, वह ढुनमुन विचार का कदापि नहीं हो सकता; तो फिर आनंद वैसा क्यों है ?

अभया आनंद को जानने का प्रयास करती है, पर उसके सामने वह एक प्रश्न बनकर ही रह जाता है जिसका उत्तर वह अपने-आपमें नहीं पाती। इस तरह वह अपने-आपको शांत करने की अपेक्षा अधिक अशांत ही कर छोड़ती है, पर अशांति में ही उसे अच्छा मालूम पड़ता है, जबकि उसके मानस के वे चित्र, जो उसे विह्वल-बेचैन कर छोड़ते हैं—आप-से-आप छितर-बितर हो जाते हैं। वह स्वस्ति की एक साँस छोड़ती है, वह प्रसन्न हो उठती है।

और एक दिन जब अभया इस तरह अपने को प्रसन्न रख पा रही थी, तभी अचानक, एक अयाचित अतिथि की तरह, अपनी कार पर आनन्द आ पहुँचा, कार से सीधे उतरकर दालान में आया, जहाँ अभया उसके स्वागत के लिए बाहर की ओर ही आते दीख पड़ी और पहुँचते ही वह अपना नमस्कार जनाते हुए बोला—क्षमा करेंगी डाक्टर ! सुना, उस दिन आप मेरे बँगले तक गई थीं, मगर······

—मगर की गुंजाइश आपके पास है कहाँ मि० आनंद—अभया जरा खिंची हुई ही बोली—आप तो जाने, अपनी प्रयोगशाला में बैठकर ·····

—जभी तो-जभी तो ?—आनंद प्रसन्न-वदन उसकी बात को बीच में ही रोककर बोला—आप ठीक समझ रही हैं। प्रयोगशाला में बैठकर सचमुच मुझे दूसरों का ध्यान ही नहीं रह जाता। यह मेरा दोष है।

—दोष ?—अभया हँस पड़ी—आप भी अच्छे जीव हैं मि० आनंद, जो दूसरे के लिए गुण हो सकता है, वही तो आपका दोष है। मगर मैं यह जानना चाहती हूँ कि······ओह, शायद कहना ठीक न होगा और ऐसों से कहकर लाभ ही क्या ?

—मगर क्या कहा चाहती हैं ! कह तो डालिए पहले।

—हाँ, मैं जानना यह चाहूँगी कि क्या रात-दिन वही काम—

वही काम, क्या काम को छोड़कर और दुनिया में है भी कुछ मि० आनंद ! कह भी सकेंगे, है भी कुछ !

मुझे इस तरह आप पागल न करें डा० अभया ।

—आप खातिर जमा रखें, जो स्वयं पागल है, उसे और पागल बनाना मेरा काम नहीं । आप मेरी ओर से इतमीनान रखें।

—ऐसा न कहें डाक्टर !—आनंद निश्चिन्तता से कुशन पर बैठते हुए बोला—आप पर इतमीनान कब नहीं है, इसके लिए आपको कुछ कहना नहीं पड़ेगा; मगर मैं···आपसे कहने में मुझे कोई हिचक नहीं······मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा हूँ जहाँ मुझे पहुँचना चाहिए। आप शायद मेरे विचारों से सहमत होंगी कि थ्योरी और प्राइक्टिस एक चीज नहीं ! कुछ ऐसी थ्योरियाँ हैं जिन्हें मैं कई बार पढ़ चुका हूँ, जानता भी हूँ अच्छी तरह; मगर वे प्राइक्टिस में पूरी-पूरी उतरती नहीं दीखतीं। कहाँ कौन-सी भूल रह जाती है, मेरी समझ में नहीं आता। मैं प्राइक्टिस में उन्हें लाना चाहता हूँ···मैं इस कार्य में काफी फेल हो चुका हूँ, पर फेल शब्द मेरे लिए कोई मानी नहीं रखता—जबतक मैं अपने प्रयत्न में कामयाब नहीं होता ! ···आप खुद जानती हैं, जब कोई गवेषक अपनी गवेषणा में उलझा जाता है, तब उसकी परेशानी कितनी बढ़ जाती है ! ···शायद उससे मेरी परेशानी कुछ कम नहीं है······जबतक मैं कामयाब नहीं हो लेता अपने प्रयत्न में, तबतक···डा० अभया, आप क्षमा करेंगी···मेरा उद्देश्य आपका दिल दुखाना न था ! मैं जानता हूँ, जब मैं अपने प्रयत्न में सफल हूँगा तो सबसे ज्यादा आपको ही खुशी होगी—शायद मुझसे भी ज्यादा······

—आपसे भी ज्यादा ?

—हाँ, मुझसे भी ज्यादा !

अभया का मुँह लाल हो उठा, उसके कानों की जड़ें झनझना उठीं, भवें आपस में सिकुड़ उठीं और अपने ओठ को दाँतों से कुरेदते हुए बोली—मैं आपकी होती कौन हूँ जिसे आपसे भी ज्यादा······

—यही तो बात है अभया देवी!—आनंद खिलखिलाकर हँस पड़ा—मैं आपसे गलत नहीं कह रहा। फिर आनंद की हँसी अपने-आप रुकी और शांत स्वर में बोला—मैं जानता हूँ, आप मेरी कोई नहीं—यह प्रकाश की तरह सत्य है! पर, प्रकाश ही सत्य नहीं है, अभया देवी, अन्धकार भी एक सत्य है, उसका भी अस्तित्व है, इसे आप अस्वीकार नहीं कर सकतीं! फिर मैं कह नहीं सकता—शायद कहने की मुझमें वह भाषा भी नहीं, जिससे मैं व्यक्त कर पा सकूँ कि आप क्या हैं। आप मेरे लिए अधिक अंधकार हैं या प्रकाश, इसे न तो मैं जानता हूँ और न शायद आप जानती हों! पर अंधकार और प्रकाश में, जबकि प्रकाश से अंधकार दूर हटकर भी सर्वतोभावेन दूर नहीं हट जाता, वहीं मैं पाता हूँ कि आप खड़ी मेरी ओर, अपनी भवों पर बल डालकर, दाँतों के बीच ओठ दबाये, आँखों की कोर पर लालिमा की एक क्षीण रेखा खींचती हुई देख रही हैं··· और···और···

—बहुत हुआ, बहुत हुआ—बीच ही में अभया अपने रोष में उबल पड़ी—हथौड़ा चलानेवाले मजदूर के मुँह से काव्य नहीं सोहता······

—काव्य का स्थान हृदय है, अभया देवी! हथौड़ा चलाने-वाला मजदूर भी हृदय रख सकता है और अस्त्रोपचार करने वाला डाक्टर भी·····मगर उस हृदय का पता कौन लगा सकता है?

—ओह, आज मैंने समझा कि श्रीमान् आनंदकौशल, जो इंजिनियर हैं, हृदय भी रखते हैं!

अभया ने कहकर मुँह दूसरी ओर घुमा लिया। आनंद नहीं समझ सका कि अभया जो कुछ बोली, वह हँसकर या व्यंगात्मक या रोष में। फिर भी आनंद ने अपनी हँसी लिये हुए ही कहा—मस्तिष्क जहाँ काम नहीं कर सकता वहाँ हृदय की ही बारी आती है। शायद मैं इसे ठीक-ठीक नहीं कह पा सका। आप तो डाक्टर हैं मिस स्वरूप,

इस विषय में आपकी श्रेष्ठता ही मुझे माननी चाहिए। क्यों, आपका क्या खयाल है?

अभया इस बार हँस पड़ी, बोली—देखती हूँ, आप इंजिनियर से डाक्टर भी बनना चाहते हैं!

—डाक्टर बनना क्या इतना आसान है, अभया देवी? मगर आपके बीच रहकर और आपका सहारा पाकर यदि ऐसा बन सका तो वह मेरा सौभाग्य ही होगा!......मगर मैं जो कहने आया था, वह तो अभी कह भी नहीं पा सका। हाँ, मैं कहने आया था कि, आप क्या मेरी प्रयोगशाला चलकर न देखेंगी? शायद मैं जहाँ उलझ-उलझ रहा हूँ, आपके सामने देखूँ—जब आप वहाँ बैठी हुई हों—शायद मैं अपने उलझन को कुछ सुलझा सकूँ! क्या आप मेरी मदद करेंगी इस प्रयोग में?

—क्या आप मुझे माडल बनाना चाहते है?—अभया किंचित् रोष में ही बोली—देखती हूँ, आप आर्ट से भी शौक रखते हैं? आप क्या-क्या बनना चाहते हैं—कुछ पता नहीं चलता। आप इंजिनियर तो हैं ही, आर्टिस्ट भी......

—नहीं, मैं इंजिनियर ही बनकर रहना चाहता हूँ अभया देवी, इससे अधिक और कुछ नहीं। मगर आप चलिए, एक बार मेरे साथ आप चलकर स्वयं पायेंगी कि मैं क्या हूँ......

अभया इस बार कुछ न बोली, वह उठकर खड़ी हुई। आनंद भी उठ खड़ा हुआ और बोला—तो क्या आप मुझे क्षमा न करेंगी? जब तक मैं आपको यहाँ से लेकर नहीं चलता......मैं सच कहता हूँ, मैं समझूँगा कि आपने मुझे क्षमा नहीं किया!

—अभया क्षमा करना नहीं जानती।

—नहीं, गलत है! अभया क्षमा भी करती हैं, रोष भी करती हैं......

—हाँ, रोष भी करती है, द्वेष भी करती है, ईर्ष्या भी शायद; मगर अभया क्षमा करना नहीं जानती—इतना तो आप जान ही लें।

—सच, अभया देवी; क्या यह सच है ?

—हाँ, बिलकुल सच !—कहती हुई अभया भीतर की ओर चल पड़ी। आनंद अपनी जगह पर ठिठका रहा, वह समझ नहीं सका, वह क्या सुन गया। वह ठहरा हुआ नहीं रहा। हाँ, वह वहाँ से ही नमस्कार जतलाते हुए कमरे से बाहर आकर कार पर आ बैठा, कार के सेल्फ स्टार्टर को दबाया, वह घर्र से बोली, तभी उसने सुना कि अभया कह रही है—इतनी जल्दी करेंगे तो मेरा जाना कैसे हो सकेगा ? क्या आप चाहते हैं कि मैं अपने अस्त-व्यस्त कपड़े में ही आपके साथ चल चलूँ ?

—ओह, समझा !—आनंद वहीं से अपने संकोच में सनकर बोल उठा—खैर, भूल हुई ! क्षमा कीजिए ! मै यहीं हूँ, आप आइए—खूब इतमीनान के साथ !

—मगर इतमीनान के साथ आप मुझे ले जाना ही कहाँ चाह रहे हैं ?—अभया अपने कमरे से ही बोल उठी।

और कुछ ही क्षण में अभया हँसती हुई आकर बोली—चलिए, आज तो आप मुझसे बदला चुका करके ही दम लेंगे !

—नहीं-नहीं, ऐसी आशा मत कीजिए ! मैं बदला बिलकुल पसंद नहीं करता, वह तो पुरुषों का काम है भी नहीं—वह तो···

और कार अपनी दिशा में चल पड़ी।

सप्तम परिच्छेद

नारी-पुरुष के रूप में एक दूसरे से बिलग रहनेवाले दो व्यक्ति आज परिस्थिति की जिस अनुकूलता में एकत्र होकर वातावरण में एक सजीवता का अनुभव कर रहे हैं, वह कुछ नया नहीं है। यह नयापन अपनेआपमें बहु पुरातन है—चिरंतन है। कर्म-प्रवाह में सतत प्रवहमान आनद आज समझ पा रहा है कि जीवन में कर्म केवल एक बोझ है—वह बोझ जो जीवन को शुष्क, नीरस और खोखला बनाकर छोड़ता है और अभया पाती है कि रेगिस्तान में बढ़नेवाले के लिए ओयसिस जितना अपेक्षित और आनंदप्रद है, उतना ही नहीं, वरन उससे कहीं अधिक नारी के लिए पुरुष है। उसका जीवन तो अबतक उसी रेगिस्तान-जैसा रहा है, जहाँ सर्वत्र बालुकाराशि है, हरीतिमा ढूँढ़े भी नहीं मिल रही—जिस बालुकाराशि में चलकर उसके अंग-प्रत्यंगों की सुषमा नष्ट हो गई है, केवल मांस-पेशियाँ उभर आई हैं, रक्त में उष्णता और मन में तीक्ष्णता ने घर कर लिया है! यह तो स्वस्थता का लक्षण नहीं, मृत्यु का आह्वान है········और उसी क्षण जब वह आनंद की ओर खुली आँखों से देखती है और देखती है कि पुरुष के रूप में जो उसे दीख पड़ रहा है, वह तो उससे भी अधिक कठोर कर्म से कुम्हलाया-सा है, बिलकुल जड़-जैसा ठूँठ, तब उसके प्रति सहजात एक स्नेह, एक आत्मीयता

सजग हो उठती है और वह उसी आत्मीयता और स्नेह-सने वचनों से कह उठती है—सचमुच आप मुझे मॉडल के रूप में रखकर काम करना चाहते है अपनी गवेषणाशाला में आनंद ? सचमुच·········

आनंद कार की स्टेयरिंग पकड़े अपनेआप चौंक उठता है अभया की बातें सुनकर। अप्रत्याशित भाव से सुनी गई बातों की ओर जैसे उसका ध्यान हो ही नहीं, फिर भी वह अपने पास ही बैठी अभया की ओर देखकर बोल उठता है—ठीक मॉडल तो नहीं कह सकता, अभया देवी ! मैं किस रूप में रखा चाहता हूँ, वह मॉडल नहीं; कह नहीं सकता, किस रूप में रखना चाहता हूँ······

आनंद अब भी अपनेआपमें उलझा ही है, उसे कुछ समझ में नहीं आता कि किस तरह वह अपने भाव को व्यक्त कर पाय······

पर अभया सचेष्ट है, कुछ सचेतन भी, वह समझ जाती है, जिसे वह आनंद अपनेआप व्यक्त नहीं कर पा रहा। वह सहज सरल गति में बोल उठी—देखती हूँ, रात-दिन मशीन चलाते-चलाते आप भी पूरे मशीन हो गये हैं ! मैं पूछती हूँ, मनुष्य का इस तरह मशीन हो जाना क्या वांछनीय है, अपेक्षणीय है ?

—अपेक्षणीय ! वांछनीय !—आनंद ने स्थिर दृष्टि से एक बार अभया की ओर देखा और देखते हुए ही बोला—वांछनीय नहीं है—यह मैं जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि जबतक मनुष्य अपनी अभीप्सित वस्तु को पा नहीं लेता, तबतक उसे जो भी अवस्था से गुजरना पड़ें, गुजरने के सिवा उसके लिए दूसरा चारा ही क्या है !

आनंद ने कहकर स्टेरयिंग दबाई, कार तीव्र वेग में दौड़ पड़ी और आनंद उसी तीव्र वेग में बोल उठा—मगर, मैं पा नहीं रहा हूँ कि आपके पहले मुझे किसी ने भी इस दिशा में याद दिलाई हो ! ओह, यह तो मेरे प्रति आपकी ममता नहीं तो और······

—ममता नहीं, पत्थर !—रोष में अभया बोली और अपने मुँह को दूसरी ओर फेर लिया।

—पत्थर !—आनंद इस बार हँस पड़ा—आप चाहे जो कह

लें—पत्थर ही कह लीजिए, मैं रोकूँगा नहीं। मगर जो एक के लिए पत्थर हो सकता है, कौन जानता है कि वह दूसरे के लिए देवता की प्रतिमा न हो! क्यों, कुछ गलत मैं कह रहा?

आनंद ने अपनी बातें शेष कर उत्तर की प्रत्याशा में अभया की ओर ताका; पर अभया अपनी जगह अचल-जैसी पड़ी किसी दूसरी ओर निहार रही है। आनंद जो-कुछ पाना चाहता था, वह पा नहीं सका। तबतक उसकी कार प्रयोगशाला के पास आ चुकी थी। कार रुक गई, आनद उतर पड़ा और अभया की ओरवाले दरवाजे को खोलते हुए कहा—स्वागत है अभया देवी, पधारिए······

—ओह, स्वागत!—अभया जरा खिची-सी बोली—मैंने अब जाना कि आप स्वागत करना भी जानते हैं।

—शायद न भी जानता था, आप कुछ गलत नहीं कह रही हैं अभया देवी—हँसते हुए आनंद ने कहा—यह तो आपने ही सिखाया है न! क्या आप इतनी जल्दी भूल गईं? देखता हूँ—अपनी प्रयोगशाला में मै ही नहीं भूलता, जो भी बाहर से आता है, वह भी भूले बिना नहीं रहता! क्यों?

मगर क्यों का उत्तर पाने के लिए आनंद रुका न रहा। अभया आगे-आगे चल पड़ी है, वह प्रयोगशाला के हाते में पहुँचकर पाती है कि तरह-तरह के पौदे लग रहे हैं। सबके निकट एक-एक लकड़ी से लगी तख्ती पर उनके जन्म-दिवस और बढ़ने के क्रम की तिथियाँ लिखी हुई हैं। वह सरसरी निगाह से इन पौदों की ओर देखती है—देखकर वह पाती है कि जिस तरह हॉस्पिटल में रोगियों के निकट उनके रोगों के बढ़ने-घटने की सूचना दिलानेवाले जो चार्ट लगे रहते हैं, आखिर ये तख्तियाँ वे ही तो हैं! वह आप-ही-आप हँस पड़ती है। तबतक आनंद आगे बढ़कर प्रयोगशाला के दरवाज़े को खोलता है, अभया उसके भीतर प्रवेश करती है—जहाँ वह पाती है कि, विभिन्न प्रकार के गमलों में विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े पौदों से वह कमरा भरा है। सोने के लिए एक काठ की चौकी पड़ी है

जिसपर बिछावन मूर्च्छित-जैसी अवस्था में बिछा है; तकिए की भी वही दशा है; कुछ कुर्सियाँ हैं, वे भी कुछ करीने से नहीं; टेबिल है, पर, उसपर कुछ पौदे, कुछ गमले और कुछ विभिन्न रंगों की खाद ढेरों पड़ी हैं—सभी अस्त-व्यस्त-जैसे—यही आनंद की प्रयोगशाला है, यही आनंद का आवास है ! और उसी आवास में आकर अभया पाती है कि रेकाबियों में खाना ज्यों-का-त्यों पड़ा है, उनमें कुछ शाक-पत्ते हैं—कुछ उबले हुए—कुछ थोड़ी-सी रोटियाँ हैं जो ठिठुरकर सूखी-सी पड़ी हैं······

अभया नारी है, भोज्य वस्तु की ओर सहजात उसका ध्यान है और जब वह पाती है कि यह तो आनंद का रात्रि-कालीन भोजन है जिसे वह स्पर्श भी नहीं कर सका है, तब वह रोष-सने वचनों में बोल उठती है—देख ली आपकी प्रयोगशाला, आनंद बाबू ! इसमें आपका रहना संभव हो सकता है; पर अभया यहाँ पल भर भी नहीं टिक सकती !

आनंद अपने में जरा छोटा उतर आता है। वह समझ नहीं पाता कि अभया क्यों आते-आते ही वितृष्णा में भर उठीं। वह संकोच में आकर बोल उठा—यह मेरा दुर्भाग्य है, अभया देवी ! मैं जानता हूँ, यहाँ आपके मन के लायक न तो बैठने की जगह है, न कुशन है, न कोई आराम की वस्तु···आखिर हम जो मजदूर हैं······

—मजदूर इस तरह की दून की नहीं हाँकते ! लंबी-लंबी बातें नहीं बनाते ! अपने सामने मॉडल का स्वप्न नहीं देखा करते !

—मजदूर इतने से भी मन न बहलाए तो आप ही कहिए, वह आखिर जी कैसे सकता है, अभया देवी ?

—जी सकता क्यों नहीं ? आखिर ये पौदे जो जी रहे हैं, जिन्हें आपने चारो ओर से पसार रखा है, आखिर ये भी तो जी ही रहे हैं !

—मगर पौदे मनुष्य नहीं !

—ओह जाना, पौदे मनुष्य नहीं !—अभया ने इस बार आनंद

की ओर ताका और उसी तरह ताकते हुए बोली—और मनुष्य पौदे बनें, क्या आप यही चाहते हैं न? मनुष्य और पौदे में भेद ही क्या रह गया, जब मैं पाती हूँ कि एक सूखी-सडी खादों पर जीता है और दूसरा सुन्दर और सरस चीजो को सुखाकर खा नहीं पाता—केवल उन्हें आघ्राण कर ही जीता है! ये रेकाबियाँ स्वय बोल रही हैं! काश, आपके कान होते और उनमें सुन पाने की ताकत होती।

आनंद को अब याद आया कि अभया का इशारा किस ओर है। वह हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोला—आपका कहना कुछ गलत नहीं है, अभया देवी! सच पूछिए तो मैं रातभर अपने अनुसंधान में इस तरह गर्क रहा कि कब नौकर यहाँ खाना रख गया, उस ओर खयाल गया ही नहीं। खयाल जाता भी कैसे, भूख भी महसूस नहीं की......ओह, अनुसंधान......

—ओह, अनुसंधान में जान पड़ता है कि आज आपने जलपान तक नहीं किया, क्यों ठीक है न!—अभया जरा तीव्र स्वर में ही बोली।

—नहीं, आप गलत समझ रही हैं!—आनंद हँसते हुए बोला—मैं पाता हूँ कि आप भी कुछ कम नहीं भूलतीं! क्या आपने फल और चाय नहीं पिलाई?

—और उनसे आपका पेट भर गया?

—क्या कहती हैं अभया देवी? भर गया तो आपकी मीठी बातों से, वह तो घाले में मिला—कहते हुए आनंद हँस पड़ा; मगर अभया न हँस पा सकी।

आनंद अपनी प्रयोगशाला में बैठकर अभया को अपने प्रयोग की कुछ बातें सुनाता है, वह सुनाने में जैसे कितना निमग्न है। वह चाहता है कि, जिन्हें वह अबतक अपने प्रयोग में लाकर सफल-प्रयत्न हो सका है, उनकी ओर वह अभया का ध्यान खींचे और वह इस ओर प्रयत्न करता भी है; पर जितने भी प्रयत्न उसके होते हैं, वे अभया की दृष्टि में जैसे कोई मूल्य ही नहीं रखते; न

रखते हों—सो कोई बात नहीं, अभया भीतर-भीतर उसके प्रयासों की, प्रयोगों की जितनी सराहना करती है उतना ही बाहर-बाहर वह उखड़ी-उखड़ी-जैसी बातें करती है और ऐसी करती है जो आनंद के लिए निरानंदात्मक वितृष्णा-मूलक और कष्टकर हों; पर आनंद स्थितप्रज्ञ-जैसा अभया के सभी वारों को, व्यंग और उपेक्षाओं को अपने हृत्तल की खुली हँसी में उड़ा देता है, वह अपने विपक्षियो के लिए इतना ही भर जानता है। इससे अभया अपने-आपमें क्षुण्ण हो उठती है, उसका अहं उसे उत्तेजित कर छोड़ता है और कुछ चिढ़कर, कुछ बिगड़कर बोल उठती है—फूँक से पहाड़ को जो उड़ाना चहता है, वह मूर्ख नहीं तो और क्या है ?

मगर आनंद का ध्यान इस ओर नहीं है और न वह यही समझ पाता है कि अभया क्या बोल गई ! फिर भी उत्तर के रूप में वह हँसते हुए कह उठता है—मूर्ख ही तो पहाड़ को फूँक से उड़ाना जानता है अभया देवी ! आपका कहा सोलहो आने सच है—इसे मैं बहुत अदब के साथ माने लेता हूँ; मगर इस मूर्ख की बातों को कुछ समझने का आप जरा प्रयत्न भी तो करें। मैं कहता जाता हूँ और आप सुनती नहीं। जान पड़ता है, यह आपके लिए रुचिकर नहीं, क्यों ?

—ओह, समझ में आया—मूर्खों को भी ज्ञान जगता है।

अभया इस बार खिल-खिलाकर हँस पड़ी। अभया इस तरह हँसेगी—आनंद के लिए यह अप्रत्याशित था। वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो अभया की ओर देखने लगा। वह समझ पा नहीं रहा था कि इस तरह अभया के हँसने का कारण क्या हो सकता है। आनंद ने अपनी स्थिर दृष्टि अभया की ओर डाल दी—वह दृष्टि जो वाह्य नहीं, अतलस्पर्शी है, जो सूक्ष्म को स्पर्श कर वहीं अपने-आपको विलीन कर देती है—संज्ञा-हीन और अचेतन हो उठती है। अभया नीचे की ओर सिर किये पड़ी है; उसे शायद इस ओर ध्यान नहीं कि उसकी ओर आनंद की दृष्टि लगी हुई है—और

आनंद अपने-आपमें खोया हुआ है; मगर आनद अचानक चमक उठता है, हँस पड़ता है, हँसते-हँसते उछल पड़ता है और खूब उछल पड़ता है। लगता है, जैसे कोई अनहोनी बात हो गई हो, तभी वह अत्यंत प्रसन्नता में बोल उठता है—मैं सफल हुआ, अभया देवी, ओह, मैं सफल हुआ। सफलता मिली जिसके लिए आज कई दिनों से रात को रात और दिन को दिन नहीं समझा······ आज वह मेरी साधना, सच कहता हूँ अभया, वह साधना सफल हुई। मेरा फारमूला पूरा बैठा; मेरा प्रयोग सफल हुआ···· ओह, कह नहीं पा सकता अभया-अभया—तुम बोलती नहीं······काश, तुम समझ पातीं—समझ पातीं······कि मैं क्या हूँ और कितना बड़ा मैंने काम किया।

आनंद अपने आवेग को रोक न सका, वह सचमुच आनंद में आत्म-विभोर हो उठा और उसी आनद की मदिर अवस्था में उठकर उसने अभया को कसकर अपने बाहु-पाश में आबद्ध कर लिया।

यह कुछ इतने अप्रत्याशित भाव में हुए कि अभया कुछ समझ नहीं सकी—कुछ सोच नहीं सकी; पर ज्योंही उसने पाया कि आनंद के बाहु-पाश में वह जाने कब से आबद्ध पड़ी है; तब वह स्वयं घबराकर बोल उठी—छोड़ो, छोड़ दो मूर्ख! तुम हो कहाँ? ओह, क्या तुम इसी के लिए मुझे यहाँ लाए थे? ब्रुट!

अभया में रोष था या आनंद, राग था या घृणा—यह समझना कुछ सरल नहीं। मगर वह पा नहीं रही कि आनंद की आबद्धता क्या है—आखिर वह क्या है···अभया उसे समझ तो पाती है, पर उसे वह व्यक्त नहीं कर पाती। व्यक्त करने की जैसे वह अपने में शक्ति ही नहीं पाती।

मगर आनंद ने जाना कि वह अपने आनंदोद्वेग के क्षणिक आवेश में, सफलता के आवेग में क्यों वह वैसा कर सका? तब वह दो कदम पीछे हटकर—जिस तरह भूल से अग्नि-शिखा का स्पर्श पाकर मनुष्य पीछे हट जाता है—किंचित् अनुताप के स्वर में बोल

उठता है—क्षमा करेंगी अभया देवी, मैं आवेश में···क्षमा करें, वह मेरी धृष्टता थी।

अभया कुछ न बोली, वह जिस तरह निर्विकार बनी बैठी थी, उसी तरह बैठी रही।

आनंद इस बार स्वयं बोल उठा—मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ अभया देवी! आप इसे नहीं जानतीं, मैं जानता हूँ! मेरी सफलता का श्रेय—इसे स्वीकार करने में मुझे जरा भी हिचक नहीं और यह कहने के लिए मुझे क्षमा करेंगी—सारा श्रेय आपको है। मैं यह जानता था—जानता था कि मेरी साधना तबतक सफल नहीं हो सकती जबतक आप···सच कहता हूँ अभया देवी···· जब लगातार कई दिन और कई रातें मेरी उग्र साधना में कट गईं और मैं उलझा-उलझा-सा ही रह गया, उस समय मैं पागल था; कह नहीं सकता, मेरी हालत क्या थी। उसी समय मेरी अंतरात्मा कह उठी—एक ही उपाय है, और वह है, यदि मैं आपको प्रसन्न कर एक बार यहाँ तक ले आ सकूँ। मैं जानता था कि आपको मुझसे वितृष्णा है, मेरी संस्था से विराग है और मेरे काम से शायद घृणा, आप यहाँ तक आ न सकेंगी; फिर भी और प्रयत्नों की तरह एक बार यह भी प्रयत्न कर देख लेना चाहा। और भगवान को धन्यवाद! मेरा केवल वही प्रयत्न सफल नहीं रहा; वरन् जिस प्रयत्न के लिए यह नया प्रयत्न था—वह भी सफल रहा······

आनंद इस बार अभया के सामनेवाली कुर्सी पर बैठ गया। उसकी मुख-मुद्रा स्वयं आनंद में उल्लसित हो-हो उठती है। वह चाहता है कि वह उल्लास अपने दोनों हाथों से बाँटे; मगर जब वह पाता है कि अभया अभी तक गुमशुम बैठी है, तब वह अपने-आपमें निस्तेज पड़ जाता है और उसी निस्तेज स्वर में बोल उठता है—मगर मैं स्वयं लज्जित हूँ अभया देवी, मुझे अपने स्वार्थ के लिए इस तरह आपको कष्ट न देना चाहता था। मगर जो बात बीत गई, उसके लिए पछताए भी क्या हो सकता है? फिर भी मैं क्षमा की याचना

भी आपसे नहीं करना चाहता। क्योंकि क्षमा तो अनजान में ही की जाती है, जो जान-बूझकर किया गया है, उसके लिए क्षमा की याचना उचित नहीं; उपयुक्त तो दंड देना ही होगा! और······और यदि आप ऐसा चाहती हैं तो मुझे सहर्ष स्वीकार है। सफलता पा जाने के बाद दंड भी बुरा नहीं जँचता—इसे तो आप भी समझेंगी। नहीं, क्यों?

इस बार अभया परिपूर्ण घट की तरह फूट पड़ी और अपने ओठों पर किंचित् रोष की रेखा खींचती हुई बरस पड़ी—मैं पूछती हूँ कि अनाप-शनाप बकने में इस तरह आपको मजा क्यों आता है? अगर अनाप-शनाप आप न बकें तो इससे क्या कुछ आपकी हानि हो? मैं जानती हूँ, आपके मस्तिष्क तो है, पर हृदय नाम की वस्तु आपसे छू तक नहीं गई है। यदि आपके हृदय होता तो आप स्वयं जान पाते कि वस्तुस्थिति क्या है?

अभया कुछ क्षण चुप रही, उसकी दृष्टि दूसरी ओर फिरी, जहाँ उसने पाया कि वे रेकाबियाँ अब भी अपनी जगह कराह रही हैं। जहाँ का वातावरण आनंद में स्वयं मुखरित है, वहाँ वह कराह बड़ी प्राण-घातिनी-सी लगी। अभया चुप न रह सकी और हँसती हुई बोल उठी—क्या आप दंड स्वीकार करने को प्रस्तुत हैं इंजिनियर साहब?

—ओह, दंड!—आनन्द प्रसन्न होकर बोल उठा—वह तो मेरा सौभाग्य होगा, अभया देवी। जो भी दंड देना चाहेंगी, उसे मैं नत-मस्तक स्वीकार करने में गौरव का ही अनुभव करूँगा। अब मुझे अवकाश-ही-अवकाश है। कहिए, क्या आज्ञा?

और अभया अनुज्ञा के स्वर में बोल उठती है—आज मैं अपने हाथों आपको भोजन कराऊँगी।

—मगर······

—अगर-मगर मैं कुछ नहीं सुना चाहती, मैं अपना उत्तर 'हाँ' में सुना चाहती हूँ।

उठा—जिस काम में आप अनभ्यस्त हैं, उस काम के लिए आपको प्रस्तुत करना आपको कष्ट पहुँचाना नहीं तो और क्या है ? और मैं नहीं चाहता कि आपको कष्ट दूँ !

—कष्ट !—अभया की भवें सीधी होने पर भी तन गईं—आप मुझे गुड़िया न समझें आनंद बाबू, अभया गुड़िया नहीं है। वह जानती है कि वह स्वयं क्या है ? आप कष्ट की बात कहकर मुझे न जलाइए, इससे आपका कुछ लाभ न होगा। मैं स्वयं भूखी हूँ, आप न खाइए, मैं आपको नहीं मनाती, पर एक अतिथि का आप कितना आदर करना जानते हैं, यह मैं जानती हूँ। रहिए आप सुख से, मगर अभया अब ठहर नहीं सकती। अपनी सफलता पर अभी आपको महीने भर भूख नहीं लगेगी—यह मैं जानती हूँ; पर मैं एक क्षण की भूख बर्दाश्त नहीं कर सकती—यह आपको जानना चाहिए······

आनंद को अब ज्ञान हुआ कि उसने वास्तव में भूल की है, उसे अपनी आदरणीया अतिथि की अभ्यर्थना करनी ही चाहिए थी ! वह अपने-आपमें जरा खिन्न हुआ, फिर भी अपने को सँभालते हुए बोल उठा—जो काम एक पाचक कर सकता है, उसके लिए कष्ट उठाना क्या ठीक होगा, अभया देवी ? क्या मेरे पाचक का बना भोजन आप नहीं कर सकतीं ?

—नहीं कर सकती।

—तो···आनंद जरा सोचने लगा।

—तो यही अच्छा होगा कि मुझे जाने की इजाजत दीजिए—अभया इस बार उठने-उठने को हुई।

आनंद अस्तव्यस्त हो उठा—उसे समझ न पड़ा कि अब उसे क्या करना चाहिए। भूख उसे भी कुछ कम नहीं लगी है; पर खुलकर वह कैसे कहे कि······

आनंद क्षणभर चुप रहा, फिर आप-ही-आप प्रसन्न हो बोल उठा—इजाजत माँगकर आप मुझे दोबारा लज्जित न करें, अभया

देवी ! जब आप स्वयं कष्ट स्वीकार करना चाहती हैं, तो मुझे आप-का यह दंड सहज स्वीकार है; पर मैं उसमें जरा संशोधन पेश करना चाहता हूँ ! आशा है, यह संशोधन···

—संशोधन !—अभया अपने ओठों को दाँतों तले दबाती हुई बोली—सुनूँ, वह संशोधन क्या है ?

—संशोधन कुछ ज्यादा नहीं, सामान्य है, वह यह कि, क्यों न हम दोनों मिलकर इस अनुष्ठान में सम्मिलित हों ? यह कुछ बुरा न होगा ! इस अनुष्ठान की यज्ञशाला आज मेरी यही प्रयोगशाला ही होगी, जहाँ मुझे सफलता मिली है···

अभया इस बार खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसकी प्रसन्न-निर्मल हँसी में आनंद खिल उठा, उसी समय वह बाहर की ओर दौड़ पड़ा······

अभया कुर्सी से उठी, उसने एक बार प्रयोगशाला की अस्त-व्यस्त चीजो की ओर दृष्टि डाली, उसे वे रुचिकर न जँचीं। वह मौन साधे बैठी न रह सकी, वह लग गई अस्तव्यस्तता में चारुता-संपादन करने। उसने प्रत्येक वस्तु को उपयुक्त स्थान पर ला बिठाया, कुर्सियों को तरतीब में ला रखा, कपड़े-लत्ते सहेजे, बिछावन झाड़कर बिछाया पर्दों की धूल झाड़ी, रेकाबियों को कमरे से बाहर रख छोड़ने के समय जब वह पर्दा हटाकर दरवाजे से निकलने को ही थी कि उसी समय आनंद प्रसन्न-बदन आगे बढ़ता हुआ आया और अभया के हाथ में रेकाबियों को देखकर हँसते हुई बोल उठा—ओह, आप तो अच्छी दीख रही हैं, अभया देवी !

—मैं बुरी कब थी ?

आनंद खिलखिलाकर हँस पड़ा, अभया समझ नहीं सकी कि आनंद के हँसने का कारण क्या है। वह रेकाबियों को रखकर जैसे ही भीतर आई, आनंद भी साथ ही आया और उसने पाया कि उसकी प्रयोगशाला अपनी सफलता पर स्वयं जैसे विहँस उठी है; मगर उसी समय अभया ने दीवाल के सहारे लगे आईने में पाया कि

धूल-धक्कड़ों से उसकी आकृति कितनी कदर्य हो उठी है और तभी उसने समझ पाया कि अभी-अभी आनंद जो खिलखिला उठा था, वह क्या था ? वह अपने-आपमें सकुचाई नहीं, बोल उठी—सफलता की खुशी में, देखती हूँ, दृष्टि का स्वाद भी मिट गया है आपका—जभी मुझे अच्छी कह रहे थे ! मगर मैं बिना नहाए-धोए रसोई नहीं बना सकती, मैं बगल के बाथ-रूम को देख चुकी हूँ; पर कठिनाई तो यह है कि······

—क्यों, कपड़े की बात कह रही हैं न ?

—देखती हूँ, अब आप समझने लग गए हैं।

—मगर समझने से भी क्या होगा, अभया देवी ! साड़ी तो इतनी जल्दी आ भी नहीं सकती, देर भी काफी हो चुकी है, इधर कई दिनों के भूखे को भूख ने काफी परेशान कर रखा है ! मेरे ट्रंक खुले पड़े हैं, देखिए उनमें, कोई आपके काम का कपड़ा निकल आए। नई धोतियों के जोड़े हैं , शायद उनसे काम चल जाय। जो मौजूद हैं, उन्हीं से क्यों न काम चलाया जाय ?

—जो भी मिलेगा, मैं उसीसे काम चला लूँगी, इसके लिए आप परेशान न हों।

अभया ने ट्रंक खोला, देखा, धुले हुए कपड़ों के बीच गर्द की नई धोती जोड़ा है, उनमें से एक निकाल ली और धुला हुआ तौलिया लेकर बगल के बाथ-रूम में चली गई।

इतने में ही प्रयोगशाला में कुछ लोग आ गए और सब-के-सब काम में पिल पड़े। टेबिल पर फलों-फूलों का ढेर लगा दिया गया, एक ओर शाक-सब्जियाँ सजाकर रख दी गईं, दूसरी ओर आँटा, चावल, दूध और घी के भाँड़ करीने से रख दिये गए और बीच में स्टोव जलाने के लिए आनंद स्वयं उद्यत हो पड़ा।···

इसी समय बाथ-रूम से अभया निकली, उसकी सद्यःस्नात बदन पर गर्द की धोती और खुले हुए केश स्वयं एक तपस्विनी की याद दिला रहे हैं ! आनंद ने अभया का इतना उज्ज्वल रूप कभी

न देखा था, उसने जैसे ही अभया की ओर देखा, वैसे ही अभया बोल उठी—अरे-अरे, देख रहे हो इस तरह क्यों मेरी ओर ? उधर देखो जरा, स्टोव की आँच में उँगलियाँ जो पड़ी हैं······

उंगलियाँ !—आनद ने अपना हाथ खींच लिया, तबतक अभया उसके पास पहुँचकर बोली—उँगलियाँ पकीं तो नहीं ?

—उँगलियाँ—आनन्द हँस पड़ा, बोला—जानती हो, मैं इंजिनियर हूँ, आग की भट्टी के साथ खिलवाड करनेवाला ?

—अच्छे खिलवाड करनेवाले !—अभया किंचित् रोष में बोली—उँगलियाँ जलाकर आतिथ्य करने जा रहे हैं ? उठिए, बहुत हो चुका। करना ही है तो काम सारे पड़े हैं, कोई-सा काम कीजिए, मैं स्टोव के पास बैठती हूँ। मगर कह तो दीजिए एक बार, क्या पकाऊँ ? मैं आप की रुचि तो जानती नहीं।

—जब अन्नपूर्णा स्वयं आ बैठी हैं तब उनके हाथों अरुचि की चीजें बन ही नहीं सकतीं, इतना तो मैं शपथ खाकर कह सकता हूँ।—आनंद ने हँसकर कहा।

—अब तो मैं मानवी से अन्नपूर्णा हो बैठी। मैं नहीं जानती कि इस प्रयोगशाला में केवल खाद और पौदों को लेकर ही प्रयोग नहीं चलते, यहाँ तो मानव पर भी प्रयोग चल रहा है। जो एक वक्त किसी की मॉडल थी वही दूसरे वक्त देवता बन बैठी।

—देवता नहीं, देवी कहिए—यह मेरा संशोधन है।

—मगर देवता और देवी का पचड़ा पीछे भी सुलझाया जा सकता है, पहले यह तो सुलझा दीजिए कि आपके भोजन में क्या-क्या चाहिए। ऐसे मैं नहीं बनाती······

—जो भी इच्छा हो, बना डालिए, मुझे भूख भी ज्यादा लग रही, मेरा नहाना भी अबतक नहीं हो सका है, मैं अब साथ दे भी नहीं सकूँगा, अगर इजाजत हो तो मैं नहा आऊँ।

और इजाजत की आज्ञा की प्रतीक्षा किये बिना ही आनंद बाथ-रूम की ओर चल पड़ा।

अन्नपूर्णा बनी बैठी हुई अभया ने एक बार एकत्र की हुई चीजों की ओर दृष्टि डाली और वस्तुतः वह अभया से अन्नपूर्णा बन बैठी।

और जब आनंद घंटे-डेढ़ घंटे के भीतर बाथ-रूम से क्लीन सेव्ड और नहा-धो कर धुले हुए पायजामा और कमीज पहनकर बाहर निकला, तबतक स्टोव निभ चुका था और रसोईं की चीजें रेकाबियों में चुनी जा रही थीं। आज सहभोज में उन दो आर्टिस्टों को जो आनंद आया, वह एक स्मरणीय घटना थी।

अष्टम परिच्छेद

अभया और आनंद विभिन्न दिशाओं से मुड़कर ऐसे केंद्र-स्थल पर आ टिके हैं जहाँ संयोग के सभी उपकरण अनायास सुलभ हैं, कोई व्यतिरेक नहीं, कोई व्यवधान नहीं, दोनों समतल गति में बहे जा रहे हैं, जहाँ कोई वक्रता नहीं दीखती, जहाँ कोई घुमाव नहीं दीख पड़ता। चारो ओर से प्रफुल्लता सिमटकर जैसे एक वृत्त के अंदर समा गई है। आनंद अपनी मूकता खो चुका है, अभया अपनी प्रखरता खो चुकी है। अब आनंद के अंदर वह कर्मठता नहीं है, अवसाद ने उसे आ घेरा है, फिर भी वह अवसाद से ग्रस्त नहीं है। फार्म का काम अबाधगति में चल रहा है, उसके सफल प्रयोग नित्य नूतन रूप में काम में लाए जा रहे हैं; पर वह पहले-जैसा खोया-खोया नहीं रहता, उसका निवास अस्त-व्यस्त-जैसा नहीं दीखता। उसमें चारुता आ गई है, प्रांजलता से वह समुज्ज्वल हो उठा है। अभया उस ओर देखती है, वह विहँस उठती है, आनंद अभया की ओर देखता है, खिल पड़ता है···आनंद प्रसन्न है, अभया प्रसन्न है, इन दोनों के नियंता प्रसन्न हैं; किंतु एक ओर अचल अदृश्य है, जिसका, विधान भी इन दोनों से अदृश्य है।

अभया का अधिकांश समय आजकल बाहर-बाहर ही बीतता है। आनंद उसे 'कोर में बिठाकर जाने कहाँ-कहाँ घूमता-फिरता है। अभया खुलकर उसका साथ देती है।

डा० शांतिस्वरूप अभया को जानते हैं और आनंद को भी। राजा बाबू भी इन दोनों को जानने लगे हैं! वे दो वृद्ध जब कभी एक साथ आ बैठते हैं, तब इन दोनों की चर्चा ही उन दोनो के बीच अधिक क्षण तक चलती है। इस चर्चा में उन दोनों की मलिनता नहीं, हृदय की उदारता का ही अधिक भाग है और वे सहृदय बंधु उस अदृश्य नियंता के प्रति अपनी आंतरिक कृतज्ञता के अर्घ्य ही निवेदित करते हैं। उन दोनो का मिलन चिरस्थायित्व प्राप्त करे—उन वृद्धों की यही कामना है—यही सदिच्छा है!

मगर धूमकेतु की तरह वह कौन आ पहुँचा है अभया के यहाँ, जब अभया अपनी वेश-भूषाओ में आवृत-प्रस्तुत होकर अपने बँगले से निकलना ही चाह रही है? वह आगतुक की ओर संपूर्ण दृष्टि डालकर पूछती है—किसे आप चाहते हैं?—क्या बाबूजी······

—नहीं, धन्यवाद!—आगंतुक विनम्र नमस्कार ज्ञापन कर कहता है—मैं आपके लिए ही आया था, आपसे ही मिलना चाहता था। मैं कल भी आया था जब आप बाहर चली गई थीं। मैं रुककर कल ही मिल लेना चाहता था, पर रुक न सका; समझा—फिर किसी समय आ जाऊँगा।···

—कहिए, क्या काम है?—अभया जरा अप्रसन्न होकर ही बोली।

—हाँ, सो तो बतलाऊँगा ही—वह युवक स्थिरचित्त से बोला—मगर खड़े-खड़े तो बातें न हो सकेगी। कुछ क्षण आप बैठने का कष्ट करें तो सुनाऊँ?

और अनिच्छापूर्वक अभया कमरे की ओर मुड़ी और जरा लज्जित कंठ से बोली—आइए, विराजिए।

आगंतुक भीतर आकर एक सोफे पर बैठ गया, अभया भी दूसरे पर आ बैठी। उसने इस बार उस युवक को फिर से देखा, और पाया कि वह आगंतुक देखने में बुरा नहीं, सफेद खादी की धोती पहने है, वदन पर एक दूध-सा धुला सफेद कुर्त्ता है, जिसके गले

का बटन टूटा हुआ—इसलिए गले से नीचे का भाग स्पष्ट मालूम हो रहा है, केश बढ़े हुए और अस्तव्यस्त, भवें घनी जिनसे उसके मन की दृढ़ता प्रकट हो रही है, आँखें कुछ खिची हुईं, किन्तु सतेज, जिनसे किसी चीज को, उसके स्तर के निम्नभाग तक वह आसानी से देख पा सकता है। अभया ने उसकी ओर देखा और देखा कि वह युवक अपने हाथ के पोर्ट फोलियो से कुछ निकाल रहा है, तभी वह पूछ बैठी—क्या आप इस्योरेंश-कंपनी के एजेंट हैं ?

—एजेंट !—युवक मुस्कराया और मुस्कराहट लिये हुए ही बोला—नहीं; मैं एक साधारण कार्य-कर्त्ता हूँ कांग्रेस का—एक ग्राम-सेवक !

—ग्राम-सेवक ?

—हाँ, ग्राम-सेवक ही !—युवक ने कहा और अपने पोर्टफोलियो से एक छपा हुआ पर्चा निकालकर अभया की ओर बढ़ाते हुए बोला—इसमें ग्रामोत्थानसघ की स्कीमें हैं, जिन्हें मैं कार्य-रूप में लाना चाहता हूँ। आप जानती हैं—गाँवों का उत्थान जबतक नहीं हो लेता, हम स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकते !

—ओह, समझा—आप स्वाधीनता प्राप्त करना चाहते हैं ?

—मैं ही नहीं—यह कहना शायद ठीक न होगा—हम तो सारे देश को आजाद देखना चाहते हैं ! क्या आप आजादी पसंद नहीं करतीं ?

—पसंद करने से ही तो आजादी मुझे मिल नहीं जाती !—अभया ने खिंचे स्वर में कहा।

—मगर इससे पता तो नहीं लग पाया कि आप आजादी पसंद करती हैं ?

—पसंद करना अलग बात है और उसका पाना अलग ! क्या जो बातें हमें पसंद हैं वे हमें मिल भी जाती हैं ?

—मिल जा सकती हैं—युवक इस बार सचेत हो बैठा और दृढ़ता के स्वर में बोला—आपने जो बातें छेड़ी हैं, वे महज तर्क के

लिए ही तो! आप स्वयं विदुषी हैं, हर बात को जानती हैं। आपके सामने तर्क करना मुझे स्वयं पसंद नहीं; मगर इतना तो कहा ही जा सकता है कि जबतक किसी चीज के लिए प्रबल आकांक्षा न हो, वह चीज नहीं मिल सकती। फिर जहाँ उत्कठा है, पाने की तीव्र आकाक्षा है, वहाँ वह पायगा कि उसके सामने का पथ परिष्कृत है—और न भी वह परिष्कृत हो, वह उस ओर दौड़ेगा ही एक बार, और प्राणपण से उसका प्रयास अपनी गति में चल निकलेगा। यदि उसे सफलता मिल गई तो फिर क्या कहना! और यदि वह नहीं भी मिले तो फिर भी वह उस ओर से पराङ्मुख नहीं होता, उसका उद्यम दूने उत्साह में चल निकलता है और जबतक वह अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाता, तबतक चलता ही रहता है! आजादी के बारे में यही कही जा सकती है, तभी मैंने पूछा—क्या आप आजादी पसंद नहीं करतीं?

अभया ने पाया कि वह युवक साधारण नहीं, अपने विषय-वस्तु को समझाना जानता है। वह यह भी जानता है कि अपने पक्ष में किस तरह किसी को लाया जा सकता है। मगर अभया इन सब बातों के लिए प्रस्तुत नहीं है, इसलिए वह उखड़ी-उखड़ी-सी कहती है—मैं आजादी चाहता हूँ या नहीं चाहती—इससे आप-का मतलब तो नहीं सधता! आप मुझसे चाहते क्या हैं—वही सुना दीजिए तो आपकी बड़ी कृपा हो।

—कृपा!—युवक हँसकर बोला—ऐसा न कहिए अभया देवी! कृपा तो आपकी चाहिए, मैं तो एक साधारण सेवकमात्र हूँ! हमारी स्कीमें आपके हाथ में हैं, शायद आपने अभी उस पर्चे को पढ़ा नहीं, पढ़ लीजिएगा। मैं जानता हूँ—आप शायद अभी बाहर जाना चाहती थीं, मैंने आपके जाने में व्याघात ही उत्पन्न किया; मगर मैं करूँ भी तो क्या? आप-जैसी विदुषी इन दिहातों में ढूँढ़े भी मैं नहीं पा सकता। दिहातों में दो तरह के दल हैं—एक मजदूर और दूसरा संपन्न, मध्यवित्त को मैं दूसरे

दल के भीतर रख लेता हूँ। मजदूर की बहू-बेटियाँ बाहर काम पर निकलती हैं और सारा दिन कामों में लगी रहकर अपनी मजदूरी हासिल करती है, मगर संपन्न घरों की स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलतीं, उनके सामने कोई काम नहीं, सिर्फ खाना, गप्पें करना, शृङ्गार और व्यसनों में उलझी रहना, न उनकी प्रवृत्ति शिक्षा की ओर है, न कला की ओर, न अपने और अपनी संतान के स्वास्थ्य की ओर। एक अंग यदि सबल है और दूसरा अस्वस्थ तो वह जीवन का चिह्न नहीं—मृत्यु का प्रतीक है। और हमारी वे बहनें पर्दे के भीतर रहकर किस तरह घुल रही हैं—इस ओर शायद आपका ध्यान न गया हो—नहीं, गया भी होगा; आप स्वयं डाक्टर हैं, अवश्य आपको वह अवसर मिला होगा जबकि आपने देखा होगा कि पर्दे की बहनों की कितनी दयनीय दशा है। क्या इस ओर आपको ले जाना मेरा अन्याय होगा? मैं जाग्रत्-महिला-संघ की सभानेत्री बनाने का निमंत्रण लेकर आप-के पास आया हूँ। कुछ महिलाओं ने सभा में आने की सम्मति दे दी है, यद्यपि उनकी संख्या अभी अल्प है। मैं इस कार्य में आपकी सहायता चाहता हूँ। सारा प्रबंध मैं स्वयं कर लूँगा, आपको अधिक कष्ट नहीं करना होगा, ज्यादा समय मैं आपका लूँगा भी नहीं। आपसे निवेदन है कि मेरा आमंत्रण स्वीकार किया जाय। आपके नेतृत्व में हमारी सभा को जीवन मिल जायगा, संघ कृतार्थ और सबल होगा······

युवक बोलकर चुप हुआ। अभया ने उसकी सारी बातें सुनीं, उसे लग रहा था, जैसे उसके अंतिम शब्द अब भी उसके कानों में गूँज रहे हैं—सभा को जीवन मिल जायगा, संघ कृतार्थ और सबल होगा···

अभया सिर झुकाए पड़ी थी, उसके सामने द्वंद्व था, वह समझ नहीं पा रही थी कि अपने सामने बैठे युवक को जो निमंत्रण लेकर आया है, वह क्या कहे। अभया अभी तक सभा-समितियों

में गई नहीं है और न इस ओर उसकी प्रवृत्ति है भी। उद्दाम कर्म-कोलाहल में अबतक गुजरती रही। अभया से कुछ कहते न बना। युवक ने समझा—अभया अपने निश्चय पर पहुँच नहीं पा रही है, इसलिए वह फिर से बोल उठा—जिस मातृभूमि ने आपकी सृष्टि की है, उसके प्रति आपका कर्त्तव्य कुछ कम नहीं, अभया देवी! आप जानती हैं, मानव-जीवन केवल कमाने-खाने और सुख-भोग के लिए ही नहीं है; वरन् उसके सिर जो ऋण है, उससे मुक्त होना ही उसका प्रधान कर्त्तव्य-कर्म है। अपनी जननी-जन्म-भूमि के प्रति अपने उस कर्त्तव्य की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ और उस जननी की सेवा मातृ-स्वरूपा नारी-जाति की कल्याण-कामना से ही सार्थक-सफल हो सकती है—इसपर आपको विचार करने के लिए निवेदन करता हूँ।

युवक अपने-आप बोलकर चुप हुआ और उत्सुक दृष्टि से वह अभया की ओर देखने लगा। उसे लगा कि अभया के मन की उत्सुकता जैसे विलीन हो गई है, उसकी आकृति पर दीप्ति नहीं—शुष्कता-सी आ गई है। जैसे वह द्वंद्वों में फँसी-फँसी अपने-आप-के लिए उचित दिशा नहीं पा रही हो। युवक कुछ क्षणतक स्तब्ध रहा, उसने सामने की ओर की घड़ी देखी, वह अपने-आपमें कुछ चंचल होकर ही बोला—तो मैं समझूँ कि मेरा निमंत्रण स्वीकृत हुआ?

—सोच लेने दीजिए, मैं आपका जवाब फिर कभी दूँगी—अभया ने दृढ़ता-भरे स्वर में युवक की ओर देखते हुए कहा।

युवक क्षणभर रुका, फिर आप-ही-आप बोल उठा—यह मेरा सौभाग्य है; पर मैं जान सकता हूँ कि कब मेरा आना उचित होगा?

उत्तर अभया सोच ही रही है कि इतने में कार दरवाजे पर आ लगी और आनंद कमरे की ओर आने को सन्नद्ध है। अभया अतीव चंचल हो उठी और उसी चंचलता को लेकर खड़ी होते हुए बोल उठी—मैं ठीक-ठीक उत्तर दे नहीं पा रही हूँ।

मैं कब घर पर रहूँगी, यह निश्चयपूर्वक अभी कह नहीं सकती!

—अच्छा, तो मै कल नहीं, परसो स्वयं आऊँगा इसी वक्त, शायद इससे कुछ पहले भी आ सकता हूँ। मुझे विश्वास है, आप मुझे निरुत्साह न करेंगी।

और वह मुस्कराते हुए नमस्कार-ज्ञापन कर कमरे से विदा हुआ।

आनंद ने उसे दरवाजे से बाहर निकलते हुए देखा और उसे घूरते हुए देखकर कमरे में प्रविष्ट होते-होते ही जरा गंभीर स्वर में बोल उठा—देखता हूँ, अभया देवी, आपकी प्रवृत्ति अब देश-सेवा की ओर मुड़ी है! क्या मेरा अंदाज गलत तो नहीं, अभया देवी?

अभया ने उसके प्रश्नों का उत्तर गंभीरता-भरे स्वर में दिया; वह बोली—क्या देश-सेवा की ओर प्रवृत्ति जाना कुछ अन्याय है मि० आनंद?

—क्या अन्याय और क्या न्याय है—इसपर आपने कभी विचार भी किया है?

—क्या मैं निरी बच्ची हूँ कि इतना भी नहीं समझती कि न्याय-अन्याय क्या है? आनन्द अभया से ऐसा कुछ सुनने को प्रस्तुत न था, उसने पाया कि अवश्य अभया उसकी ओर से खिंची और युवक की ओर दौड़ पड़ी है। वह कुछ क्षणतक उस गंभीर परिस्थिति पर सोचता रहा; फिर बोल उठा—बच्ची होतीं तो दुःख न होता; पर आप ऐसी नहीं है—इतना मैं जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि देश-सेवा सुनने में जितनी प्रिय है, काम में उतनी ही कठोर। देश-सेवा सस्ती भावुकता नहीं, तलवार की धार पर चलना है, आग के शोलों के साथ उलझना है...मैं आपको मना नहीं करता—मना करने का अधिकार मुझे है भी नहीं, पर मैत्री का जहाँ तक सम्बन्ध है, आपको सचेत करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। यों चाहें आप जो समझें; पर मैं इसे अच्छा नहीं समझता।

—आपके 'पुनीत कर्त्तव्य' के लिए आपको धन्यवाद !—अभया बोलकर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोल उठी—मैं पूछती हूँ, इतनी बातो का बतंगड़ तो लगा गए, पर किस आधार पर इतनी बातें सुना गए, कह सकते हैं आप ?

—आधार की बात पूछ रही हैं ? आनंद अपनी सीट पर बैठते हुए बोला—आधार स्पष्ट है ! मनुष्य भावुक है, उसपर नारीजाति स्वभावतः भावुक होती है ! देश-सेवा को मैं भावुकता ही समझता हूँ। भावुकता पर ही लोग इस ओर मुड़ते हैं, फिर जो हृदय स्वयं भावुक हो, उसका इस ओर झुकना कुछ असाधारण नहीं। और मैं पाता हूँ कि अभया देवी उसी भावुकता से आज तरल हो उठी हैं ! क्यों, मैं अभया देवी से जान सकता हूँ कि यह तथ्य नहीं ?

—तो आप भावुकता को हृदय की दुर्बलता कहते हैं—इतना क्यो कहने से चुप रह गए ?—अभया ने उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालते हुए कहा।

—खैर, मेरे मुँह की बातें छीनकर मेरे कथन को आपने पूरा किया—इसके लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

आनंद बोलकर हँस पड़ा, पर अभया हँस न सकी; वह जिस तरह गभीर बनी बैठी थी, उसी तरह बैठी रही।

आनद अपनी उसी हँसी को लेकर बोल उठा—देखता हूँ, उस युवक ने आपके दिमाग में उथल-पुथल पैदा कर दी है। ये काँग्रेसवाले सीधे किसी को छोड़ते नहीं। जिसकी ओर मुड़ते हैं, उससे जबतक हाँ नहीं कहला लेते तबतक उसका पिंड नहीं छोडते ! उनकी बेरहमी कभी-कभी सीमा का उल्लंघन कर जाती है, किसी को बाँधकर अपनी बातें मनवाना मैं एक जुर्म समझता हूँ। क्या यह जुर्म नहीं—आप क्या कहती हैं ?

—यह आप नहीं, आपका पुरुष-द्वेषी हृदय बोल रहा है !

—द्वेष ! यह क्या कह रही हैं आप ?

—हाँ, द्वेष !—और मैं ठीक कह रही हूँ ।

इस बार अभया अपने-आप हँस पड़ी, उसकी हँसी से वाता-वरण की धूमिलता अपने-आप छितर-बितर हो गई । उसी समय चाय और जलपान की चीजें नौकर वहाँ रख गया ।

और जिस चंद्र-ज्योत्स्ना को मेघों ने आच्छन्न कर रखा था, वह स्पष्टतः और सपूर्णतः छिटक उठी, तभी अभया बोल उठी—आपने आने में देर क्यों कर दी ? आप वक्त पर आ गए होते तो मैं उस युवक से इतनी क्यों परेशान होती !

—कभी-कभी परेशानियों का आना अच्छा है अभया देवी—आनंद हँसते हुए बोल उठा—देखिए न, नमकीन कचौड़ियों के साथ मीठी चाय का स्वाद और कितना निखर उठता है ! देखिए—दोनों चीजें सामने पड़ी हैं । मैं कुछ गलत नहीं कह रहा······

आनद ने अपनी बाते हँसी में कही थीं, पर अभया को लगा कि यही वस्तुस्थिति है—यही तथ्य है ! जीवन में परेशानियाँ न आई तो वह जीवन ही कैसा ? जीवन की एकरसता में कोई आनद नहीं; कोई मधुरिमा नहीं, उसमें वक्रता चाहिए ही, कुछ तिक्तता भी !···तिक्त और मधुर का सम्मिश्रण ही तो जीवन है···

अभया जाने और क्या सोचे चलती, पर वह सोच न सकी, जबकि आनंद को हँसते हुए कहते सुना—अरे, आप तो कचौ-ड़ियाँ ही खाती जा रही हैं, अभया देवी, चाय जो ठढी पड़ रही है ! उसे भी दो-एक घूँट पीकर देखिए ! मीठा से इतनी नफरत क्यों हो गई है ? आप तो चाय की आदी ठहरीं···

अभया इस बार गंभीर न बनी बैठी रह सकी, वह भी मुस्कराई और मुस्कराती हुई ही बोली—मुझे आपके साथ चलना जो है, भूख लगने पर आप तो फिर कचौड़ियाँ खिलायेंगे नहीं, आप तो रखेंगे मेरे सामने—मीठे-मीठे केले, पपीते, सरीफे, अमरूद और जाने क्या-क्या ? जो मुझे नहीं भाते···

आनंद इस बार खिल-खिलाकर हँस पड़ा और अपने सामने

की अलग धरी कचौड़ियों को उसकी ओर बढ़ाते हुए बोला—क्या और चाहिए, दूँ? आप तो दिन-भर और कोई फल छूएँगी नहीं, तो फिर...

—तो फिर मैं इतना ज्यादा खा लूँ कि आपकी चीजें ज्यों-की-त्यों बची रहें? नहीं, नहीं, मै ऐसा नहीं कर सकती; मुझे आपकी सम्मान-रक्षा का ध्यान है...ऐसा नहीं हो सकता—हरगिज नहीं।

—धन्यवाद, सुनकर हर्ष हुआ।

—और उसी हर्ष को लेकर दोनों का जलपान शेष हुआ और उसी हर्ष के साथ दोनों बाहर जाने के लिए कार पर आ बैठे।

नवम परिच्छेद

कांग्रेस-कार्य-कर्त्ताओं का दल, टिड्डी-दल की तरह गाँवों में आकर छा गया है। सर्वत्र—चारो ओर कर्म का प्रवाह जैसे बह निकलता है। गाँव की सफाई की ओर वह ग्रामवासियों का ध्यान आकर्षित करता है, फिर भी जब उन्हें इस ओर प्रवृत्त नहीं देखता, तब दल के कुछ नौजवान झाड़ू और कुदाली लेकर आते और अपने हाथों उन कुदालियों से गंदगियों को काट गड्ढों को भरते और झाड़ुओं से रास्ते और गलियों की धूलों को दूर करते। इन कामों में उन्हें घृणा नहीं, बल्कि वे प्रसन्नता और गौरव का अनुभव करते। गाँववाले उन युवक कार्य-कर्त्ताओं की ओर देखते और जो दिलवाले होते, वे स्वयं उनके साथ कामों में लग जाते। इस तरह जाने कब के जमे गर्द-गुबार और गंदगियों की सफाई हो जाने से गाँव स्वस्थ और प्रसन्न दीखता। ये युवक स्वयं-सेवक हैं—अपने इच्छा-कृत सेवक। इन्हे किसी ने इस काम की ओर जबर्दस्ती घसीटा नहीं है, वरन् ये स्वयं घसीटकर आ लगे हैं। इनमें केवल सस्ती भावुकता नहीं—कर्मठता है, और है काम करने का हौसला······

इनमें कुछ वे हैं जो खादी की उपयोगिता पर सुंदर सारगर्भित भाषण दे सकते हैं, उस भाषण में वे बतलाते हैं कि खादी लाखों

बेरोजगारों को रोजगार देती है, वह भूखों को अन्न और नंगों को वस्त्र प्रदान करती है। खादी वह चीज है, जो हमारे स्वराज्य का पथपरिष्कृत करती है और एक शब्द में कहें तो कह सकते हैं कि खादी की एक-एक तंतु पराधीन भारत की कराह को विधाता के कान तक पहुँचाती है।...जब से, हमने खादी छोड़ी, तब से हम पराधीन हुए, कगाल हुए, हमने अपनी सम्पदा छोड़ी—अपनी संस्कृति छोडी......और अपनी संस्कृति के स्थान पर जो हमें मिला, वह हमारी गुलामी है......

और वे हमें खादी की उपयोगिता के बारे में कहते हैं—ग्रामोत्थान-संघ का प्रधान कार्य है—चर्खा चलाना......पर यह चर्खा हमारी माताओं और बहनों का शृंगार होना चाहिए""हमारी माताएँ, बहनें ही हमारी संस्कृति को जीवित रख सकती हैं, हमारी धमनियों में अपनी सभ्यता का ताजा रक्त भर सकती हैं..... उन्हीं माताओं, बहनों से हमारी अपील है—आप चर्खा अपनाएँ, खादी की महत्ता समझें और देश की गुलामी को दूर कर इसे राम-राज्य तक पहुँचाएँ...

उनकी अपील काँग्रेस की अपील है, वह काँग्रेस जो पराधीन भारत की आशा और स्वराज्य की मंत्र-द्रष्टा है......

इन कार्य-कर्त्ताओं का गाँव के पूर्वी अंचल पर जहाँ पद्मा की धारा वक्र हो गई है, एक आश्रम है। वहाँ कुछ तो दिन-भर लेखा-जोखा और पत्र-व्यवहार में व्यस्त रहते हैं और कुछ वे हैं जो चर्खा चलाते, रूई धुनते और इस तरह के अन्य काम करते हैं और कुछ वे हैं जो दिनभर गाँव में फेरी लगाते, गाँववालों को समझाते, उन्हें सदस्य बनाते और आश्रम के लिए अन्न एकत्र करते......

और भोर को, जब गाँववाले मीठी नींद में स्वप्न के रगीन जाल बिनने में लगे होते हैं, वे लोग प्रभात-फेरी लगाते हैं, उस समय के उनके उद्बोधक संगीत आलसियों में भी चेतना भरते हैं.. यह प्रभात-फेरी उन कार्य-कर्त्ताओं का अमोघ अस्त्र है! जो बड़े-बड़े लम्बे व्याख्यान असर नहीं पैदा कर सकते, वह असर प्रभात-फेरी के संगीतों

के दो-चार शब्द कर जाते हैं। लगता है, जैसे ये शब्द अर्वाचीन युग की वेद-ऋचा हैं और व्याख्यान जिनका भाष्य; पर भाष्य मस्तिष्क की वस्तु हो सकता है किंतु ऋचा सर्वतोरूपेण हृदय की।

और ये ऋचाएँ संगीत का रूप लेकर जब अभया को स्पर्श कर जाती हैं तब उसका अहं उसके सामने अट्टहास कर उठता है। अभया को लगता है—वह स्पर्श बड़ा ही मर्म-स्पर्शी है! नित्य नूतन बनकर जो संगीत उसे व्यथित कर छोड़ते हैं, उन्हे वह अपनी उपेक्षाओं में डुबो देना चाहती है, अपने रोष की अग्नि में उन्हें भस्मीभूत कर देना चाहती है; पर प्रयास करके भी वह सफल-प्रयत्न नहीं होती। तब वह अपने-आप झुँझला उठती है और झुँझलाए स्वर में बोल उठती है—वे अभागे इस तरह नींद में खलल क्यों डाला करते······

मगर कुछ ही क्षणों के बाद अभया का अपना रिमार्क स्वयं ही अत्यंत कटु जान पड़ने लगता है, तब वह कुछ बोलती नहीं, सामने की खिड़कियाँ उठकर खोल देती है और देखती है बाहर; किंतु बाहर कुहरे के सिवा और कुछ नहीं दीख पड़ता। हाँ, दूर से भाँसता-भाँसता-सा स्वर आता है—जागो भारत-भाई······

और ओठों में अभया दुहराती है—जा-गो-भा-र-त-भा-ई···

और अभया फिर से बिछावन पर जाकर भी नींद को बुला नहीं पाती। वह करवटें बदलदती है, कुछ सोचती भी है···और सोचते हुए अपने पिता के कमरे की ओर चल पड़ती है; पर वह पिता को पाती नहीं, उसे याद आता है कि उसके पिता का नित्य का कार्य-क्रम है—प्रातः वायुसेवन·····और तब वह उधर से लौटकर अपने नित्य-नैमित्तिक कार्यों के लिए चल पड़ती है······

डा० स्वरूप नित्य की तरह टहलकर, कुछ रोगियों को देखते हुए, कुछ लोगों से मिलते हुए और कुछ को अपने साथ लाते हुए जब बरामदे पर की आरामकुर्सी पर आ बैठते हैं तब अभया दौड़ी हुई उनके पास आकर कहती है—आज तो बहुत जल्दी लौट आए, बाबूजी!

—जल्दी !—डा० स्वरूप प्रसन्न दृष्टि से अभया की ओर देखते हैं और मुस्कराते हुए कहते हैं—नहीं तो, बेटी, मैं अपने वक्त पर ही आया हूँ; मगर मैं आज स्वयं पा रहा हूँ कि तुम इतनी जल्दी नहा-धोकर तैयार हो गई कैसे ? चेहरा भी तो उदास-उदास-जैसा दीखता है, क्या रात को नींद नहीं आई ?

नींद !—अभया भीतर-भीतर चमक उठीं, पर बाहर से अपने को संयत कर बोली—खूब सोई बाबूजी ! नींद काहे को न आती ! मगर मैं पूछती हूँ कि, माँ-बाप अपने बच्चों का चेहरा हमेशा उदास ही क्यो देखते हैं ? क्यों नहीं उन्हें ······

डा० स्वरूप उत्तर न दे सके; पर उन्होंने एक गहरी साँस ली और बाहर की ओर देखने लगे······कुछ क्षण के बाद फिर आप ही अभया की ओर मुखातिब हुए और उल्लास के स्वर में बोले—हाँ, एक बात कहना भूल रहा था, अभय, तुम्हें शायद मालूम न हो, मालूम हो भी नही सकता, रात की तो बात है—तुम्हारी चंपी की सगाई हो गई······

डा० स्वरूप बोलकर कुछ क्षण चुप हो रहे, जाने उनका मन क्यो उदास हो गया, फिर बोल उठे—हाँ, सगाई—डा० स्वरूप अपने-आपमें निरुत्साह हो पड़े—वह विधवा थी न ! मगर अपने आदमी भी इतना कसाई होता है, वह यहीं देखा ! उसके मामा था, जिसने चुपके रुपए गिनाकर उसे एक शराबी-जुआड़ी के गले मढ़ दिया है। वह फार्म में ही काम करता था, मगर जुआड़ी जानकर वह वहाँ से निकाल दिया गया है······

अभया अपने पिता की बातें सुन लेती है; पर अपनी ओर से वह कुछ नहीं बोलती। डा० स्वरूप उससे कुछ सुनने की अपेक्षा रखते थे, क्योंकि वह जानते थे कि चंपी को वह दिल से चाहती है, प्यार करती है; मगर जब वे पाते हैं कि चंपी का दुखद संवाद उसे चंचल न कर सका, तब वे स्वयं बोल उठे—निकाल देना अन्याय हुआ, चंपी की परवरिश······

इस बार अभया बोल उठी—ऐसों को निकाल देना ही न्याय है बाबूजी !

—इसलिए कि वह जुआड़ी था ? शराबी था ?

—हाँ, इसलिए कि, वह जुआड़ी और शराबी था, जो समाज का एक बड़ा दुश्मन है……

—दुश्मन है, माना—डा० स्वरूप मुस्कराए और फिर मुस्कराते हुए ही बोले—दुश्मन भी दोस्त बनाए जा सकते हैं, अभय ! किससे गलती नहीं होती ? मगर गलती का सुधार होना चाहिए……

—और इससे अच्छा दूसरा सुधार हो नहीं सकता !—अभया ने छूटते हुए जरा तीखे स्वर मे कहा।

—इसे सुधार कहते, अभय ?—डा० स्वरूप इस बार हँस पड़े—क्या काम से अलग कर दिये जाने पर वह सुधर गया होगा ? नहीं-नहीं, देखता हूँ, आज तुम अपने-आपमें नहीं हो, नहीं तो तुमसे मैं और कुछ सुन पाता ! खैर, मैं एक बार आनन्द से कह देखूँगा। कहूँगा कि वह अपना पेट जब भर नहीं पाता तब उससे जो भी काम हो जाय—वह उसके लिए दोषी नहीं है। मैं नहीं कहता कि वह गलत रास्ते पर नहीं है; मगर उसे सुधरने का मौका तो मिलना ही चाहिए !

अभया इस बार और भी झुँझलाई और झुँझलाहट को लिये हुए ही बोली—आनंद से कहने पर भी आप उसको कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकते ! आनन्द जो एक बार सोच लेते हैं, उससे पीछे नहीं हटते और उन्होंने जो कुछ किया है, बहुत सोच-समझकर किया है। शासन के प्रबन्ध में दया का काम नहीं, दंड का एक महत्त्व-पूर्ण स्थान है, बाबू-जी, इसे आपको मानना पड़ेगा। मैं भी अगर आनन्द की जगह होती तो यही करती, जो वे कर चुके हैं। बुढ़ापे में आदमी दंड से घबराते और दया को ही अधिक प्रश्रय देते हैं और आपका दया दिखलाना आपका नहीं—आपके बुढ़ापे का काम है……

अभया वहाँ से उठकर भीतर की ओर चल दी। डा० स्वरूप के सामने तबतक कुछ आदमी और इकट्ठे हो चले थे,

वे अब उन लोगों की ओर मुखातिब हुए। उसी समय कार दरवाजे पर आ लगी, सोफर उतरकर बरामदे पर आया और डा० स्वरूप को नमस्कार करते हुए कहा—साहब ने डा० अभया देवी को याद किया है !

—ठहरो, वह आ ही जाती है—डा० स्वरूप ने उसकी ओर देखते हुए कहा—क्यों, वह तो खुद आनेवाले थे न ?

—मगर वे आ न सके, बोले—काम कुछ ऐसे पड़े हुए हैं जिन्हें पूरा कर लेना निहायत जरूरी है, उन्होंने मुझसे इतना ही कहा ! क्यों, उनकी कोई खास जरूरत है ?

—खास जरूरत ! डा० स्वरूप बड़े इतमीनान के साथ बोले—ऐसी कोई खास जरूरत नहीं, वे तो आते-जाते रहते हैं, फिर कभी मिल लूँगा।

अभया ने कार पहुँचने की आवाज सुन ली थी, वह तैयार होकर बाहर आई, सोफर ने सलाम किया, अभया खुद कार की ओर बढ़ गई।

और अभया जब आनंद-निवास में जा पहुँची तब उसने पाया कि आनंद अपने कामों में डूबा हुआ है। स्टेनो उसके सामने बैठा है, जिसे वह चिट्ठियो के उत्तर डिकटेट करा रहा है। पग-ध्वनि सुनते ही आनंद अभया की ओर देखकर प्रसन्न-मुद्रा में बोल उठे—ओह ! आ गईं आप ? अच्छा ही किया ! मगर तकलीफ होगी, बैठिए तबतक—ज्यादा नहीं, बस, कुल दस मिनट में काम खतम हुआ जाता है···

हाँ-हाँ, खतम कर लीजिए शौक से, तबतक मैं बगीचे में घूम आती हूँ !

—मगर जल्दी आ जाइए···

—हाँ-हाँ, पंद्रह मिनट से ज्यादा न लूँगी—कहती हुई वह बाहर निकली। फार्म के लोग काम पर आ लगे थे, अभया बगीचे की ओर बढ़ी जा रही थी, वह रास्ते की बगलवाली क्यारियों को

देखती चल रही है जिनमें तरह-तरह के फूल-फल लगे हुए हैं और उन क्यारियो में काम करनेवाले, बडी सावधानी के साथ, सूखे पत्ते और मरे हुए डंठलों को पेड़ो से अलग कर रहे हैं। वह वहाँ पहुँच-कर एक से बोल उठती है—गत रात को जिसकी सगाई हुई है, उसे जानते हो रामू? सुना, वह जुआड़ी था···

—जुआडी!—रामू ने अभया की ओर ताका और सक-पकाते हुए विनीत स्वर में बोला—शायद आप मगल के बारे में कह रही हैं?

—क्या वही काम से निकाला गया है?

—हाँ, वही काम से निकाला गया है और इसलिए कि उसे जूए का व्यसन लग गया था, शराबी भी कुछ कम न था वह, जभी तो वह काम से भी निकाला गया···यों वह भला आदमी था, काम भी खूब करता था; मगर अपनी मिहनत की कमाई पर टिकता न था, टिकना तो अलग, जूए के लोभ में उसे भी गँवा आता था···

अभया उसकी बातें सुनकर कुछ क्षण चुप रही, फिर आप-ही-आप बोल उठी—वह अब रहता कहाँ है? क्या करता है आजकल?

—यह जो रामपुर गाँव है, यहाँ से ज्यादा दूर नहीं—यही कोस-डेढ़ कोस पर, वहीं उसका घर है, और करेगा क्या?—रामू हँस पड़ता है और हँसते-हँसते ही बोल उठता है—कोई ऐसा रोजगार तो हाथ में है नहीं, ठग और जुआड़ी जो करते हैं, चकमा देना तो उसका साधारण-सा काम है······

अभया को इन सब बातों से वितृष्णा ही बढ़ी, कुछ संतोष न मिला। वह कुछ बोली नहीं, वह दो-एक गुलाब के फूलों को हाथ में लिये आगे न बढ़ सकी, वह वहाँ से लौटी और आकर पाया कि आनंद अपने काम से छुट्टी पाकर निश्चिन्त हो, जैसे अभया की प्रतीक्षा ही कर रहा हो। अभया ने आकर निर्द्वन्द्व भाव से आनंद

के पहने कोट के कालर में गुलाब का एक फूल जड़ दिया। फूल जड़ना यद्यपि एक साधारण व्यापार था; पर आनंद के लिए य अप्रत्याशित था, इससे वह भीतर-ही-भीतर पुलकित हो उठा, उ लगा कि जैसे गुलाब के द्वारा अभया का स्पर्श उसके मन-प्राण क उज्जीवित बना रहा है—उस स्पर्श में एक नशा है, एक स्पंदन है शायद आत्मा का स्पदन। वह विहँस पड़ा और हँसते-हँसते ह बोला—इतने बड़े सौभाग्य को मैं कैसे सँभाल सकूँगा, अभया, ओह कैसे सँभाल सकूँगा?

—क्यों, भय खा रहे हो मुझसे?

—भय!—आनद समझ न सका कि, वह उत्तर में क्या कहे वह कुछ क्षण स्तब्ध रहकर उसकी ओर देखता रहा, फिर बोला—तुमसे मुझे भय नहीं; और कुछ है, जिसे मैं समझ नहीं पा रहा कि वह क्या है? क्या है वह, तुम कह सकती हो, अभया? मैं जानना चाहता हूँ कि वह क्या है।

अभया की भवें सिकुड उठीं, गालों का रंग कुछ और गाढ़ा ह उठा, वह किंचित् रोष-सने वचनों में बोल उठी—तुम आदम नहीं, पत्थर हो!

आनंद हँस पड़ा, पर अभया न हँस पाई।

आनंद के सामने वहाँ का वातावरण क्षुब्ध-सा दीखा, उस पाया कि शायद उससे कुछ भूल हो गई है; पर कहाँ वह भूल है, वह समझ नहीं रहा है। वह आप-ही-आप अस्त-व्यस्त-जैसा ह उठा और उसी अस्त-व्यस्तता में बोल उठा—अलभ्य वस्तु के पा पर मन में कौतूहल के साथ जो एक प्रच्छन्न आनंद होता है, उ आनद में मनुष्य का पत्थर हो उठना कुछ अस्वाभाविक नहीं, अभय देवी! मैं जानता हूँ—पत्थर मूक क्यो है? और पत्थर मूक न हो त और क्या हो? जहाँ भाषा स्वयं मूक हो जाती है, वहाँ मनुष्य क पत्थर भी कहा जा सकता है। और आपका पत्थर कहना कुछ गलत नहीं, अभया देवी!

अभया ने रोत्र में पत्थर जिस अर्थ में कहा था, वह अर्थ आनंद के विवेचन से सर्वथा भिन्न था; पर जब अभया ने पाया कि पत्थर को आनंद जिस रूप में ले सका है, वह तो उसके अपने अर्थ से और भी स्पष्ट, और भी मुखर, और भी प्रखर है, तब वह अपने-आपको रोक न सकी, हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—मैं पूछती हूँ, क्यो तुम किसी चीज को सीधे अर्थ में ग्रहण नहीं करते? क्यों तुम सामान्य वस्तु को भी असामान्य रूप में देखते हो?

—सामान्य-असामान्य का विभेद स्वयं कुछ सामान्य नहीं, अभया!—आनद उत्फुल्ल होकर ही बोल उठा—संभव है, यह मेरा दृष्टि-दोष हो; मगर मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि यह दृष्टि-दोष ही है······और, सच पूछो तो, मैं जब तुम्हें अपने-आप पाता हूँ तब लगता है, जैसे मेरा अस्तित्व ही नहीं रह गया हो! क्यो मैं अस्तित्व-हीन हो उठता हूँ—स्वयं नहीं जानता। संभव है, तुम इससे बुरा भी मानो; मगर तुम इतना जरूर मानोगी कि मैंने जो-कुछ कहा है, निष्कपट भाव से कहा है। और वह बिलकुल सच है।

आनंद वास्तव में निष्कपट है, वह भीतर-बाहर एक-सा है, जो सोचता है, समझता है, साफ समझता है और जैसा समझता है, उसे वैसा कह ही देता है; मगर अभया ऐसी नहीं है, वह बिलकुल भिन्न है; मगर भिन्न होकर भी आनंद से अभिन्न हो उठी है! वह आनंद की बातो को समझती है, रस ग्रहण करती है, और जहाँ आनद स्वय अपने भावों में उलझकर उन्हें व्यक्त नहीं कर पाता वहाँ उन अव्यक्त भावों की सतह पर पहुँचकर अभया सचेतन से जड़ हो उठती है, उस समय उसके दृष्टिपथ पर जो आता है, वह दिव्य होकर आता है, महान होकर आता है, वंदनीय होकर आता है। अभया तब चाहती है कि उसका वंदनीय, उसका महान, उसका दिव्य उसकी आत्मा को स्पर्शित, मन को स्पंदित और उसके प्राणों में अमृत का घड़ा उड़ेले, उसका रिक्त पूर्ण हो, उसके अंतर का कोना-कोना उस अमृतरस से भर उठे—संपूर्ण भर जाय, वह स्वयं संपूर्ण हो उठे

और जिधर उसकी दृष्टि जाय, वह संपूर्ण-संपूर्ण को ही देखे; मगर वह इच्छा करके भी, चाह करके भी, और जब वैसा अवसर आ भी जाता है, वैसा कर न पा रही, जाने कहाँ उसकी दुर्बलता है, वह नहीं जानती···वह दौड़ तो पड़ती है, पर सँभल जाती है और सँभलकर देखती है कि कहीं वह उस दौड़ में गिर तो न पड़ेगी···वह ललक उठती है उस अलभ्य वस्तु के लिए, जो उसके लिए अलभ्य होकर भी सुलभ है, महान होकर भी भिक्षुक है, वंदनीय होकर भी उसका अनुगत है और दिव्य होकर भी अनुग्रहप्रार्थी !

और ऐसी अभया किंचित् रोष-सने स्वर में कह उठती है— बुझौअल न बुझाओ, आनंद ! समय निकलता जा रहा है और तुम्हें उसका कुछ खयाल नहीं···अगर न चल सकोगे तो कहो, मैं लौट जाऊँ।

—ओह, सचमुच बातों में बहुत वक्त निकल गया; मगर यों ही चलोगी ? खाना-वाना···

—नहीं, उसकी कोई खास जरूरत नहीं, फल तो रहेंगे ही साथ, जब जी चाहेगा, खा लेंगे, क्यों ?

—खैर, वही रहे।

और दोनों कार पर आ बैठते हैं, अभया स्वयं सोफर की सीट पर बैठकर स्टेयरिंग थाम लेती है ! कार अपनी दिशा में चल पड़ती है।

वन-बीहड़-प्रान्तों में घूमने के लिए वे दोनों बहुत दूर तक चले गए हैं, ऐसी जगह जहाँ—उन दोनो के सिवा तीसरा कोई नहीं ! दोनों स्वच्छंद विचरण करते हैं, स्वच्छंद रूप से बातें करते हैं, ऐसी बातें जिनका न ओर है न छोर, जैसे वे बातें कभी शेष होने को नहीं, जैसे उन बातों के सिवा कहने-सुनने, समझने-देखने को कुछ है ही नहीं···दोनों चलते हैं, घूमते हैं, बैठते हैं, लेटते हैं, गिरते-सँभलते-उठते और क्लांत हो पड़ते हैं—और इस तरह क्लांत होकर कार पर आ बैठते हैं, फलों से क्षुधा-निवृत्ति करते और फिर विश्राम के लिए वहाँ से घर की ओर लौट पड़ते हैं······

अभी संध्या नहीं हो पाई है, मगर सूर्य्य अस्ताचल को स्पर्श करने

जा रहा है, कार की स्टेयरिंग थामे अभया बैठी है, कार की गति तीव्र है और उससे भी अधिक तीव्र उसके मन की गति है। आनन्द बगल-वाली सीट पर है, वह अस्ताचलगामी सूर्य्य की ओर देख रहा है; पर अभया उस ओर नहीं देख रही है, वह देख रही है—विभिन्न ओर से आते हुए कुछ युवक को ··हाँ, युवक की ही ओर। जब कार उसके निकट आ पहुँचती है, तब वह युवक-दल ठिठका-सा खड़ा उसके प्रति नमस्कार-ज्ञापन कर जैसे कुछ कहा चहता हो। कार धीमी गति में आकर स्वयं रुक जाती है ! अभया पीछे की ओर मुड़कर उस युवक-दल की प्रतीक्षा करने लगती है !

आनन्द समझ नहीं पाता कि कार क्यों रोक डाली गई ? वह कुछ कहा ही चाहता है कि वे युवक तबतक कार के निकट पहुँच जाते हैं और उनमें से एक बोल उठता है—सौभाग्य से ही इस समय आपके दर्शन हुए ! हमलोग प्रातःकाल आपके बँगले पर आए थे। डा० साहब से मालूम हुआ—आप अभी-अभी बाहर निकल चुकी हैं। क्या आप अभी अपने बँगले पर जायँगी ? या जैसी भी आज्ञा हो, कहा जाय। अब तो समय भी हमलोगों के पास नहीं है······आपने तो अबतक सोच लिया होगा ?

—सोचना इसमें क्या है ?—अभया हँसकर बोल उठी—मैं आपका प्रस्ताव स्वीकार करती हूँ।

—धन्यवाद, आपसे हमें ऐसी ही आशा थी।

कार स्टार्ट हुई और अपनी गति में चल पड़ी; पर जबतक वे दोनों कार पर बैठे रहे, न अभया ही बोली और न आनन्द ही कुछ पूछ सका······

मगर अभया जब कार से अपने बँगले पर उतर पड़ी तब वह बोल उठी—उतरिए न, आनन्दबाबू, चाय यहीं से पीते जाइए···

—नहीं, नहीं, अभी मेरा जाना ही ठीक होगा··अभी मुझे न रोकिए·····

अभया कुछ न बोली, आनन्द कार लेकर चलता बना।

दशम परिच्छेद

अभया ने अपनी स्वीकृति दे दी है—दे दी है सभानेतृत्व करने के लिए जिसे वह नहीं चाहती; पर इतना शीघ्र इस काम की ओर कैसे झुक पड़ी वह, इसे वह खुद नहीं समझ पा रही ! तो क्या उसे स्वीकृति की सूचना देना—और उस समय देना जबकि आनंद उसके साथ है, वह आनंद जो अभया को एक दिन सचेत कर चुका है यह कहकर कि देश-सेवा साधारण कर्म नहीं—तलवार की धार पर चलना है—धधकती आग के शोले को अपने हृदय से लगाना है—क्या यह इंगित नहीं करता कि अभया उस आनंद के मन को दुखाना चाहती है अथवा यह कि वह अपने अहं का प्रदर्शन करना चाहती है—वह चाहती है कि उसे दुनिया जाने कि वह सभानेत्री है, देश-सेविका है, कांग्रेस कार्य-कर्त्री है ! मगर इनमें से कोई भी कारण नहीं है, न तो आनंद को दुखाना ही चाहती है वह और न वह अपने अहं का ही प्रदर्शन करना चाहती है। उसे आत्म-प्रशंसा से स्वयं चिढ़ है, वह प्रदर्शन के पथ पर कभी न चढ़ी, वह आनंद को हृदय से चाहती है, उसके हृदय को चोट पहुँचाना उसका कदापि उद्देश्य नहीं; फिर भी उसने स्वीकृति दे दी है और सोच-समझकर दी है। यह स्वीकृति उसकी अंतरात्मा की स्वीकृति है······

अभया दिन की थकी-मारी जब अपने बिछावन पर आ लगी है; तब वह इसी उधेड़बुन में पड़ी है। वह क्यों देश-सेवा की ओर ललक पड़ी है, वह अपने प्रश्न का आप उत्तर दे नहीं पाती। उसके

स्मृतिपट पर आज दिन की घटनाएँ प्रत्यक्ष अंकित हो उठती हैं, उन घटनाओं में वह पाती है कि चपी की सगाई हो गई है उस व्यक्ति के साथ जो स्वयं जुआड़ी है, शराबी है, भ्रष्ट है, जिसे काम से निकाल दिया है, जिसकी पुष्टि उस बागवान ने की है जिसका नाम रामृ है और उसी रामू के सामने उसने गुलाब के फूल तोड़े थे, जिनमें से एक वह आनंद के पहने कोट में जड़ चुकी है, जिसपर आनद जाने क्या-क्या सोच चुका है—उसने पत्थर तक बनना भी कितनी सरलता के साथ स्वीकार किया है! वह आनंद कितना उसका प्रिय है, वह भी तो उसकी कम प्रिय नहीं! उन दोनों का मिलन एक-दूसरे के लिए कितना मधुर, कितना मादक और कितना आनंदमय है, उसे वह आनंद भी समझता है और वह खुद भी समझती है और समझती है कि वह आनंद के अभाव में एक क्षण भी सुखी नहीं रह सकती! वह कितना कर्मठ है, कितना सुन्दर है, कितना निष्कपट और कितना सरल······

और अभया सोचती है—आनंद सरल अवश्य है, निष्कपट भी है; पर वह उस युवक के प्रति ईर्ष्यालु क्यों है, द्वेषी क्यो है? उसने उसका क्या बिगाड़ा? वह एक जन-सेवक, स्वेच्छा-कृत एक सेवक—त्याग-तपस्या में तपा हुआ एक साधारण युवक है जिसमें न अहम्मन्यता है, न अपने-आपका जिसे बोध है और एक वह है, जिसने ऊँची डिग्रियाँ हासिल की हैं, जिसने अनुसंधान के प्रयोग में सफलता पाई है, जिस सफलता पर सरकार ने खिताब और वैज्ञानिक संस्थाओं ने सम्मान-प्रद प्रशंसा-पत्र के साथ पुरस्कार प्रदान किये हैं—जो व्यवसाय में कर्मठ और व्यवहार में सरल—शिशु-सा सरल है·· ···वह अकिंचन नहीं, समृद्धवान है, वह दीन नहीं, उदार है······मगर नहीं, सब-कुछ है और कुछ नहीं है, जब वह पाती है कि उसका विद्वेष एक साधारण युवक के प्रति है जो उसकी समता में नहीं है! विद्वेष समता में शोभा पाता है—जो स्वयं लघु है, उसके साथ विद्वेष कैसा? जो स्वयं महान है, वह लघु के प्रति क्यों ईर्ष्यालु हो!···

अभया का हृदय आप-ही-आप वितृष्णा से भर जाता है, वह अधिक और कुछ सोच नहीं सकती, वह निद्रित हो पड़ती है, जहाँ उसका सारा द्वन्द्व स्वय शांत हो पड़ता है! भोर होता है, प्रभात-फेरी-वाले आज भी फेरी लगा रहे हैं, प्रभात-कालीन संगीत अभया के अचेतन मन को सचेतन कर छोड़ता है, आज उस संगीत में उसे मालूम पड़ता है कि वह उसकी आत्मा का संगीत है। कल के संगीत और आज के संगीत में इतना विभेद क्यों है? वह समझ नहीं पाती, वह तन्मय हो जाती है उस संगीत की स्वर-लहरी मे—जो उसके पास उषा-समीरण के साथ आकर उसे तरंगायित कर रही है। अभया आत्म-विभोर हो उठती है और उसी अवस्था में आप भी गुनगुनाने लगती है—जागो भारत भाई······

आज वह निरलस है, प्रसन्न है, प्रफुल्ल है, उसके रोम-रोम में स्पंदन है, पुलक है! जिधर ही उसकी दृष्टि जाती है, उधर ही वह पाती है कि बालारुण की कोमलतम रश्मियाँ वसुंधरा के उन्मुक्त वक्षस्थल पर निर्मल धौत पीताभ अंबर बिखेर रही है···आज पेड़-पौदे, वृक्ष-लताएँ—जड़ और चेतन—सभी मुग्ध हैं, प्रसन्न हैं······ अभया उसी मुग्ध-प्रसन्नता को अपने कक्ष-कक्ष में बिखेरती है, गुन-गुनाती है, चहकती है। लगता है, जैसे अपनी प्रफुल्लता को खुलकर बाँटने के लिए वह अधीर और चंचल हो उठी है······

डा० स्वरूप नित्य की तरह आज भी टहलकर आ गये हैं, बरामदे की आरामकुर्सी पर आ लेटे हैं, अभया उनके सामने जाती है और इसके प्रसन्न-प्रफुल्ल वदन को देखकर वे आप भी प्रसन्न हो उठते हैं और उसी प्रसन्नता के स्वर में वे बोल उठते हैं—कल वह युवक आये थे, अभय, जब तुम चली गई थीं, शायद वह आते होंगे, मैंने आने के लिए कह दिया था···

—वह नहीं आयेंगे आज—अभया प्रसन्न होकर ही कहती है—कल संध्या को भेंट हुई थी, मैंने अपनी स्वीकृति दे दी है······

—स्वीकृति दे दी है—डा० स्वरूप ने अभया की ओर देखते हुए पूछा।

—हाँ, दे दी है!—अभया बोली, फिर कुछ क्षण रुककर पूछा—क्यों उस युवक को जानते हैं बाबूजी?

—जानता नहीं था पहले—डा०स्वरूप बोल उठे—कल से ही जानने लगा हूँ; वह अपने कुछ साथियो के साथ यहाँ आये, तुम्हारी खोज की, मैंने खोजने का कारण पूछा, उसने बतलाया कि तुम्हे सभानेतृत्व के लिए आमंत्रण देने आये हैं। इस पर मैं उसकी ओर झुका, बहुत-से प्रश्न किये, जिनके उत्तर उसने सजीदगी के साथ, सरलता के साथ और स्पष्ट शब्दों में दिये......और तभी मैंने समझा—वह साधारण एक कार्य-कर्त्ता ही नही है, वह चरित्रवान और ऊँचे व्यक्तित्व का युवक है...वह एक धनी खान्दान के युवक हैं, पर धनी युवकों की उच्छृङ्खलता उनमें नहीं; वह फिलासफी के प्रोफेसर थे, जिसे वह छोड़ आये हैं।

डा० स्वरूप एक साँस में सारी बातें कहकर अभया की ओर देखने लगे, उनकी दृष्टि में एक जिज्ञासा थी, जिसे वे अपनी वाणी-द्वारा प्रकट करने में अक्षम थे। अभया ने भी अपने पिता की दृष्टि पर अपनी दृष्टि डाली; पर उस दृष्टि की भाषा वह भी न समझकर पूछ बैठी—मेरी समझ में नहीं आता कि आखिर ऐसा पागलपन ये लोग क्यों कर बैठते हैं। घरबार, आत्मीय स्वजन, धन-सम्पत्ति, प्रतिष्ठा और पद को छोड़कर गाँव-गाँव का चक्कर लगाना, जहाँ न खाने-पीने का ठिकाना, न आराम की जगह......

—समझ गया, समझ गया, अभय—डा० स्वरूप बीच ही में बोले—तुम समझ रही हो कि, जिस काम को उन लोगों ने अपने सिर उठा रखा है, उसमें उन्हें कष्ट-ही-कष्ट मिलता है। कष्ट मिलते हैं—यह सही है; मगर जो अपने कष्ट को कष्ट ही नहीं समझते, जो कष्ट उनके स्वेच्छा-कृत हैं, जिन कष्टों को अपने जीवन-धन को तरह जिनने अपने अंतर में पाल रखा है, उनके सामने उनके वे कष्ट स्वयं

विभूति बन जाते है और वह विभूति, जिसे आशुतोष शंकर ने अपने अंग-प्रत्यंगो में स्थान दे रखा है। जो वस्तु जितनी ही महान है, उसे पाने के लिए उतने ही कष्ट अपेक्षित हैं, अभय! इसी का नाम तपस्या है—साधना है, और जबतक कोई तप की आग में नहीं तपता, तबतक स्वर्ग की सुषमा उससे दूर रहती है ··अभय, इन्हीं तपःपूत युवको की ओर हमारी भारतमाता निहार रही है आज! उसकी लौह-शृंखलाएँ इन्हीं युवको के हाथो टूट सकती हैं······

अभया चुपचाप अपने पिता के मुख की ओर देखती रही; लगा, जैसे वह बहुत गंभीरता-पूर्वक उनकी बातो पर सोच रही है। कुछ क्षण तक दोनो चुप रहे, फिर आप-ही-आप अभया बोल उठी—जो लौह-शृंखलाएँ इतनी कठोर है, वे क्या इतनी आसानी से टूट सकती हैं, बाबूजी? मेरी समझ में नहीं आता कि ये मुट्ठी भर युवक, जिनके पास न कोई अस्त्र-शस्त्र हैं, प्रबल विरोधियो के बमों-टैंकों का सामना किस तरह वे कर सकते हैं? माँ की बेड़ी काँच की चूड़ी नहीं कि जरा स्पर्श हुआ और टूटी! यह सिर्फ पागलपन नहीं तो क्या है?

डा० स्वरूप बहुत गंभीर मुद्रा में अभया की बातें सुनते रहे और जब उसकी बातें शेष हो गईं, तब डा० स्वरूप के ओठों पर हँसी आ गई और उसी हँसी को लेकर अभया की ओर देखते हुए बोले—तुम्हारा ऐसा सोचना कुछ असंगत नहीं, अभय, सभी ऐसा ही सोचते हैं और ऐसा सोचने का कारण है कि एक ओर विशाल मशीनगनो, तोपो और टैकों को देखते हैं और दूसरी ओर तोप और टैक का सपना तो दूर रहा, बंदूक, तलवार, बर्छा को कौन कहे—महज लाठियाँ भी नहीं हैं; फिर ऐसे व्यक्ति प्रबल शत्रु का सामना करना भी चाहें तो वह पागलपन के सिवा और क्या कहा जायगा? मगर सो बात नहीं है! इसका दूसरा पहलू है और वह आध्यात्मिक है! जो तमस्-प्रकृति के व्यक्ति होते हैं, वे स्वभावतः भीरु हो उठते हैं। उस समय जबकि कोई सत् प्रकृति के व्यक्ति की वाणी उसके कानों में जाती है। सिंह हिंसक पशु है, उसका स्वभाव ही

हिंसा करना है, वह देखने में भी भयकर और कार्य में भी क्रूरकर्मा है; मगर वही सिंह तपः पूत योगी के निकट शांत हो पड़ता है, उसकी हिंसा-वृत्ति जाती रहती है और वह उनकी इच्छा पर चलने को तत्पर हो उठता है। हिंसा और अहिंसा में यही मौलिक विभेद है। अहिंसा की विजय आत्मा पर होती है और हिंसा की शरीर पर। शरीर पर अधिकार करनेवाला अधिकारी अपने प्रयत्न में सफल नहीं समझा जाता, जबतक आत्मा उसकी अधीनता स्वीकार नहीं कर लेती। आज का भौतिक जगत रणोन्मत्त हो उठा है, उसके सामने भौतिक वस्तुओं का मोह ही प्रबल हो उठा है; और जब तक मोह है, वह सारी दुनिया पर विजय पाकर भी शांति उपलब्ध नहीं कर सकता। फिर जहाँ शांति नहीं—शाश्वत आनद नहीं—वहाँ राज्य-विस्तार स्वयं एक विडंबना है। मगर आज की दुनिया यह बात समझ नहीं रही है, समय आयेगा और लोगो की समझ फिरेगी...

डा० स्वरूप बोलकर चुप हो रहे, जाने वे और कुछ क्या-क्या सोच गए, फिर आप-ही-आप बोल उठे—शुभ कर्मों का फल शुभ ही होता है, अभय, अशुभ नहीं; इसका प्रभाव और बल भी अजेय होता है। आज का मानव दिव्य जीवन की ओर उन्मुख नहीं है। उसमें पशुता घर कर गई है, विद्वेष-भावना प्रबल हो उठी है, मोह ने उसे ग्रस्त कर रखा है, स्वार्थ के सामने उसने घुटने टेक दिये हैं, विषयों की वासनाएँ उसके ज्ञान-तंतुओ को नष्ट कर चुकी हैं। तमस् का प्रभाव है—उसकी माया है; पर यह स्थायी वस्तु नहीं, इसका अंत होगा ही—जब दिव्य-कर्मा इस क्षेत्र में उतरेंगे। भले ही उनकी संख्या अल्प हो, पर उनका प्रभाव अक्षुण्ण होगा—अमोघ होगा...हमारे त्रिकाल-दर्शी ऋषियों ने इस तत्त्व को समझा था, हम उन्ही की संतान हैं, भारत उन्हीं मंत्र-द्रष्टा ऋषियों की एक दिन जन्म-भूमि रह चुका है, यहाँ के रजकण में अब भी वह मूरि है, जिसके स्पर्शमात्र में अमरता प्रसन्न खड़ी

दीखने लगती है। काश, आज हमारी आँखें होतीं ! काश, आज हम कुछ समझ पाते !

डा० स्वरूप और कुछ बोल न सके, वे बोलते-बोलते स्वयं उच्छ्वसित हो उठे थे। अभया की दृष्टि उस ओर लगी थी। वह भी उनकी बातों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने लगी। आज उसके सामने वह मातृ-मूर्ति प्रत्यक्ष हो चुकी है, जिसे वह अपने कल्पना-चक्षु से देख रही है—देख रही है वह मातृ-मूर्ति, उसका भयावह वेश, वह रूप जो जरा-जीर्ण है, फटे-चिटे वस्त्रों से आवृत है, जिसके हाथ और पैर जंजीरों से बंधे पड़े हैं, जो छटपटाती-सी दीखती है, पर वह कुछ कर नहीं पा रही ! जिसकी आँखों में ज्वालाएँ भर उठी हैं, जिसके ओठों पर घृणा और विक्षोभ प्रत्यक्ष हो उठे हैं, मुख से जिसकी वाणी निकल नहीं पा रही है ! ओह, यह मूर्ति कितनी भयावह किंतु कितनी करुण है ! अभया अपनी कल्पनाओं से आप सिहर उठती है, उसके रोम-रोम काँप उठते हैं, और वह करुण-क्षुब्ध स्वर में बोल उठती है—और सुना नहीं चाहती, बाबूजी, माफ करो, और नहीं सुना चाहती। माँ का इतना बीभत्स रूप हो सकता है, वह इन आँखों न देखा जायगा। ओह, हम कितनी मोह-मदिरा से मदिर हो उठे हैं कि आँखें रहते हुए भी हम अंधे हैं, कान रखते हुए भी उसकी करुण-चीत्कार हम सुन नहीं पाते, हृदय रखकर भी उसकी व्यथा का अनुभव नहीं कर पा रहे।

डा० स्वरूप अभया की ओर समुत्सुक दृष्टि से देखने लगते हैं, आज उनकी दृष्टि में अभया का रूप दिव्य हो उठता है और स्नेह-गद्गद हृदय से वे बोल उठते हैं—सच कहती हो, अभय, आज हम हृदय रख कर भी उसकी व्यथा का अनुभव नहीं कर पा रहे······वे कुछ क्षण तक मौन हो रहते हैं, फिर आप-ही-आप बोल उठते हैं—मगर वे युवक हमारे अत्यंत धन्यवाद के पात्र हैं, अभय, जिन्होने अपनी माता की कल्याण-कामना में अपने-आप की वलि देनी चाही है, जिन्होंने अपने खून से माता का शृंगार करना

सोचा है ! आजादी सस्ती चीज नहीं, वह खून से ही मिल सकती है, अभय ! जो खून स्वतः उबलकर मातृ चरणों पर बरस पड़ना चाह रहा हो······

अभया पिता के सामने और ठहर न सकी, वह धीरे-धीरे उठी और अपने कमरे की ओर चल पड़ी। डा० स्वरूप आँख मूँदे हुए जाने क्या सोच रहे थे, उन्हें अभया के चले जाने की कुछ आहट न मिली, वह आँख मूँदे हुए आप-ही-आप बोल उठे—और आज तुम उन्हीं युवकों-द्वारा आमन्त्रित हुई हो, बेटी ! यह आमंत्रण······ यह आमंत्रण······मंगलमय प्रभु······तुम्ही जानो, यह आमंत्रण क्या है ? इसकी लाज ·····डा० स्वरूप ने अंतरिक्ष के प्रति अपने दोनों हाथों को जोड़कर नमस्कार किया।

अभया अपने कमरे में आकर पलंग पर लेट रही, पर लेटकर भी वह अपने कल्पना-लोक की मातृ-मूर्ति को अपनी आँखों से ओझल न कर सकी। उसकी दृष्टि खिड़की से बाहर क्षितिज की ओर लगी है जहाँ वह पा रही है कि बादलों के खंड उड़ते जा रहे है, कभी वे एक दूसरे से बिलग हो उठते हैं और कभी एकत्र होकर घनीभूत हो उठते हैं। खंड-बादल का यों कोई अस्तित्व नहीं—कोई मूल्य नहीं, जरा-सी हवा लगी और वह उड़ पड़ा ! पर जब यही खंड अपने समूह में मिल जाता है, तब वह अपने आप में महान हो उठता है···अभया सोचती है···समष्टि भी त आखिर यही है···व्यष्टि अपने-आपमें कितनी लघु है, कितनी नगण्य !! ·· नहीं, वह लघु नहीं रह सकती, नगण्य होकर नहीं रहेगी वह, उसे समष्टि के भीतर आना ही होगा—उसे समष्टि में आना ही चाहिए··· वह समष्टि, जो अपने-आपमें महान है—अपने-आपमें सबल···

अभया कुछ ही क्षणों में आप-ही-आप जाने क्या सोच जाती है और सोचते-सोचते ही जाने वह मूर्त्ति कब उसकी आँखों से स्वयं ओझल हो पड़ती है। अभया अपने-आपमें एक विलक्षण स्फूर्त्ति का अनुभव करती है—अपने-आपमें वह प्रसन्न हो उठती है···

तभी उसे याद आता है कि मृणाल कई दिनो से आई हुई है, उसने मिलने के लिए कहला भेजा है; पर वह अबतक मिल नही पाई। वह सरल मृणाल अपने मन में क्या कहती होगी···नहीं, उसे जाना चाहिए ही वहाँ—जहाँ मृणाल है, उसकी छोटी बहन मृणाल······

अभया आनदोद्वेग में उठ पड़ती है, आईने के पास पहुँच-कर अपनी वेश-भूषाओ से आवृत हो कमरे से बाहर निकल पड़ती है ·····

अभया बहुत दिनो के बाद आज राजा बाबू के आवास की ओर जा रही है। यो वह इस बीच वहाँ कई बार आई-गई है, पर स्वतः नही—बुलाहट होने पर ही गई है और जिस उद्देश्य से गई है, उसे पूरा कर लौटी है; पर अभया आज स्वतः जा रही है उस ओर, आज उसके लिए सवारी नहीं आई है वहाँ से, सवारी आ-आकर भी जो अभया एक दिन आने में समर्थ न हो सकी थी, वही आज पॉव-पैदल और अकेली ही हवेली की ओर जा रही है। गाँव की स्त्रियाँ जो जहीं काम कर रही होती हैं, वहीं से अभया की ओर देख लेती हैं, भीतर भीतर उसके भाग्य को सराहती—जाने और-और क्या सोच जाती हैं, पर अभया उनकी ओर देखने का अवकाश जैसे पाती नहीं, वह अपने रास्ते पर बढ़ जाती है। इस तरह वह हवेली के भीतर पहुँचकर अपनी चाची को प्रणाम-निवेदन करती हुई पूछ बैठती है—मृणाल कहाँ है, चाची? उसने याद किया था मुझे, पर मैं आ न पा सकी थी इसके पहले···

—अरी, मृणाल, आ बेटी इधर!—चाची अभया को अपने निकट पाकर उतने ही कुछ क्षण में अस्त-व्यस्त हो पड़कर पुकारने लगी—बहूरानी कहाँ हो, अरी देखो, अभया बेटी जो आई है!

और एक ओर से हँसती हुई भाभी आकर कहती है—आज सूरज पच्छिम में तो नहीं उगा था, माँजी! मैंने ठीक देखा नहीं!

—आप देखतीं कैसे भाभी?—हँसती हुई अभया कहती है—

रात भर जगी होती हैं और उठने के समय सोती हैं ! ऐसे आदमी उगते हुए सूरज को नहीं देखते···

—तब तो आप ही बता सकती हैं अभया दीदी—भाभी प्रसन्न मुद्रा में बोलती हैं—हाँ, आप ही तो बता सकती हैं, जिनकी दृष्टि में रात-दिन का कोई अलग अस्तित्व नहीं !

अभया समझ गई, उसकी भाभी इन कुछ शब्दों में क्या कह गईं ! वह हँस पड़ी और हँसती हुई प्रतिवाद के शब्दों में बोल उठी—यह सत्य नहीं—सत्य का अपलाप करना मात्र है ! रात और दिन का अलग-अलग अस्तित्व है और अलग रहेगा भी, जिस तरह सूर्य अपनी स्थिति और गति में ·····जिस तरह पूरब उगता है, उसी तरह उगता रहेगा। क्यों, चाचीजी, यह गलत है, जरा भाभीजी को समझा दो न।

चाची हँस पड़ी और हँसती हुई ही बोली—यह तो तुम दोनों के बीच का झगड़ा है, अभया बेटी, इसमें इस बूढ़ी का क्या काम ? मगर मैं तो यही कहा चाहती हूँ कि, जब-तब आ जाया करो, बेटी ! तुम्हारे आने से हम खिल उठते हैं, तुम्हारी बातें हमें बड़ी मीठी लगती हैं ! हमलोग तो कुछ पढ़े नहीं, बेटी, देश-दुनिया का ही ज्ञान हमें कहाँ है···मगर, यह क्या बहूरानी, तुम अभया बेटी को खड़ी ही रखोगी ? लाओ कोई आसन·········

इतने में दूसरी ओर से मृणाल उस ओर आती-सी दीखी, अभया की दृष्टि उस ओर जा पड़ी, वह स्वयं उस ओर लपकती हुई हँसते हुए बोल उठी—अरी, कितनी लंबी हो उठी, मृणाल ! अब तो पहचानी भी नहीं जाती·····

और अभया उसके पास पहुँचकर आदर से उसके गाल थपथपाने लगती है। भाभी उसके साथ थी, वह बोल उठी—लंबी बनानेवाली मशीन पर पहुँचकर कोई भी लंबी बन सकती है ! मृणाल बनी तो क्या, आप भी प्रयोग कर देखिए·····

भाभी फिर हँस पड़ी, मगर मृणाल न हँस सकी, वह किञ्चित् रोष

में ही बोली—भाभी चैन से बातें न करने देंगी, अभया बहन! चलो, मेरे कमरे में चलो……

—मगर, वहाँ भी इन्हें तुम चैन न पहुँचा सकोगी, मृणाल!—भाभी जरा रोष में ही बोली—कहो तो मैं शपथ खाकर कह सकती हूँ! जब इन्हे तुम अपने मिलन-विरह की बातें सुनाओगी तो क्या तुम इनकी छुपी हुई आग को न भड़का दोगी! और हमारी ब्रह्मचारिणी बहन अभया……

—चुप रहो, भाभी—मृणाल अपने भवों पर बल डालकर बोल उठती है—आओ, अभया बहन,—उनकी क्यों सुनती हो?

—नहीं, मृणाल—अभया हँसती हुई बोल उठी—अभी तुम अपनी विद्या मे नई हो, अल्प विद्या भयंकरी भी हो सकती है। भाभी इस दिशा में बहुत पुरानी हैं, इनका साथ रहना ठीक होगा। क्यों भाभी, कुछ काम तो नहीं है अभी? आइए-आइए……

—मगर आपकी बहन मृणाल को जो अच्छा न लगेगा! यह खुलकर कैसे आपको अपनी कथा सुनायेगी—भाभी हँसती हुई दूसरी ओर को चल देती हैं।

—तो भाभी, मैं भी अब नहीं जाती! कथा अकेली-अकेली सुनने में कुछ मजा नहीं आता—अभया उस ओर देखती हुई बोली—रस-ग्रहण अकेले-अकेले नहीं होता, जो सुनता है, वह चाहता है कि इसे और कोई भी सुनता। तभी मैं कह रही, भाभीजी, मजा तब आयगा जब आप भी रहेंगी। कुछ यह कहेगी और आप सुनेंगी और कुछ आप कहेंगी—हमलोग सुनेंगे…

—ओह, समझी—अपनी जगह से भाभी बोल उठती हैं—मगर यह निमंत्रण मृणाल के मुख से ही मैं सुनती तो……

—आओ-आओ, भाभी—मृणाल इस बार हँस पड़ती है—निमंत्रण के लिए तुम इतनी लुब्ध हो उठोगी—मैं नहीं जानती थी! सादर निमंत्रण है—अब तो आओगी भाभी? क्या अब भी नहीं?

—हाँ, अब जरूर आऊँगी—भाभी हँसी – मगर, अभी आ रही हूँ तुरत, तबतक आप लोग बढ़ें।

और अभया को लेकर मृणाल अपने कमरे की ओर चल पड़ती है। वह कमरे के भीतर आ पहुँचती है, मृणाल उसे अपने पलग पर बिठाने के लिए चादर ठीक से सरियाने लगती है, तभी अभया का ध्यान उस ओर जाता है और वह पाती है कि वह चादर मर्सिलाइज्ड नहीं—विशुद्ध धौत खादी की है, जिसके चारो ओर के चौड़े हरे कोर पर नीले रग की पतली दो धारियाँ उसकी शुभ्रता को घेर रही हैं।

अभया की दृष्टि में वह दृश्य नये रूप में आता है, वह उस पर बैठते हुए देखती है कि वहाँ जो भी वस्त्र हैं, सब-के-सब खादी के ही; यहाँ तक कि टेबिल-पोश और पर्दे भी रगीन खादी के ही हैं जिन पर खूबसूरत बेल-बूटे की प्रिंट है। अभया विस्मया-विष्ट होकर बोल उठती है—यह क्या मृणाल, खादी से तुझे इतना शौक कब से हो गया ? देखती हूँ, तूने केवल खादी ही नहीं पहन रखी है, बल्कि तेरे काम की जो भी चीजें हैं, सभी खादी की हैं ! क्या दुल्हा बाबू नेशनलिस्ट हैं ?

मृणाल लजाई और लजाती हुई बोली—नेशनलिस्ट ही नहीं, घोर काँग्रेस कर्मी हैं, महात्माजी के अनन्य भक्त !

—और अनन्य भक्त ही तो हैं, अभया बहन, आपकी मृणाल भी, देखती नहीं है; इनपर पति देवता का कितना गाढ़ा रंग चढ़ा है ! जो मृणाल बोले भी न बोलती थीं, अब तो बोलने में झड़ी लगा देती हैं—भाभी बाहर से बोलती हुई आई और दीवार के एक कोने में जहाँ एक सुंदर-सा फोटो लटक रहा है, उस ओर अभया का ध्यान आकर्षित करती हुई बोल उठी—अभया बहन, इधर जरा देखिए न ! यह जो देवता हैं जिनपर अपने हाथ के कटे सूतों की माला डाली हुई है, यह अपना अनन्य भक्तित्व ही तो दिखा रहे हैं !

—ओह, उधर तो मेरी दृष्टि गई ही नहीं थी—अभया उस फोटो की ओर बढ़ी और उसपर अपनी तीक्ष्ण किंतु स्नेह-भरी दृष्टि डालती हुई बोली—जभी तो···जभी तो भाभी!······मगर विवाह के समय इनका तो यह रूप न था, भाभी, क्यो मेरा अनुमान गलत तो नहीं ?

—गलत नहीं, ठीक है, अभया बहन—भाभी हँस पड़ी और उसी हँसी के उल्लास में बोल उठी—उस समय उस रूप का सॅवारनेवाला था ही कहाँ कोई, अभया बहन! जिस तरह भृंगी किसी भी कीड़े को अपने स्नेहांचल में छिपाकर उसे तदाकार बना लेती है, आपकी मृणाल ने वही तो किया है! और जिस तरह मृणाल ने उन्हें अपना रूप देकर उनमें सुषमा भरी है, उसी तरह उस देवता ने अपने गुणों से हमारी मृणाल को अलङ्कृत भी किया है! इन रूप और गुण का सम्मिश्रण ही तो मृणाल और आदित्य हैं · कितनी अच्छी जोड़ी बैठी, अभया बहन, देख कर तबीयत ललचा उठती है। मगर एक ही बात मेरी समझ में नहीं आती, जिसकी सुकुमारता रेशम के भार को भी सह सकने में असमर्थ थी, उस सुकुमारता पर वे खादी के खुरदरे वस्त्र······

—क्यों, खादी से इतनी वितृष्णा क्यों भाभी—अभया बीच में ही बात काटकर बोल उठती है—खादी के वस्त्र तो मृणाल को अच्छे भा रहे हैं, भाभी, कुछ बुरे तो नहीं फबते!

—यह क्या कह रही हैं अभया बहन!—भाभी हँसती हुई कहती हैं—आपके मुँह से कम-से-कम यह सुनने की मैं आशा नहीं करती थी!

इस बार मृणाल सोत्सुक अभया की ओर देखते हुए बोली—भाभी को आशा न हो, मगर मैं तो समझती थी, गाँव में खादी के संबंध में औरों का विचार भिन्न हो सकता है, पर अभया बहन जरूर इसे अच्छा समझेंगी! क्यों भाभी, अब तुम्हीं कहो—मेरा विचार क्या गलत था।

—गलत न भी हो; पर मैं नहीं कह सकती कि अभया बहन तुम्हारी जैसी इसे आप भी ग्रहण करेंगी ! क्यों अभया बहन ?—भाभी बोलकर उत्सुक दृष्टि से अभया की ओर देखने लगीं !

—क्यों नहीं ग्रहण करेंगी ?—मृणाल इस बार बोली—जो स्वय सुन्दर है, जो स्वय शुभ्र है, जो स्वय पवित्र है और जो स्वयं आज हमारी स्वाधीनता की प्रतीक है, उसकी ओर किसी भी सहृदय का ध्यान जायगा ही—ध्यान ही केवल नहीं, उसे पाने के लिए, उसे ग्रहण करने के लिए उसका हृदय ललचायगा ही। और, मैं जानती हूँ कि अभया बहन सहृदया हैं।

अभया मृणाल के मृदुल वचनों को सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। उसे लगा कि, उसके लिए मृणाल की ओर से एक संदेश है जो उसकी आत्मा को स्पंदित कर रहा है, उसे सचेतन कर रहा है। मगर वह पा रही है कि उसके अंगों पर जो वस्त्र हैं, वे खादी के नहीं हैं। उसे लगा कि वह मृणाल की दृष्टि में छोटी उतरती जा रही है, इतनी छोटी कि जहाँ पहुँचकर अपने को जीवित वह नहीं पा सकती· ···

—सहृदया हैं, तभी तो आपकी शिष्या बनेंगी—भाभी भवों पर बल डालती हुई बोल उठीं—मगर मैं नहीं बन सकती ! खादी-वादी मुझे पसंद नहीं······

—और इसलिए कि अंगों में कहीं खरोच न आ जायँ !—अभया हँसती हुई बोल उठी—यही बात है न, भाभी।

—यह आप भी समझ रही हैं, मुझे आपसे सुनकर प्रसन्नता ही हुई—भाभी ने अभया की ओर देखते हुए कहा—बात कुछ गलत नहीं है ! मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि मैं भावुकता की आँधी में बहकर दिखलाने के लिए इसे ग्रहण करूँ और जब वह आँधी दिमाग से हट जाय तब उसे उठाकर किसी भिखमंगे को दे दूँ—यह उस वस्त्र के प्रति अन्याय होगा और वैसा मैं नहीं चाहती।

—अभया दीदी, सुन रही हैं भाभी की बात!—मृणाल हँसती हुई बोली—खादी पहनना भी इनकी दृष्टि में एक भावुकता है!

मगर अभया ने अपनी सम्मति-सूचक कुछ भी बात अपने मुँह से नहीं कही। वह कुछ क्षण तक चुप रही और मुस्कराकर बोल उठी—भाभी को इस तरह दिक न करो मृणाल। यह बाहर-बाहर चाहे जो कह लें; पर इनके भीतर का पता लगाना हमलोगों का काम नहीं!

अभया बोलकर हँस पड़ी, मृणाल भी हँसी और भाभी ने भी उसमें सहयोग दिया, तभी बाहर से छोटी भाभी आकर बोली—अभया बहन, माँजी बुला रही हैं, चौके में आ बैठी हैं।

भाभी हँसती हुई उठ खड़ी हुई और खड़ी होकर बोली—पता पीछे भी लगाया जा सकता है, पर रसोई जो ठंढी पड़ रही है, वह पीछे गर्म तो नहीं की जा सकती; अभी मजलिस बर्खास्त हो अभया बहन, चलना ही चाहिए हम सबको, नहीं तो माँजी बिगड़ उठेंगी···

और सब-की-सब चौके की ओर चल पड़ीं।

उस दिन अभया जब उन लोगों से विदा होकर बाहर निकली तब संध्या हो चुकी थी, इसलिए वह दूसरी जगह घूमने-फिरने को भी नहीं जाकर अपने बँगले की ओर हो लौटी, पर जैसे ही वह अपने हाते में आ लगी, वैसे ही उसने पाया कि कार कुछ क्षण पहले आकर वहाँ से लौटी जा रही है।

अभया कुछ क्षण खड़ी कार की ओर देखती रही; पर वह धूमिल संध्या की गोधूलि में छिप चुकी थी, वह खड़ी न रह सकी, अपनी फुलवारी में आकर घूमने लगी।

एकादश परिच्छेद

अभया यों तो मृणाल के बुलाने पर ही उसके घर गई थी, पर उसका उद्देश्य और कुछ था, जिसे वह वहाँ जाकर व्यक्त न कर पा सकी। यद्यपि वहाँ का वतावरण ठीक उसके मनोनुकूल ही था तथापि वह अपने अनुकूल वातावरण से अपने उद्देश्य पर नहीं पहुँच पाई; फिर भी मृणाल से मिलकर उसे कुछ कम प्रसन्नता न हुई। मृणाल इन्हीं कुछ दिनों में कुछ-की कुछ हो जा सकती है, अभया यह अनुमान तक न कर सकी थी; पर आज उसने जिस मृणाल को देखा वह उसके हृदय के बहुत समीप थी, आज उसने उस मृणाल में पाया कि उसमें आभिजात्य वंश की संकीर्णता न रहकर वह आकाश-सी उदार और लता-सी नमनीय हो उठी है। यह उदारता, यह नमनीयता कहाँ से आई और किस संसर्ग से आई, यह भी उसकी दृष्टि से छिपा हुआ नहीं रह गया! वह उसे देखकर प्रसन्न हो उठी और उसी प्रसन्नता में वह जो कुछ कहा चाहती थी, कह न सकी---भूल गई अपने आप को और भूली-भूली ही वह वहाँ से चल पड़ी ··

पर वही अभया जब जाग्रत महिला-सम्मेलन में सम्मिलित होने को सभा में आ पहुँचती है तब पाती है कि महिलाओं का एक समूह है जो अपने-आपमें न उतना विस्तीर्ण है और न उतना

संकीर्ण—एक मध्य अवस्था में है, उस समूह में वह पाती है कि अधिकांश महिलाएँ उसकी अपरिचिता ही हैं, किंतु जो परिचिता हैं उनकी ओर देखकर वह विश्वास नहीं कर पा रही है कि वे पर्दे से बाहर सभा के खुले प्रांगण में किस तरह आ लगीं; पर उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने पाया कि जो पर्दे में सदा से रहती आईं, वे तो आ चुकी हैं और मृणाल, जो आज नया संदेश लेकर उस गाँव में आ चुकी है, क्यो नहीं यहाँ आ पाई! आखिर वह क्यों नहीं आ सकी—इसमें कौन-सा रहस्य है···वह कुछ क्षणतक इसी पर सोचती रही।

मगर यह रहस्य रहस्य बनकर न रह पाया जब अभया ने पाया कि, सभानेत्री के रूप में आसन-ग्रहण कर चुकने के बाद अचानक जो युवती उसे माला पहना रही है, वह तो और कोई नहीं, मृणाल ही है और वह मृणाल जब मन्त्रिणी की हैसियत से अपने सभानेत्री का परिचय देने के लिए मंच पर आ खड़ी होती है और भरे हुए फूल की तरह उसके मुँह से वाणी झड़ पड़ने लगती है तब अभया का उत्साह उमंगों में परिपूर्ण हो उठता है, उसमें जो एक उदासीनता थी, वह विलुप्त हो जाती है, उसे मृणाल पर अभिमान हो उठता है, उसकी ओर से प्रेरणा की सरिता जैसे बहती हुई आकर उसे आप्यायित कर देती है, वह मुग्ध हो उठती है और मुग्ध दृष्टि से मृणाल की ओर देखने लगती है···

मृणाल थोड़े में बहुत-कुछ कह जाती है; पर बहुत-कुछ कह चुकने पर भी उसे लगता है कि वह कुछ कह नहीं पाई, जो उसे कहना चाहिए था, वह कह नहीं सकी; पर उसके लिए उसे खेद नहीं है। वह मंच से उतर पड़ती है, अब जो मंच पर आता है, वह और कोई नहीं—वह कांग्रेस-कार्यकर्त्ता है—नायक है, जिसे सब कोई व्रजेंद्र कहा करते हैं।

और वह व्रजेंद्र, मंत्रिणी मृणाल ने जिस दिशा की ओर सभा को संकेत किया है, उसका समर्थन करते हुए अपने व्याख्यान की

ओर अग्रसर होता है, तब लगता है कि जैसे सभा में पूर्ण निस्तब्धता छा गई है, सूई के गिरने तक का शब्द जैसे सुन पड़े, सभी की दृष्टि व्याख्याता की ओर जा लगी है। इतना सुन्दर सारगर्भित व्याख्यान अभया ने कभी सुना हो—उसे याद नहीं। वह जान नहीं पा सकी कि उसका नायक—व्रजेंद्र—इतना प्रभावशाली, इतना गवेषणा-पूर्ण और इतना निर्भीक भाषण कर सकता है! और उस भाषण में वह पा रही है कि वह उसके मुँह की भाषा नहीं—हृदय के सच्चे उद्गार हैं जो अपने उद्गम-स्थान को विदीर्ण कर फूट निकले हैं। श्रोताओं की ओर से करतल-ध्वनि क्षण-क्षण में मुखरित हो उठती है और उस मुखरित ध्वनि के भीतर व्रजेंद्र अपनी दिशा की ओर बढ़ निकलता है···

इसके बाद एक-दो भाषण और होते हैं, जो समयानुकूल और सुन्दर ही कहे जा सकते हैं।

अब सभानेत्री की बारी है। पर, वह अपने-आपमें कुंठा का अनुभव कर रही है, वह समझ नहीं पाती कि अब वह अपने भाषण को कहाँ से प्रारंभ करे और किस तरह उसका अंत हो! फिर भी उसे तो बोलना ही होगा, उसे भाषण देना ही है। सब की दृष्टि उस ओर जा लगी है, पर वह सिर झुकाए पड़ी है, वह कुछ समझ नहीं पा रही है; फिर भी जितना ही उससे विलंब हो रहा है, वह विलंब स्वयं उसे काँटे की तरह चुभ रहा है। अब वह उस काँटे को निकालकर ही दम लेगी। वह कोमल से कठोर हो उठती है, उसी अवस्था में वह उठ खड़ी होती है और बहुत ही धीमे स्वर में सभा को संबोधित कर अपना भाषण आरंभ कर देती है·········

अभया वाचाल है सही, प्रखर और प्रगल्भ भी है सही, पर रंग-मंच पर उसकी वाचालता उसका साथ नहीं दे रही; वह वक्र और सरल और सरल और वक्र—इस तरह टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से जैसे गुजर रही है, पर गुजरती जा रही है, रुक नहीं रही, गिर नहीं

रही—उसके लिए यही बहुत है—आगे की ओर बढ़ते जाना ही उसका लक्ष्य है और इस तरह धीरे-धीरे अपनी गति में चलकर अपने लक्ष्य तक पहुँच पाती है और दीर्घ-निश्वास छोड़ कर अपना आसन-ग्रहण करती है। उस समय जो करतलध्वनि होती है, वह अभूतपूर्व है और अभूतपूर्व रूप में कुछ क्षण तक गूँजती रह जाती है!

और सबके अन्त में—जबकि गूँज मिट चुकती है, जो खड़ी होती है, वह है—निर्मला देवी—जो मृणाल और अभया की भाभी है। उसका छोटा-सा काम है और वह काम है, धन्यवाद-ज्ञापन का!

और धन्यवाद-ज्ञापन निर्मला ने जिस रूप में किया है, उसका अनुमान न मृणाल कर सकी थी और न अभया ही। निर्मला ने कभी खुलकर, मृणाल को देश-सेविका के रूप में पाकर उसकी सराहना न की थी, जब कभी वह उससे बोली भी तब वह परिहास और व्यंग के स्वर में ही बोली; पर वही निर्मला सभा-स्थल में आ बैठी है जहाँ वह मृणाल से ही नहीं, ब्रजेन्द्र, अभया और दो-एक वक्ताओं से भी नारी-जागरण के उद्बोधक शब्द सुन चुकी है, तब वह अपनी स्वीकृति की सूचना अपने धन्यवाद के शब्दों-द्वारा देते हुए अधिक-अधिक उल्लसित हो उठी है और उसके उल्लास से नारी-मंडल में एक चेतना की लहर दौड़ पड़ी है। इसका कारण, उसका व्यक्तित्व है, वह उस गाँव की जमींदार-बहूरानी है, एक आभिजात्य वंश की समुज्ज्वल ज्योति, जिसकी रश्मि उस आस-पास के भू-भाग पर अहर्निश पड़ी है और पड़ती रहेगी। वास्तव में, कुछ ही क्षणों के अनन्तर उल्लास की वन्या इतनी तीव्र गति में प्रवाहित हो उठेगी—यह कल्पना के परे की वस्तु थी। इससे अभया आनन्द में बिभोर हो उठी और सभा का काम समाप्त होते ही वह निर्मला के पास दौड़ पड़ी और उसे अपने आलिंगन में बाँधती हुई बोल उठी—जिस भाभी को मैं अबतक समझ न पाई थी, वह खुलकर मेरा हाथ बटायगी—इसकी मुझे बिलकुल आशा न थी भाभी! मगर मैं आज नहीं कह सकती कि आपका इस तरह मैदान में आना मेरे पक्ष में

कितना सुंदर हुआ है—इसे मैं भाषा-द्वारा व्यक्त नहीं कर पाती। मैंने जिस काम को डरते-डरते हाथ में लेना चाहा था, उसे आप इतनी निर्भय होकर स्वीकार करेंगी—यह कुछ कम सौभाग्य की बात नहीं।

—मगर सौभाग्य तो तब समझूँगी अभया बहन, जब आपकी ओर से हमें सदा प्रोत्साहन मिलता रहेगा—निर्मला अपनी निर्मल हँसी बिखेरती हुई बोल उठी—आपके भाईजी को मैं समझा लूँगी, उनकी ओर से मुझे भय नहीं है, पर आप अपने चाचाजी को सँभालने का बीड़ा जबतक न लेंगी·········

—ओह, समझ गई, भाभी, आप क्या कहा चाहती हैं—अभया बीच ही में बात काटकर बोली—पर उनसे भय खाने की बात नहीं, उनका भार मुझपर रहा। आप चाचाजी को नहीं जानतीं। बाहर से वे जितने ही कठोर है, भीतर-भीतर वे उतने ही कोमल भी हैं। मैं जानती हूँ कि वे पुराने विचारो के समर्थक हैं—यह उनका दोष नहीं, दोष हमारे समाज का है; पर वे गाँव के सर्वे-सर्वा हैं—वे अनाचार को नहीं देख सकते, पर सदाचार को समझने की उनमें बुद्धि है, उनमें कृपणता नहीं, उदारता है! आप जानती नहीं, मैं जानती हूँ कि मेरे रहन-सहन पर जहाँ गाँव के कुछ लोग खार खाए पड़े रहते हैं, वहाँ वे मेरी प्रशंसा में जमीन-आसमान को एक किये रहते हैं। यह उनकी उदारता नहीं तो और क्या है? यह उनकी सूक्ष्म-दर्शिता नहीं तो और क्या है?

मृणाल उस समय वहाँ न थी, वह जहाँ थी, उस ओर इन सब का ध्यान भी न था; पर वही मृणाल जब उस नारी-मंडल में आकर कहती है—जलपान का भी आयोजन है यहाँ, चलिए, सब प्रबंध ठीक है—तब न केवल निर्मला ही चौंकी, वरन अभया भी उसकी ओर चंचल होकर देखती रही और वहाँ की अन्य महिलाएँ भी।

सभा-सोसाइटी में आना ही जहाँ एक विडंबना हो, वहाँ जलपान का रश्म भी पूरा करना होगा—यह कम-से-कम ग्रामीण वातावरण

के लिए एक समस्या थी। अभया जन्म से ही शहरों में रह आई है, इसलिए उसे तो अपवाद ही समझना चाहिए; पर वे महिलाएँ जो, दिहातो में ही जन्मीं, पलीं, बढ़ीं और अपनी दुनियादारी में आ लगी हैं, अवश्य अधिक चंचल हो उठीं और उनमें से कुछ उदासीन-सी होकर अपने घर की ओर मुड़ीं; पर निर्मला को स्थिति का ज्ञान है, वह समझ रही है कि, इस चंचलता का कारण क्या है? मृणाल अपने-आपमें समझ नहीं रही है, कि यज्ञ की पूर्णाहुति किस तरह सुन्दर रूप में सम्पन्न हो सकेगी। अभया निर्मला की ओर देख रही है और निर्मला अन्य महिलाओ की ओर और मृणाल ,इन-दोनों की ओर···

मगर निर्मला सावधान है और सावधान होकर ही मृणाल की आकांक्षा और उद्योग को सफल बनाना चाहती है, तभी वह अन्य महिलाओ को देखकर कह उठती है—चलो-चलो ,बहन, थोड़ा जल-पान कर लेने में कौन-सी बुराई है। आज हमलोग जिस काम को ओर झुकी हैं, वह तो हमारी सम्मिलित साधना से ही पूरा हो सकता है। पर उस साधना में जबतक हमलोग सरसता उत्पन्न न कर सकेंगी तबतक उस कठोर व्रत को हमलोग निवाह न सकेंगी! क्योंकि हम जन्मतः कठोर-कर्मा नहीं हैं; हमारी नारी-जाति सरसता के लिए उत्पन्न की गई है, नहीं तो यह दुनिया आनद की न होकर एक भार बन जाय···· ··और उसी सरसता के लिए तो यह जलपान का आयोजन है—जिसकी आयोजक और कोई नहीं, हमारी मृणाल बहन है, फिर उसकी साध·······

इस बार सभी की दृष्टि एक दूसरे की ओर गई और इस तरह सब-की-सब सभास्थल से चलकर एक चौपाल में आई, जहाँ वह आयोजन किया गया है।

जलपान का आयोजन तो एक निमित्तमात्र है, असल तो यह है कि उन नारियों के भीतर चिरकाल-संचित जो एक संकोच, एक लघुता, एक अहं और सजातीय द्वेष है, उसका उन्मूलन हो, पारस्परिक मैत्री का बंधन सबल हो, हँसी-परिहास के बीच दूसरे को स्पर्श

करने का अवसर मिले और जहाँ बैठकर प्रस्तावित कार्यों को किस तरह बढ़ाया जाय—इसपर विचार-विनिमय हो। इस ओर नायक—व्रजेंद्र का सकेत और मृणाल का आयोजन है, जिस यज्ञ की होता वह स्वयं है, उसे अपने पति के साथ कुछ स्थानों पर जाने का अवसर मिल चुका है और उस अवसर से वह अनुभव प्राप्त कर सकी है, आज उसी अनुभव का प्रसाद अपनी अन्य बहनों के बीच बाँटने को वह प्रस्तुत हुई है।

परंतु चतुर खिलाड़ी की तरह जिसने इतना गोरखधंधा पसार रखा है, वह अलिप्त भाव से पास रहकर भी दूर-दूर रह रहा है। वह जानता है, शिकार किस तरह किया जाता है, जाल किस तरह बिखेरा जाता है, कौन उसका सहायक हो सकता है, किससे उसकी हानि हो सकती है, उसकी दृष्टि तीव्र है, उसमें दूर-दर्शिता है, उसमें सतह तक पहुँचने की क्षमता है। वह केवल चक्कर ही नहीं लगाता, उसकी दृष्टि और कहीं होती है। और जहाँ जाकर उसकी आकांक्षा को बल मिलता है और जहाँ उसकी आकांक्षा फलवती दीख पड़ती है, उसे अपनी ओर मोड़ने में प्रयत्न-शील हो उठता है। वह अभया को इसी तरह पा सका है, इसी तरह वह उसे अपनी ओर खींच सका है। अवश्य अवसर का भी इसमें कुछ कम हाथ नहीं; पर वह उसे अनायास ही वह अवसर मिल सका है, जब उसे मालूम हो सका है कि उस गाँव के प्रभावशाली पुरुष जो राजा बाबू हैं, उनकी कन्या मृणाल स्वयं एक बड़े नेता की पत्नी और सच्ची देश-सेविका है—वह गाँव में आई है, उससे उसका कार्य सध सकता है, उसका प्रभाव उसकी साधना के लिए अत्यत बलशाली हो सकता है। वह उससे मिलता है, अपना प्रस्ताव उसे कह सुनाता है और उसकी सहायता के लिए उससे निवेदन करता है; मृणाल उसके निवेदन पर अपना हर्ष प्रकट करती है; पर मृणाल जानती है कि, वह अपने पित्रालय में स्थायी रूप से रहने को नहीं आई है, उसका ध्यान अभया की ओर जाता है, जिसमें वह पाती है कि वही इस कर्मोद्यम

के लिए अग्रणी हो सकती है, उसमें योग्यता के साथ-साथ बुद्धि की प्रखरता और उसके प्रभाव में सबलता भी है। मृणाल उस ओर उस युवक का ध्यान आकर्षित करती है और इस तरह वह युवक अभया की ओर उन्मुख होता है और इस तरह उसे सभा-नेतृत्व के लिए आमंत्रित करना वह नहीं भूलता……

मगर मृणाल इतना ही करके निश्चिंत हो नहीं बैठती, उसका प्रयत्न दूसरी दिशा की ओर मुड़ता है, वह दिशा इसकी भाभी की ओर संकेत करती है; पर उसकी भाभी कच्ची धातु की बनी नहीं है। जितना ही मृणाल प्रयत्न करती है, उतनी ही वह बनाई जाती है, उतनी ही उसकी हँसी उड़ाई जाती है, उतना ही उसे परेशान किया जाता है ! मृणाल क्षुब्ध हो उठती है, पर क्षुब्ध होकर भी वह यह नहीं भूलती कि इस उद्योग में अपनी अभया बहन से याचना कर देखे और उसी याचना से प्रेरित होकर उसे मिल जाने के लिए संवाद भेजती है, संवाद अभया तक जाता है और वह उस ओर चल पड़ती है, उसके हृदय में कुछ है जिसे वह मृणाल से कहना चाहती है। एक ही समय दोनों के हृदयों में करीब-करीब एक ही भाव का स्फुरण होता है, उसी उद्देश्य से वे दोनो एक दूसरे से मिलती भी हैं; पर वहाँ का वातावरण स्वयं इतना मुखर है कि एक दूसरे पर अपने भाव को व्यक्त नहीं कर पाती, दोनों के उद्देश्य अपनी-अपनी जगह पर शिथिल हो पड़ते हैं, कहने की इच्छा रखकर भी एक दूसरे से कह नहीं पाती और इस तरह दोनों एक दूसरे से उस दिन विदा ग्रहण करती है……

मगर जिसे वे दोनों एक-दूसरे से व्यक्त नहीं कर पातीं, उसे वह मुग्ध-प्रखर वातावरण स्वयं विहँसता हुआ कह सुनाता है, उसके कथन को मृणाल और अभया ही केवल हृदयंगम नहीं करतीं; वरन् निर्मला पर उसका जादू काम कर जाता है जिसे वह तबतक समझ नहीं पाती जबतक वह सभास्थल पर आकर उस जादूगर के मंत्र को अपने कानों नहीं सुन लेती। आज इसीलिए वह जादूगर प्रसन्न है,

उसकी दृष्टि में आगत भविष्य की तंद्रिल-मदिर आशा है, जहाँ उसकी सफल आकांक्षा उसकी दृष्टि में नृत्य करती-सी दीख रही है।

और यह जादूगर—स्वय नायक ब्रजेंद्र है। उसने जादू की लकड़ी फेर दी है, उसने अमोघ मत्र फूँक दिया है और दूर खड़ा देख रहा है कि उसका जादू किस तरह सिर पर चढ़कर बोल रहा हैं•••

मृणाल का जलपान-आयोजन सफलता-पूर्वक सपन्न हो चुका है और सभी हँसती-मुस्कराती हुई वहाँ से विदा लेकर अपने-अपने घर की ओर चल पड़ी हैं। रुक गई हैं वहाँ अभया, मृणाल और निर्मला देवी।

अब ब्रजेंद्र भी निश्चिंतता की एक साँस लेकर इन तीनो से आ मिला है और मिलते ही वह जिसकी ओर मुड़ा है, वह है निर्मला देवी और उसे सबोधित कर कह उठता है—मैं समझ नहीं पाता कि किस तरह मैं आपके प्रति धन्यवाद प्रकट करूँ! आपने अपने धन्यवाद में अपनी सुरुचि और सहृदयता का जो परिचय दिया है, वह आपकी महानता प्रकट करने के लिए पर्याप्त है! आप से मुझे ऐसी आशा न थी••••••

—आपको आशा थी ब्रजेंद्र बाबू—मृणाल हँसती हुई बोल उठी—मगर मुझे तो मुतलक इनसे यह आशा न थी! जो रात-दिन मुझे चिढ़ाती रहीं, जो रात-दिन मुझपर फब्तियाँ कसती रहीं, वह आप-से-आप और इतनी तीव्रता में, रास्ते पर आ लगेंगी, इसपर किसीको किस तरह विश्वास हो सकता है! किसीको हो भी जाय, मगर मैं तो कभी आशा न करती थी। यह सब आपका ही प्रभाव है न, ब्रजेंद्र बाबू!

—नहीं-नहीं, ऐसा न कहें, मृणाल!—ब्रजेंद्र बाबू जरा संकोच लिये हुए ही बोले—प्रभाव व्यक्ति में नहीं, वातावरण में है। जो व्यक्ति नहीं कर पाता, वह वातावरण कर दिखाता है। मैं जानता था कि जहाँ आप खुद आ गई हैं, उस घर में वातावरण की सृष्टि होकर ही रहेगी, वहाँ निर्मला देवी उस वातावरण से बची नहीं रह सकतीं••

और आप अभी उनकी फब्तियाँ कसने की बात कह रही थीं न ! यह तो आपका सौभाग्य है कि आपकी निर्मला-जैसी सहृदया भाभी मिली है ! आप दोनों का मधुर संबंध ही ऐसा है कि जो 'ना' को 'हाँ' में परिणत कर देता है !

व्रजेंद्र बोलकर हँस उठा, निर्मला देवी भी रस-ग्रहण कर हँस उठी और हँसती हुई ही बोली—जिस मधुर संबंध का परिणाम मृणाल के अग-प्रत्यगों पर प्रत्यक्ष आवृत हो उठा है, वह मधुर-सबंध ही धन्यवाद-भाजन हो सकता है, व्रजेंद्र बाबू—यह क्यों नहीं कहते ? क्यों मृणाल, वह धन्यवाद का पात्र नहीं है ?

मृणाल हँस न सकी, उसके ओठ स्पंदित होकर रह गये, वह बोल भी न सकी। व्रजेंद्र समझ गया कि निर्मला देवी का इशारा किस ओर है, वह हँस पड़ा और हँसकर ही बोला—अवश्य- वह धन्यवाद का पात्र है, निर्मला देवी—और मैं कह सकता हूँ कि इस दिशा में मृणाल अत्यंत ही सौभाग्यमयी है···

पर अभया चुप है, वह क्या सोच रही है, वह खुद नहीं समझ रही है।

—मगर मृणाल तो अपने को सौभाग्यवती तब समझेगी जब मेरी भाभी इस दिशा में आगे बढ़कर हमें दिखलायेगी कि वह कहाँ तक क्या-कुछ कर सकती हैं—मृणाल बोलकर निर्मला की ओर देखने लगी। उसकी दृष्टि मे स्पष्ट एक व्यंग था, जिसे वह अपनी भाभी के प्रति व्यक्त कर रही है······

निर्मला सजग है और सजग होकर ही मुस्कराती हुई बोल उठती है—निर्मला देवी अपने-आपमें कुछ नहीं है—यह निर्मला देवी को छोड़कर और कोई नहीं जानता; मगर वह इतना अवश्य और जोर देकर कह सकती है कि उसकी संचालिका अभया बहन का सहयोग यदि उसे मिल सका तो अवश्य वह कुछ कर दिखा सकती है ! क्यो, अभया बहन, आप तो कुछ कहतीं नहीं ? क्या सोच रही हैं आप ? मेरा खयाल कुछ गलत है ?

—गलत-सही मैं कुछ नहीं जानती—अभया जरा खिची-सी ही बोल उठती है—सहयोग ही आप चाहेंगी तो वह अभया से मिल जायगा।

—बस, इससे अधिक और क्या चाहिए, अभया बहन!—निर्मला बोलकर उसकी ओर देखने लगी, फिर व्रजेंद्र बाबू की ओर देखकर बोली—अभया बहन का अग्रणी होना स्वयं इस बात का प्रमाण है कि जिस दीक्षा मे आज हमारी अन्य बहनें दीक्षित हुई हैं, वह सफल होकर ही रहेगी। मैं तो एक कारणमात्र हूँगी। अवश्य अभया बहन पर ही यह गुरुतर भार है और मुझे विश्वास है, जैसा कि आपका भी विचार होगा—आपसे हमारी नारी-समिति में जागरण की एक लहर बहकर ही रहेगी।

—अवश्य-अवश्य!—व्रजेंद्र अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करनेवाली हँसी में बोल उठा।

सब-के-सब उठ खड़े हुए और व्रजेंद्र के प्रति नमस्कार-ज्ञापन कर वे तीनों गाडी पर आ बैठीं।

द्वादश परिच्छेद

व्रजेंद्र मात्र संचालक है और मृणाल प्रेरक—वह मृणाल जो अपने उज्ज्वल व्यक्तित्व से वातावरण को प्रस्तुत कर सकी है। वह-मात्र प्रेरक बनकर ही आई थी, और प्रेरणा देकर अपनी सखी-सहेलियों से विदा-ग्रहण कर अपने घर को चली गई है—रह गई हैं निर्मला भाभी और अभया, जिन्हें अपनी जगह पर रहना है, और रह कर और कामों के साथ नारी-जागरण की ओर जिन्हें बढ़ना भी है।

मृणाल जबतक गाँव में रही, वह स्वयं आगे बढ़ी, अभया ने भी साथ दिया, वे मिलकर घर-घर घूमीं, घर-घर में चर्खे का प्रचार किया, घर-घर में इसकी ओर प्रवृत्ति डाली, काटना सिखाया, रुचि उत्पन्न की, उपयोगिता को समझाया। केवल इतना ही नहीं, पर्दे के भीतर जाकर उन दोनों ने प्रकाश की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया, स्वास्थ्य के साधारण नियम बतलाये और उन्हें कार्य में बरतना सिखलाया। जिनकी रुचि पढ़ने-लिखने की ओर गई, उन्हें उस ओर मोड़ा, जिनकी रुचि शिल्प और कला की ओर गई, उनके लिए उस तरह की शिक्षा की व्यवस्था की। इस तरह ये दोनों सर्वान्तःकरण से काम में लगी रहीं।

मृणाल विदा ले चुकी है, पर उसके जाने पर उससे प्रेरित कामों में शिथिलता नहीं है। अभया उसे सँभाल रही है। वह जानती है कि

काम को किस तरह करना चाहिए, किस तरह उसमें गति डालनी चाहिए—किस तरह उस ओर सुरुचि जग सकती है और किस तरह उस कार्य में सपन्नता आ सकती है। अभया जब अपने कर्मोद्यम में थक जाती है तब वह दौड़ पड़ती है अपनी भाभी निर्मला के पास और पहुँचकर सुनाती है उसे उल्टी-सीधी, इस तरह उसे परेशान कर डालती है। निर्मला भी उसकी उल्टी-सीधी समझती है और समझती है कि अभया का उल्टा-सीधा कितना उसके हृदय के निकट की वस्तु है! वह प्रसन्न ही होती है और प्रसन्न-मुद्रा में ही कह उठती है—जो भी कहो, अभया बहन, तुम्हारी बातें सर-आँखों पर हैं; पर मैं सारा वक्त दे भी नहीं सकती! तुम देखती हो कि······

और निर्मला जिस ओर देखने के लिए अभया से निवेदन करती है, अभया जब उस स्थल पर पहुँचकर देख पाती है तब अपनी भवों पर बल डालकर वह बोल उठती है—तुमने बहाने का अच्छा जरिया निकाल रखा है! क्यों अपने-आपको रोक न सकीं और कुछ दिनों तक? सेवा और भोग—दो विरुद्ध दिशाओं में जाने का प्रयास···

निर्मला उसकी बातों पर खिलखिलाकर हँस पड़ती है और हँसती हुई ही बोल उठती है—समझी-समझी, अभया बहन! मगर यह तुम्हारी भूल है, सेवा और भोग अपने-अपने स्थान पर रहेंगे ही, जीवन में दोनों अपेक्षित हैं! एक के बिना दूसरा नीरस है, मूल्य-हीन है······

—ऐसा तो तुम कहोगी ही—अभया किंचित् रोष-सने स्वर में कहती है—जो स्वयं भोग में डूबी हुई है, वह भोग की सराहना कैसे न करेगी!

—मैं सराहना के खयाल से नहीं कहती, अभया बहन—निर्मला इस बार सावधान होकर बोली—जहाँ केवल कर्म-ही-कर्म है, भोग नहीं है, वह कर्म स्वयं अपने-आपमें, एक दिन वितृष्णा उत्पन्न करने का कारण हो उठता है और जहाँ भोग ही प्रधान है और कर्म गौण हो उठा है, वह भोग स्वस्थता का चिह्न नहीं—

मृत्यु की ओर का आह्वानहै। पर जिस तरह जीवन में कर्म की प्रधानता है, भोग भी अपने स्थान पर वही प्रधानता रखता है। अपने स्थान पर दोनों ठीक हैं, दोनों जीवन के लिए आवश्यक हैं! पर हमें यह न भूलना चाहिए कि हम एकांगी न हो पड़ें, एकांगी होकर ही किसी की महत्ता को न समझ बैठें और किसी को बिलकुल त्याज्य न समझ लें। न एक ग्रहणीय है और न दूसरा त्याज्य! दोनों का समत्व चाहिए—दोनों सम अवस्था में ग्रहणीय हैं और उसी अवस्था में त्याज्य भी! और जहाँ समत्व नहीं है, ठीक तुला की तरह दोनों को समभाव में लाकर नहीं बरतता, मैं कहूँगी कि उससे गलती हो रही है, वह भूल रहा है और उसकी वह भूल एक दिन उसे धोखा दे सकती है......

निर्मला विषय की गुरुता की ओर स्वभावतः दौड़ पड़ी थी, पर वह कुछ ही आगे बढ़कर तुरत मुड़ चली और मुड़ते-मुड़ते ही वह हँसकर बोल उठी—आज कर्म-प्रवाह में जिस तरह तुम बही जा रही हो बहन, यह बहाव तबतक है जबतक तुम्हें भोग का साधन उपलब्ध नहीं हो जाता। और जिस दिन तुम्हारे सामने वह साधन प्राप्य होगा उस दिन तुम स्वयं पाओगी कि मेरे कथन में कितना तथ्य है......

अभया समझ गई कि उसकी भाभी किस ओर ले जाना चाहती है, वह अपने-आपमें चौंकी; पर तुरत अपने को संयत कर कुछ झुँझलाती हुई ही बोली—रखो तथ्य अपने पास ही, भाभी, लाभ ही होगा। चोर के मुँह से धर्म की चर्चा शोभा नहीं देती...

—बात कुछ गलत नहीं कही, अभया बहन—निर्मला हँसती हुई बोली—तथ्य तो, खैर, मैं अपने पास ही रख लेती हूँ; मगर देखूँगी एक दिन, यदि देख सकी तो उस दिन पूछूँगी कि आप क्या थीं और अभी आप क्या हैं?

—ठीक, है वही रहने दो भाभी—इस बार अभया मुस्कराई और फिर गंभीर होकर बोली—तो क्या तुम बिलकुल बाहर नहीं जा

सकतीं, भाभी ! कुछ भी तो साथ दे सकतीं जबतक तुम आसानी से साथ दे सकती हो। यों अकेली कर तो लेती हूँ, मगर देखती हो, यह काम क्या अकेले का हो सकता है ?

निर्मला उसकी परेशानी को समझती है, वह यह भी जानती है कि उसके काम में हाथ बटाना ही चाहिए; पर उसके सामने नारी-सुलभ संकोच आ खड़ा होता है जिसे टालकर बाहर निकलने की वह राह बना नहीं पाती और फिर भी वह बोल उठती है—अधिक की आशा तो न करो अभया बहन, माँजी अब मुझे इस तरह स्वतंत्र घूमने देना नहीं चाहतीं, इसलिए मैं कुछ निकट के घरों में जाकर काम-काज देख आ सकती हूँ और कुछ बहनों को अपने घर बुलाकर सीना-पिरोना या पढ़ाई का काम चला सकती हूँ। क्यों, ठीक होगा न ?

अभया स्थिति की अनुकूलता समझकर सप्रसन्न बोल उठती है—इतना भी यदि तुम अपने हाथों सँभाल सको तो यह बहुत बड़ा काम होगा, भाभी ! बाकी काम तो मैं आप ही सँभाल लेने के लिए काफी हूँ।

—तो मुझे मंजूर है, अभया बहन—निर्मला बोल उठी—इतने के लिए अब तुम्हें कष्ट न उठाना पड़ेगा।

अभया प्रसन्न हो उठती है, उसके सामने गुरुतर काम का बोझ स्वयं हलका प्रतीत होने लगता है, वह वहाँ से विदा लेकर बाहर निकल जाती है।

अभया की प्रकृति सदैव दुस्साहसिक रही है। जबतक वह काम को समझ नहीं लेती तबतक वह उलझी-उलझी-सी रहती है, पर जैसे ही उसे प्रकाश की कुछ भी रेखा दीख पड़ी कि वह मैदान में कूद पड़ती है और अनवरत गति में वह अपनी दिशा में चल पड़ती है। वह सदैव से ऐसा ही करती आ रही है और आगे भी उससे ऐसी ही आशा की जा सकती है।

अभया के अनवरत उद्योग और परिश्रम से आसपास के गाँवों में

गृह-शिल्प और शिक्षा में एक जागरण आ गया है। उस जागरण में अभया पाती है कि जो नारी एक दिन अन्ध-कूप में पड़ी-पड़ी अपने दुर्वह जीवन को कोस रही थी, आज जब वह अपनी ओर देखती है और देखती है, अपनी सचालिका अभया की ओर, तब वह आनंद में पुलकित होकर बोल उठती है—तुम्हारा ऋण कुछ सामान्य नहीं है अभया बहन ! तुम न होतीं तो······

—नहीं, सो गलत है, बहन—अभया अपनी आत्म-प्रशसा से जरा खिझी-खिझी-सी हो कह उठती है—मैं तो एक निमित्त हो सकती हूँ, पर असल तो यह है कि जीवन में कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं जो मनुष्य में चेतना भर जाते हैं ! काम करने की आकांक्षा गुप्तरूप से सब में छिपी पड़ी है, वह बीजरूप में सर्वत्र छिपी पड़ी है, केवल अनुकूल अवसर की अपेक्षा रहती है और जैसे ही वह अवसर आन पहुँचता है, जैसे ही ठडी बयार का एक झोंका उसे स्पर्श कर जाता है, वह बीज आप-से-आप अंकुरित हो उठता है, फिर यदि इसी तरह अनुकूल अवसर वह पाता रहा तो उस अंकुर को पनपते और बढ़ते देर नहीं लगती। यहाँ भी ठीक यही बात कही जा सकती है ! फिर ऋण-उण की बात कैसी, बहन ?

—तुम जो कह लो—वह नारी बोल उठती है—हमलोग देहाती-गँवारिन, तुम्हारी इन बातों को क्या जानें ! हम तो यही जानती हैं कि जो काम हमलोगो के लिए किसी दिन पहाड़-जैसा था, वह इतना आसान भी हो सकता है—यह सब तुम्हारी कृपा ही तो है, अभया बहन ! फिर हमलोग गँवारिन होकर भी इतना तो समझती ही हैं कि तुम्हारा ऋण हमलोगों पर कितना ज्यादा है !

अभया इस बार प्रतिवाद न कर सकी, उसे भीतर-ही-भीतर प्रसन्नता हो रही थी कि ये दिहात की स्त्रियाँ होकर भी हृदय की कितनी साफ हैं ! जहाँ बड़प्पन नाम की चीज छू-तक नहीं गई है, जो श्रद्धा करना जानती हैं—सम्मान करना जानती हैं······

और उन्हीं नारियों-द्वारा जब कभी, अवसर-अनवसर, कुछ जलपान

या भोजन कर लेने के लिए वह आमन्त्रित की जाती है, तब अभया अपने संकोच में फँसी-जैसी रह नहीं पाती, वह हृदय खोलकर उस आमंत्रण को स्वीकार करती है, उस समय जलपान या भोजन के लिए जो वस्तु उसके सामने आती है, वह साधारण होकर भी उसे अधिक सुस्वादु जान पड़ती है और सराह-सराह कर उसे स्वीकार करती है। अभया जानती है कि आमन्त्रण की स्वीकृति बंधुत्व को अत्यंत प्रगाढ़ बनाती है, जिस प्रगाढ़ता में वह पाती है कि जीवन के लिए आमंत्रण कितना अपेक्षित, कितना भव्य और कितना अमूल्य है। पर अभया इतने में ही सीमित नहीं रहती, वह और दो कदम आगे बढ़ती है और बढ़ती है उस समय, जब थकी-माँदी किसी ओर से अचानक आकर किसी के घर, उससे मिलते ही कह उठती है—भूख ज्यादा लग रही है, लाओ कुछ, मैं खाकर ही जाऊँगी·····' तब वह घरवाली अपने-आपमें अस्त-व्यस्त हो उठती और उसकी अस्त-व्यस्तता इसलिए होती है कि, उस-जैसी अतिथि के लिए उसके पास है क्या! पर अभया तो स्वयं जानती है उसे। और तभी उसका संकोच दूर करने के लिए वह फिर स्वय बोल उठती है—मैं तुम्हारी अतिथि नहीं, मात्र-सेविका हूँ, बहन! तूल-तबील की जरूरत नहीं जो भी चीज मौजूद है, वही मुझे चाहिए—उससे ज्यादा मैं छू नहीं सकती···

—मगर···मगर अभया बहन, यह कैसे होगा······

—खूब होगा, होगा कैसे नहीं?—अभया खुले हृदय से बोल उठती है—अपनी इच्छा की चीज मुझे ज्यादा अच्छी लगती है। मैं कृत्रिमता को बिलकुल पसंद नहीं करती। अगर तुम ऐसा न करोगी तो कहो, मैं चली जाऊँ···मगर तुम्हारे कहने पर भी मैं जा नहीं सकती, मैं तो खाऊँगी ही और तुम्हें खिलाना ही पड़ेगा······

और अभया स्वयं घर के भीतर बढ़ जाती है और जो भी खाने की वस्तु वह देख पाती है, उसे आदर के साथ और बड़े स्नेह से स्वीकार करती है। घरवाली उसकी अभिन्न-हृदयता पर मुग्ध और उसके प्रति अत्यंत ही कृतज्ञ हो उठती है······

अभया एक दिन इसी तरह जब आतिथ्य-स्वीकार कर लौटी आ रही थी, तभी पीछे से जैसे कोई दौड़ती हुई आकर कह रही है—कहाँ से अभी लौटी जा रहीं अभया बहन ?—और इस आवाज पर जब अभया मुड़कर देखती है, तब पाती है कि वह तो चंपी है और वह कुछ आश्चर्य-चकित-सी बोल उठती है—अरी, तू कहाँ री चंपी। क्या यहीं तेरा घर है ?

चंपी उसके सामने आकर चुपचाप खड़ी हो जाती है, अब चंपी चंपी नहीं रह गई है, उसमें सहज-सरल एक लज्जा आ गई है और लज्जा-सूचक घूँघट जरा खिसककर ललाट को स्पर्श कर रही है, जिसपर सिंदूर का एक छोटा-सा गोल टीका है! अभया को लगता है, जैसे वह (चंपी) अभी-अभी किशोरी से युवती की ओर दौड़ चली है; पर उसमें यौवन की चपलता नहीं, न उसकी आँखों में वह व्रीडा ही है, जैसे यौवन वहाँ आकर स्वयं मूर्च्छित हो पड़ा है। अभया के स्मृति-पटल पर एक-एक कर बहुत-सी भावनाएँ संचित हो उठतीं, तभी वह पूछती है—क्यों री चपी, अच्छी तो है ?

—हूँ !—चंपी स्वीकारात्मक स्वर में अपना उत्तर देती है, पर वह स्वयं पुष्ट होकर उसके कंठ से बाहर नहीं निकल पाता। अभया उसके प्रश्न पर उल्लसित नहीं होती, वह स्वयं अपने-आप उलझ पड़ती है; फिर भी वह अपने को संयत करती है और वह प्रसन्न करने के विचार से बोल उठती है—तू इतनी जल्दी अपना घर बसा लेगी—मैं यह नहीं जानती थी, चंपी! पर जो हो चुका है, अच्छा ही है! हम स्त्रियों के लिए इससे अच्छा दूसरा काम क्या हो सकता है! पर तेरा दुल्हा कहाँ है, क्या करता है ?

दुल्हे की चर्चा से चंपी की आँखे छलछला आती हैं, पर चंपी तुरत सावधान होती और बल-पूर्वक अपने आँसुओं को आँखों में ही सँभालती हुई कहती है—वे तो यहाँ नहीं हैं !

अभया की उत्कंठा उसके छोटे से उत्तर से तृप्त नहीं होती।

इसलिए पूछ बैठती है—तो कहाँ है चंपी ? अब तो शायद फार्म में वह काम करता भी नहीं।

—फारम से तो पहले ही निकाल दिये गये थे।

—तो अब क्या करता है ?

चंपी तुरत उत्तर नहीं दे पाती, वह कुछ क्षणतक चुप हो रहती है, फिर अचानक बोल उठती है—वे तो हवालात में हैं, मुकदमा है उनपर······

—मुकदमा ?—अभया जरा चौककर बोली—मुकदमा क्यों है, चंपी, हवालात में कब गया ? कैसे गया ? तो फिर तू अकेली ही रहती होगी ?

—हाँ, जैसे तब अकेली थी, वैसे अब अकेली हूँ !—इस बार चंपी कुछ अपने-आपमें दृढ़-जैसी जान पड़ी और फिर बोली—ऐसे आदमी हवालात में न जायँगे तो कहाँ जायँगे ? उनके लिए दूसरी जगह और है ही कौन ?

—मगर तू पहले उसे जानती थी न, चंपी ?

—जानती होती तो ऐसा दिन काहे को आता, अभया बहन !

चंपी इस बार किशोरी के रूप में नहीं—युवती-जैसी बोल उठी—जानकर भी तो मैं कुछ कर नहीं सकती थी ! मामा जो पीछे पड़े हुए थे ! आखिर उनका पेट जो भरना था, सो मुझे बेचकर भरा···

अभया ने पाया कि चंपी की आकृति पर रोष की लालिमा छाई हुई है, उसमें उदासीनता नहीं, दर्प की हल्की-सी आभा है ? अभया कुछ क्षण तक उसकी ओर देखती रही, फिर बोल उठी—तेरे दुर्भाग्य पर मुझे बहुत दुःख है, चंपी ! और उस नरपिशाच तेरे मामा पर रंज ! और मैं कह नहीं सकती कि तेरी जिंदगी किस तरह ऐसे दुराचारग्रस्त व्यक्ति के साथ कटेगी !

अभया की बातों से चंपी प्रसन्न न हो सकी, शायद उसे ये सब बातें रुची-जैसी प्रतीत न हुईं ! वह कुछ क्षणों तक सिर झुकाये जमीन की ओर देखती रही, फिर बोल उठी—जिंदगी चाहे जैसे कटे, उसके

लिए मुझे दुःख नहीं है, अभया बहन; मगर मुझे तो दुख है कि हवालात में वे दिन कैसे काटते होंगे! वे शराब के बिना किस तरह छटपटा-छटपटाकर रहते होंगे—यह तो मैं जानती हूँ, अभया बहन!······

चंपी बोलकर चुप हो रही, वह जाने और कुछ कहा चाहती थी, जिसे वह कह नहीं पा रही; फिर भी उसे तो कहना ही पड़ेगा। वह अभया को जानती है और वह यह भी जानती है कि अभया की मर्यादा कैसी है और कितनी है······इसी तरह कुछ क्षण तक उधेड़-बुन में पड़ी चंपी आप-ही-आप उसकी ओर देखती हुई बोल उठी—क्या उनके छुडाने का कोई परबंध नहीं हो सकता, अभया बहन? तुम अगर चाहोगी तो ···

—ओह, मैं चाहूँगी!—अभया कठोर होकर बोल उठी—तू पागल हो गई है; जभी तू ऐसा कहती है! शराबियों और जुआड़ियों को बचाना दया नहीं—खुद एक जुर्म है, तुझे यह जानना चाहिए चंपी! मैं ऐसो को नहीं चाहता—हर्गिज नहीं चाहता। ये लोग समाज के कलंक होते हैं, देश को तबाह और बर्बाद करते हैं! और तेरा कोई काम हो तो कह, उसे कर सकती हूँ, तुझे खाने-पीने की तकलीफ हो तो कह, उसे दूर किया जा सकता है; मगर मुझे ऐसों पर दया नहीं—घृणा आती है······

चंपी का उत्साह अपनी जगह पड़ आकर ठढा पड़ गया। उसे लगा कि जैसे वह स्वयं गलकर पानी-पानी हो उठी है। वह सिर झुकाए पड़ी थी, उसके कानों में अभया के वितृष्णामूलक वे शब्द अब भी प्रतिध्वनित हो रहे थे। वह मन-ही-मन खिन्न हो सोचने लगी कि क्यों उसने ऐसी याञ्चना की उससे? वह और भी सोचने लगी—अभया से अपनी बातों के लिए, जो जानकर या अजान में कही गई है—किस तरह वह क्षमा की प्राथना करे! मगर वह इतना कुछ सोचकर भी कुछ कह नहीं सकी। अभया भी मन-ही-मन चंपी के मन की विह्वलता-विकलता का अनुभव कर रही थी जिसे वह प्रकाश

करते हुए बोल उठी—क्यों चंपी, तेरा खाना-पीना किस तरह चलता है ? सच बता, किस तरह चल रहा है ?

चंपी इस प्रश्न को सुनकर उत्सुक न हो सकी, वह सत्यता को अस्पष्ट रखती हुई बोली—खैर, यह तो तुम्हारी दया है, अभया बहन ! मगर मैं तो तुमसे माफी चाहती हूँ—मुझे तुमसे वैसी बातें न कहनी चाहिए थीं !

चंपी कुछ क्षण तक चुप रही, फिर आप-ही-आप बोली—जी ठिकाने नहीं है, इसीसे मैंने तुम्हारे दिल को दुखाया, अभया बहन ! जब मन ही कानू में नहीं तो फिर ऐसी बात के लिए तुम दुख न मानोगी। और घृणा की जो बात कहती हो सो तो सिर्फ तुम्हीं नहीं कहतीं—जितने भी मिलते हैं, सभी तो उनसे घृणा की ही बात करते हैं; मगर एक मैं हूँ जो उनसे घृणा भी नहीं कर सकती, उन्हें प्यार भी नहीं करती······कुछ भी नहीं कर सकती······कुछ भी करने के लिए जी नहीं रह गया है, मगर एक बार उन्हे जेल से बाहर निकाल पाती···पाती तो जरूर उनसे कहती कि देखो, अब तो ऐसा न करो······

अभया चंपी की बातो पर गंभीरतापूर्वक कुछ क्षणतक सोचती रही, उसे लगा कि चंपी का हृदय कितना सरल, कितना निष्कपट और कितना पवित्र है ! मगर अभया उसकी बातों के समर्थन या खंडन में कुछ न कहकर बोल उठती है—तू मेरे साथ चलेगी मेरे घर तक चंपी !

—नहीं, चल नहीं सकूँगी !—चंपी अप्रसन्न-जैसी ही बोली।

—क्यों, घर में बहुत काम करना पड़ता है ?

—काम ?—चंपी के ओठ हिले और वह फीकी हँसी लिये हुए बोली—आखिर घर जो ठहरा, अभया बहन, काम-काज तो लगा ही रहता है, इससे छुट्टी कब मिल सकती है !

चंपी इतनी ज्यादा गृहिणी हो उठेगी—अभया उसकी बातों

से हँसी और हँसते-हँसते ही बोली—देखती हूँ, घर से ज्यादा स्नेह हो गया है, क्यों री चंपी, ठीक है न ?

—स्नेह न भी हो—चंपी गम्भीर मुद्रा में ही बोली—मैं नेह-स्नेह कुछ नहीं जानती; मगर जो घर अपना है, वह तो दूसरे पर छोड़ा नहीं जा सकता ! और मैं हूँ, जो देख रही हूँ, दूसरा यहाँ कौन बैठा है जो उसकी देखभाल करेगा। चलो न अभया बहन, मेरे घर पर...वह जो दीख रहा है परले सिरे पर...चलो ना !

अभया इस बार स्वयं अपने-आपमें लघु हो उठी ! अभया चपी को जानती है, और जानती है उसके सरल-निष्कपट हृदय को भी; पर आज अभया को स्वयं उत्साह नहीं है कि वह चंपी की अभ्यर्थना स्वीकार करे। जो अभया अपरिचित के घर बिना बुलाए जा सकती है, जो अभया दूसरे के घर माँगकर खाने में भी नहीं लजाती, वही अभया परिचित ही नहीं—जिसे वह एक दिन स्नेह कर चुकी है, उस चपी के घर, उससे आमंत्रित-अभ्यर्थित होकर भी जाने में कुंठा का अनुभव कर रही है ! मगर वह अपनी कुंठा को भीतर-ही-भीतर दबाकर, बाहर से मुस्कराती हुई बोल उठती है—अभी तो मुझे जाने ही दे, चंपी, किसी दिन आ जाऊँगी, अभी तो जाने ही दे।

और अभया अब रुकी हुई नहीं रह सकती, रास्ते पर बढ़ चलती है। चंपी खड़ी-खड़ी कुछ क्षणतक उसकी ओर देखती रह जाती है, फिर एक लंबी साँस छोड़कर अपने घर की ओर लौट पड़ती है।

त्रयोदश परिच्छेद

अभया चंपी से मिलकर चल तो पड़ी, पर वह प्रसन्न नहीं है, रह-रहकर उसकी याद उसे हो आती है, आती है याद उसकी वे बातें जो उसने अभया से कही हैं। उनमें पाती है कि चंपी में हृदय तो है, पर विवेक का स्थान भी उसमें कुछ कम नहीं है। इतनी-सी उम्र में चंपी कितनी विवेकशील हो उठी है—इसपर जब वह विचार करती है तब उसका हृदय भी उसकी ओर अधिक-अधिक उल्लसित और दयार्द्र हो उठता है; पर ज्योंही वह पाती है कि चपी-जैसी चंद्र को जिस राहु ने ग्रसित कर रखा है, वह सर्वग्रासी राहु तिल-तिल कर उसे अस्तित्व-विहीन किये बिना दम न लेगा, त्योंही उसका वह उल्लास वहीं शेष हो जाता है, पर उसे सूझ नहीं पड़ती कि उसे अब क्या करना चाहिए। वह इसी अंतर्द्वन्द्व को लेकर रास्ते पर आगे बढ़ जाती है।

अभया जब घर आ पहुँचती है तो देखती है कि दरवाजे के बाहर कार खड़ी है। इधर जब से वह नारी-जागरण में जुट पड़ी है तब से उसे इतना अवकाश ही नहीं मिलता कि वह आनंदकौशल से मिले, जिस आनंद की ओर उसके मन का झुकाव रह चुका है; पर जैसे ही वह कमरे की ओर बढ़ी वैसे ही उसने पाया कि डा० स्वरूप की मजलिस खूब जमी है, जहाँ गृहपति के सिवा राजा बाबू हैं, आनंद हैं और आनंद के सहकर्मी और दो-एक उच्च

पदाधिकारी सज्जन हैं, और किसी गम्भीर विषय को लेकर चर्चा छिड़ी हुई है। मगर अभया के प्रवेश करते ही सबका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो उठता है, सभी जरा अस्त-व्यस्त-जैसे दीख पड़ने लगते हैं, कुछ क्षण के लिए चर्चा रुक जाती है, आनन्द कुछ बोलना ही चाहता है कि डा० स्वरूप स्वयं बोल उठते हैं—तुम आ गई अभय, अच्छा ही हुआ। आनन्द बड़ी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा में थे।

आनन्द अपने-आपमें जरा संयत हो पड़ता है और डा० स्वरूप की बातों के समर्थन में वह बोल उठता है—प्रतीक्षा तो बहुत की; पर कभी ऐसा सौभाग्य न हुआ कि आपसे भेंट हो सके। आज भी मुझे उम्मीद न थी कि आपको मैं पा सकूँगा! आप तो काम करना जानती हैं और यह भी जानती हैं, कि किस तरह काम को आगे बढ़ाया जा सकता है, उस समय आपकी दृष्टि में केवल काम रह जाता है और..........

—यह तो आप अपने मन का इजहार दे रहे हैं!—अभया किंचित् मुस्कराती हुई बोली—मैं पूछती हूँ, लोगों को अपनी बात ही अधिक क्यों सुहाती हैं? क्यों नहीं वह दूसरी दिशा की ओर भी देखना पसन्द करते हैं?

अभया बोलकर अपने उत्तर के लिए खड़ी न रही, वह बाहर से आई थी, उसे कपड़े बदलने थे, इसलिए वह भीतर की ओर दौड़ पड़ी। वातावरण थोड़ी देर क्षुब्ध बना रहा, उत्तर में आनन्द जो कुछ कहना चाहता था, वह कह नहीं पाया; पर न कह पाकर वह भीतर-भीतर महसूस करता रहा कि अभया ने जो बात अभी कही है, वह साधारण स्थिति में नहीं कही गई है, उसमें प्रच्छन्न एक व्यंग है जिसमें तिक्तता ही अधिक है। अभया इतनी तिक्त क्यों हो उठी है—वह स्वयं समझ नहीं पा रहा है।

मगर क्षुब्ध वातावरण को स्वस्थ करने के विचार से डा० स्वरूप शांत-मुद्रा में बोल उठे—मनुष्य जबतक अचेतन पड़ा रहता है, तबतक वह अपने को पहचान नहीं पाता। पर जैसे ही उसमें सचेतना आ

जाती है, वैसे ही वह पाता है कि उसकी कार्यकरी शक्ति उसे भीतर-भीतर उत्साहित कर रही है, प्रेरित कर रही है उस दिशा की ओर जिधर उसकी पूर्व से प्रवृत्ति रही है, वह अपनी प्रवृत्ति को मूर्त्त रूप में परिवर्त्तित करने के लिए चंचल-विभोर हो उठता है। अभया में जो चंचलता आ गई है, वह और कुछ नहीं, उसकी कार्यकरी शक्ति उसे दूसरी दिशा की ओर देखने नहीं देती और इस विचार से वह क्षम्य है, आनन्द !

—ठीक कहते हैं डाक्टर भाई !—राजा बाबू ने डा० स्वरूप के समर्थन में, जरा उझककर बैठते हुए कहा—अभया किस धातु की बनी है, मैं नहीं कह सकता; मगर मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि वह जितनी ही कर्मठ है उतनी ही बोलने में भी प्रखर है। उसके सामने विपक्षियों का तर्क टिका हुआ नहीं रह सकता। खुद मैं अपनी बात कहता हूँ आनन्द बाबू—इस बार राजा बाबू आनन्द की ओर मुखातिब होकर बोल उठे—मैं नहीं चाहता था कि गाँव की स्त्रियाँ पर्दे से बाहर हों, वे उन कामों की ओर झुकें जिनसे हमारा बँधा हुआ समाज छिन्न-भिन्न हो उठे। क्योंकि मैं जानता था कि समाज आज का बना नहीं, सनातन के प्रयत्न से जिसका अस्तित्व तैयार हो सका है, वह समय की लहरों में बह जाय; मगर अभया के तर्क के सामने मेरी एक न चली ! उसने मेरे सामने ऐसे-ऐसे प्रश्न रखे जिनका उत्तर मेरे पास न था; मैंने हार खाई, पर मुझे दुख न हुआ। क्योंकि केवल तर्क से ही वह मुझे उतना संतुष्ट न कर सकी जितना उसके विलक्षण कार्य-कौशल से मैं प्रभावित हुआ। फिर मैं उसके रास्ते में रोड़े बनकर टिक न सका, सच तो यह कि मेरा रोड़े के रूप में टिकना संभव था भी नहीं ! जो आँधी बनकर आई है, उसे तो राह देनी ही होगी। अगर उस आँधी को कोई रोकना चाहे तो आँधी का नुकसान तो क्या होगा—स्वयं उसके संचित धक्के से अपने-आपको ही वह विनष्ट कर देगा ! वैसी दशा में बुद्धिमानी की बात तो यही हो सकती है कि आँधी को अपने रूप में बहने दे······उसका अपनी गति में बह

जाना ही अच्छा ! और मुझे खुशी है कि जो काम महीनों क्या—वर्षों में भी नहीं हो पाता, वह कुछ चंद महीनों में, अपनी आँखों देख रहा हूँ। क्या यह शुभ लक्षण नहीं आनंद बाबू ?

—क्यों नहीं, क्यों नहीं !—आनंद उत्तर में बोल उठा; पर वह स्वयं बोलकर भी समझ न सका कि उसका उत्तर कितना उसके हृदय की ओर से है और कितना केवल उत्तर देने के खयाल से ही कहा गया है।

राजा बाबू कुछ क्षण चुप रहे, फिर बोल उठे—आज का युग कुछ और है, और कल का कुछ और था ! जो युग अतीत हो चुका है, वह चाहे सुन्दर हो या असुन्दर, स्वस्थ हो वा अस्वस्थ, उसको लेकर सोचना—केवल सोचते रहना ही—आज के युग के लिए उचित नहीं; मगर आज के युग का लक्ष्य यह जरूर रहना चाहिए कि कल के युग की कमजोरियों को, बुराइयों को अपने स्थान पर ही छोड़कर, केवल अच्छाइयो को, यदि वह ग्रहण करना चाहे तो, ग्रहण कर ले। ग्रहण करना उसे लाभ ही देगा, कुछ हानि नहीं; मगर वह अपने लक्ष्य को न भूले और उसे केवल हृदय का एक उच्छ्वास, एक लहर या एक करेंट समझकर ही वहीं रुका न रह जाय, बल्कि वह अपनी गति पर बढ़ता चले—बढ़ता चले और इस तरह जब अपने लक्ष्य तक पहुँच जाय तब वह विश्राम ले ! अभया बेटी इस युग की एक प्रतीक है···और मैं निष्पक्ष और निष्कपट भाव से, इस सत्य को प्रकट करने में कुछ कुंठित नहीं हूँ कि एक दिन जिस अभया के नाम से मैं रुद्र हो उठा था, एक दिन जिसके चलते हमारे डाक्टर भाई स्वरूप से मेरी वितृष्णा ही नहीं, उपेक्षा के भाव थे, जिन्हें मैं ढोंगी, कपटाचारी और जाने क्या-क्या नहीं समझता था, उन्हीं को एक दिन मृणाल के विवाहोपलक्ष में आमंत्रित करने के लिए मैं जब यहाँ आ पहुँचा और पहुँचकर जब पहलेपहल मैंने अभया बेटी को देख पाया तब सारी उपेक्षाओं, वितृष्णाओं के रहते हुए भी जाने क्यों, मैं कह नहीं सकता क्यों, मैं

उससे भी कह बैठा—मैं तुम्हें स्वयं आमंत्रित करने आया हूँ, अभया बेटी, स्वयं आया हूँ ···और उस क्षण मेरे आमत्रण को उसने जिस रूप में स्वीकार कर लिया, वह भी मुझे अक्षर-अक्षर याद है। खैर, अभया गई मेरे घर और गई एक प्रभाव, एक तेज, एक प्रकाश लेकर···आज मैं पाता हूँ कि, वह प्रकाश न केवल मेरी हवेली को ही समुज्ज्वल बना रहा है, वह तेज केवल मेरे परिवार तक ही सीमित नही है और वह प्रभाव मैं स्वय अपने-आपमें हीं काम करते हुए नहीं पा रहा हूँ, बल्कि आज उससे मेरे दिहात की दिशा-विदिशाएँ स्वय उद्भासित और प्रभावित हो उठी हैं। मगर अभया बेटी को पाकर जहाँ मैं इतना प्रसन्न हूँ, वहाँ मुझे भय भी कुछ कम नहीं है और वह भय इसलिए है कि कहीं इस शक्ति-प्रवाह में व्याघात उत्पन्न न हो जाय। क्योंकि व्याघात पाकर जो घूर्णावर्त्त उत्पन्न होगा—वह सहज नहीं, बड़ा ही मर्मान्तक होगा······

राजा बाबू घूर्णावर्त की कल्पना से आप-ही-आप जैसे भयभीत हो उठे; उनसे आगे न बोला गया। वह स्वय मौन होकर अखबार के पन्ने उलटने-पलटने लगे।

राजा बाबू ने जो कुछ कहा है, उसमे गुरुता कुछ कम नहीं है। डा० स्वरूप ने उनकी बातें सुनीं और सुनीं आनंद और दूसरे ने भी; पर सभी ने उन बातों को अपने-अपने दृष्टि-कोण से ही देखा। डा० स्वरूप ने पाया कि राजा बाबू प्रकृति के उदार और स्नेह-शील हैं और यह इनकी उदारता ही है कि अभया को वे ऐसा समझ रहे हैं; मगर उनकी स्पष्ट, निष्कपट एवं उदार वचनों से न तो आनंद को प्रसन्नता हो सकी और न उनके साथी-सहकर्म्मियों को। साथियों ने समझा कि राजा बाबू साधारण-सी बात को अतिरंजित करना जानते हैं, उनके अतिरंजन में सत्य कम, मनोरंजन ही अधिक है। और आनंद को लगा जैसे अभया आनंद की एक चुनौती मात्र है, एक विद्रोह है जो उस वातावरण में स्वयं मुखरित हो उठा है ?

मगर वह घूर्णावर्त्त ?

वास्तव में वह घूर्णावर्त्त ही है जिसने डा० स्वरूप के अंतस्तल को आलोड़ित कर छोड़ा है। वहाँ पर पितृ-हृदय का स्नेह स्वयं आँखों को बोझिल बना रहा है और इस रूप में आकर डा० स्वरूप बोल उठते हैं—घूर्णावर्त्त का खयाल मुझे भी कुछ कम व्यथित नहीं करता, राजा बाबू, मगर मैं क्या करूँ और कुछ कर भी क्या सकता हूँ जब मैं पाता हूँ कि मैं स्वयं उस शक्ति के सामने कितना लघु हूँ। पर, मुझे भय नहीं है और इसलिए कि मै जानता हूँ कि भय को भय के रूप में स्वीकार करना स्वयं मृत्यु का एक आह्वान होगा, जो मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं। जानता हूँ, जो होना है, वह होकर रहेगा, उसे न आप सँभाल सकते हैं और न मैं सँभाल सकता हूँ और न कोई अन्य! मनुष्य इसी शक्ति के सामने जो पंगु है! वह अदृश्य शक्ति""वह दैवी विधान·········

इस बार आनंद आप-से-आप हँस पड़ा और हँसते हुए ही बोला—दैवी-विधान कहकर इसे छोड़ा नहीं जा सकता है डाक्टर साहब, जब हम खुद पाते हैं कि किसीने आग में पकने के लिए अपनी उँगलियाँ छोड़ रखी हैं। इसे अदृश्य शक्ति या दैवी विधान कहना दैवी विधान का अपमान करना होगा।

डा० स्वरूप कुछ बोले नहीं, केवल हँसकर रह गये; मगर राजा बाबू हँस न सके, पर बोल उठे—अपमान नहीं, यही सत्य है आनंद बाबू! आपलोग वैज्ञानिक सत्य को ही सत्य मानते हैं, इसके सिवा दूसरा सत्य आपलोगों की दृष्टि में न आता है, न जँचता है; पर वह सत्य अपनी जगह पर इतना स्पष्ट है और इतना प्रत्यक्ष है कि वहाँ वैज्ञानिक सत्य स्वयं सिकुड़कर—अस्तित्व खोकर रह जाता है जिसकी ओर हमारे डाक्टर भाई का लक्ष्य है··········

—मगर वैज्ञानिक सत्य को इनकार नहीं किया जा सकता—आनंद के सहकर्मी में से एक बोल उठा।

—मैं इनकार नहीं, स्वीकार ही करता हूँ प्रफुल्ल बाबू—राजा बाबू हँसकर बोले—मगर उसकी सीमा तक ही, फिर भी सीमा से जो

बाहर है—सीमाहीन है—असीम है, वहाँ वैज्ञानिकों का विज्ञान स्वय क्षुब्ध होकर रह जाता है, मैं तो उसकी बात कह रहा था···

—मगर जो स्वयं असीम है, उससे मेरा काम जो नहीं चलता।

—और इसलिए क्या उसका अस्तित्व हम स्वीकार नहीं कर सकते?

—स्वीकार क्यों नहीं करता?

—तब यह भी स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उसकी सत्ता के सामने सभी सत्ताएँ नगण्य हैं······

इसी समय अभया नहा-धोकर अपने साफ कपड़ों में सजती-सँवरती चाय की ट्रे हाथों में थामे आकर टेबिल पर रखते हुए बोली—क्यों, चाचाजी, ऐसी-ऐसी बातें बोलकर क्यों अपना सिर गर्म करते हैं और क्यों दूसरों का भी?

इस बार राजा बाबू हँस पड़े और हँसते हुए बोले—तुम नहीं जानतीं अभया बेटी, ये बाते किस तरह चल पड़ीं?

—जानती कैसे नहीं चाचाजी!—अभया ने हँसते हुए ही कहा—बूढ़े-बूढ़े में ही ये बातें ठीक बैठती हैं; मगर जहाँ आनंद बाबू हैं, आनंद बाबू-जैसे और हैं, उनके बीच अगर ऐसी बाते न कही जायँ तो क्या पेट का अन्न पचे नहीं? पेट का अन्न पचाने के लिए और बहुत-सी तरकीबें हो सकती हैं, वे तरकीबें क्या होंगी—मैं उन्हें बताऊँ चाचाजी, मानेंगे?

—तरकीबें तो बहुत होंगी, यह मै मानता हूँ—राजा बाबू ने हँसते हुए ही कहा—मगर जो तुम बताना चाहती हो, वे क्या हमलोगों के लिए उपयुक्त होंगी, अभया बेटी? तुम कहोगी—चर्खा चलाओ, गाँवों में फेरी लगाओ, न हो तो और कोई काम करो—यही न? मगर यह सब हमारे लिए नहीं है। हमें तो बैठे-बैठे अब आराम ही करने दो, काम बहुत हो चुके हैं, अब जो हैं, वे तो तुम लोगों के लिए ही हैं। क्यों ठीक है न?

अभया ने चाय तैयार की और एक-एक प्याला सभी की ओर बढ़ाया और राजा बाबू के हाथ पर देती हुई बोली—देख लीजिए, चाचाजी, चीनी ठीक पडी है न? क्यों और चाहिए? आनंद बाबू तो बोलेंगे नहीं, उन्हें तो जो दे दीजिए, सभी ठीक ही बतलाएँगे!

—आनंद बाबू ऐसा नहीं हैं अभया बेटी,—राजा बाबू ने हँसकर ही कहा—क्यों आनंद बाबू, अभया बेटी क्या कह रही हैं?

इस बार आनंद उत्सुक हो उठा, फिर प्याले से एक शिप लगाकर बोला—अभया देवी ठीक कह रही हैं राजा बाबू! मगर वह यह कहना भूल जाती हैं कि स्वाद क्या है और आवश्यकता क्या है और दोनो का सामजस्य क्या है। आवश्यकता के सामने स्वाद का कुछ स्थान नहीं रह जाता······

और तभी तो आपको स्वाद की जरूरत भी नहीं रह जाती!—अभया आप-ही-आप हँस पड़ती है, फिर बोल उठती है—क्या आप कृपा कर यह बता सकेंगे कि अभी आप चाय आवश्यकता समझकर पी रहे हैं, या स्वाद के लिए? या और···

—आवश्यकता के लिए भी और स्वाद के लिए भी।

—तब तो आप बतलाएँगे ही कि यह ठीक उतरी है वा नहीं? मगर क्या आप सच-सच बतलाएँगे भी?

ऐसी हालत में सच का झूठ हो बतलाना कभी-कभी ठीक होता है!—आनंद हँसते हुए ही बोला—मगर मैं ऐसा न कहूँगा, मुझे तो थोड़ी चीनी चाहिए ही। जानता हूँ, आजकल आप व्यस्त जो हो पड़ी हैं, तभी यह भूल हो पड़ी।

—भूल!—अभया चम्मच भर चीनी बढ़ाते हुए बोली—भूल ही कहना ठीक होगा। हाँ, मैंने भूल ही की थी और मैं भूल यह कर बैठी कि मैंने यह नहीं जाना कि आजकल आप तिक्त जो हो उठे हैं, तीते मुँह में मिठास कुछ कम मालूम पड़ती है—यह स्वाभा-

विक ही है। क्यों प्रफुल्ल बाबू, आपको चाय के लिए चीनी तो नहीं चाहिए ?

—नहीं, ठीक है, धन्यवाद !

—और चाचाजी, आपको ?

—नहीं, अभया बेटी, मुझे तो कड़ी ही ज्यादा पसद है।

—और आपको ?—प्रफुल्ल के पास बेठे हुए सज्जन से पूछा।

—नहीं-नहीं, बहुत है, धन्यवाद !—उस युवक ने कहा।

इस बार अभया खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही राजा बाबू की ओर देखकर बोली—देखा न, चाचाजी, अभी मैंने तीते मुँह की बात कही थी। चाय का स्वाद ठीक-ठीक उतरा है या नहीं—यह मैं नहीं कह सकती; मगर जब इतने व्यक्तियों को वह अच्छी लगी तब एक आनंद बाबू ही ऐसे निकले जिन्हे चीनी की जरूरत महसूस हुई। अब आपलोग स्वयं सोच लीजिए, इनमें कितनी सच्चाई और कितनी······

इसपर सब-के-सब हँस पड़े और उसी हँसी में डा० स्वरूप बोल उठे—अभया और आनंद की बातों में पड़ना हमें मुनासिब नहीं राजा भाई ! ये दोनो जितने ही अभिन्न हैं, उतने ही एक दूसरे के प्रति कठोर भी ! मगर अभय, इस तरह आनंद को तंग न किया करो, आनंद सूधे हैं, तनकर जवाब नहीं देते; मगर जब कभी जवाब देंगे तो तुम तंग हो उठोगी, अभय !

डा० स्वरूप को आनंद के प्रति एक प्रकार का स्नेह है जो पिता का पुत्र के प्रति और गुरु का शिष्य के प्रति होता है। उन्हें परिस्थिति का भी ज्ञान है, उस परिस्थिति का जो अभया के वार्तालाप से उत्पन्न हो चला है। आनंद उस परिस्थिति से स्वयं सक्षुब्ध हो उठा है—यह भी डा० स्वरूप से छिपा नहीं है और उनसे यह भी छिपा नहीं कि अभया क्यों उसे इस तरह मूर्ख बना रही है। मगर वे यह नहीं चाहते। क्योंकि वे जानते हैं कि व्यंग जबतक रसात्मक है तबतक वह आनंद का कारण है और ज्योंही उसमें उपेक्षा आई,

त्यों ही वह कष्टकर हो उठता है और किसी को किसी भी तरह क्लेश पहुँचाना कल्याणकारक नहीं। तभी डाक्टर स्वरूप आनंद की ओर ही मुखातिब होकर बोले—क्यों आनंद बाबू, तुम इन दिनों इधर आ भी न रहे थे, कुछ ज्यादा दिन पर आये हो, मुझे लगता है कि यही वजह है जो अभया इस तरह तुमसे कह रही है; क्यों अभय, बात यही है न ? या और कुछ……

—बात यह नहीं है डाक्टर साहब—आनद इस बार सतर्क होकर ही बोल उठा, लगा जैसे संचित विक्षोभ फूटकर बाहर निकलना चाहता हो—बात कुछ दूसरी है जिसे कहकर अभया देवी को मैं दुखाना नहीं चाहता !

—मगर अभया देवी आपको अभय प्रदान करती है—अभया व्यंगात्मक हँसी हँसते हुए बोली—अभया का हृदय इतना कच्चा नहीं कि आपकी बातें उसे छिन्न-भिन्न कर देंगी ! कहिए, चुप क्यों हो गये ?

—म फ कीजिए, व्यर्थ की बातें बढ़ाना मैं नहीं चाहता।—आनंद स्वयं बोल उठा।

यह आपकी बड़ी कृपा है !—अभया इस बार हँसी और हँसती हुई बोली—मगर जो बात बोलने-बोलने को होकर भी न बोली जाय, वह भीतर सिमिटकर पत्थर जैसी कड़ी हो उठती है। आनद बाबू, आप इस बात को नहीं जानते, मैं जानती हूँ कि वह पत्थर पेट की ततुओं को कितना नुकसान पहुँचाता है…

लेकिन उस नुकसानी के लिए मुझे ज्यादा चिंता नहीं, आप तो डाक्टर हैं ही—आनंद इस बार हँसते हुए बोलकर बाहर जाने के लिए उठ पड़ा।

-क्यों, जल्दी क्या है आनंद बाबू ?—डा० स्वरूप अस्तव्यस्त होकर बोल उठे।

—जल्दी ही है डाक्टर साहब, जाना ही ठीक होगा।

—हाँ, जाना ही ठीक होगा, बाबूजी—अभया हँसती हुई बोल उठी—रोकिए नहीं, रोकने पर आज वे रुकेंगे भी तो नहीं !

—जैसा आप समझ रही हैं, यह बिलकुल गलत है—आनंद खड़ा-खड़ा ही बोला—मगर आप रोकना कब चाहती हैं ?

—मगर मेरे चाहने से आपका ज्यादा उपकार नहीं, अपकार ही अधिक होगा, इतना भर तो मैं कही सकती हूँ; फिर जान-बूझकर अपकार मैं क्यों करूँ ?

—खैर, धन्यवाद ! इतना तो जाना कि आपको मेरे अपकार का ध्यान भी है।

—हाँ-हाँ, जरूर ध्यान है, आनंद बाबू—अभया किंचित् रुष्ट होकर ही बोली—ध्यान न होने पर मैं आपसे कहती ही क्यों ?

इस बार सब-के-सब उठ पड़े। आनंद और उनके साथियों ने डा० स्वरूप के प्रति नमस्कार-ज्ञापन किया और निकल पड़े। अभया उन्हें कार तक पहुँचाने आई, पर वहाँ तक आकर भी आज वह आनंद बाबू की प्रसन्नता का कारण न बन सकी। कार अपनी दिशा में चल पड़ी।

चतुर्दश परिच्छेद

आनंद के चले जाने के बाद अभया लौटकर दालान में आई। डा० स्वरूप अकेले आरामकुर्सी पर लेटे हुए थे, पर उनकी मुख-मुद्रा स्वयं बता रही थी कि वे कुछ विषम गुत्थियों को सुलझाने में व्यस्त-जैसे हो पड़े हैं, फिर भी अभया के वहाँ पहुँचते ही डा० स्वरूप कुछ प्रसन्न-से दीखे और उसी रूप में बोल उठे—व्रजेंद्र को इधर बहुत दिनों से न देखा, अभय, वह क्या आजकल यहाँ······

—यहाँ वे आजकल नहीं हैं, बाबूजी, मगर वे जल्द लौटकर आनेवाले ही हैं, संभव है, वे आज या कल आ जायँगे। सुना है, इधर कुछ लीडर आनेवाले हैं, उनके व्याख्यानों का आयोजन करना है······

मगर डा० स्वरूप इन समाचारों से उल्लसित न हो सके, वे केवल 'हूँ'—बोलकर चुप हो रहे। कुछ क्षण के बाद आप ही आप बोल उठे—मगर मेरा खयाल है, वे सब इस समय आ न सकेंगे, अभय! इस समय, मुझे लगता है, विश्वव्यापी युद्ध से देश के वातावरण में जो धूमिलता आ गई है, प्रच्छन्न रूप में जो शिथिलता आ गई है, वह प्रत्यक्ष बता रही है कि ये आसार अच्छे नहीं हैं। यह तो प्रचंड आँधी आने का पूर्वरूप-सूचक है! युद्ध-जनित परिस्थितियों से भारत की आत्मा संक्षुब्ध हो उठी है और यह सक्षुब्ध आत्मा अपने-आपमें स्थिर नहीं

हो सकती, शांत नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में वह कब क्या कर बैठे, निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, कुछ सोचा भी नहीं जा सकता······

अभया अबतक अपने पिता के पास टेबिल के सहारे खड़ी थी, पर वह खड़ी न रह सकी, टेबिल के सिरे पर जरा उझककर बैठते हुए बोल उठी—मगर इन सब बातों को लेकर इस तरह सोचने से लाभ ही क्या बाबूजी! होने दो जेसा कुछ होगा। उसे तो हम-आप सॅभाल नही सकते ·····

—बेशक हम-आप इसे नहीं सँभाल सकते!—डा० स्वरूप ने एक बार अपनी आँखें खोलीं, अभया की ओर देखा, फिर उन्होंने आँखें मूँदीं और बोल उठे—काल की गति किसके रोके रुक सकी है, अभय? मगर आनेवाला काल साधारण नहीं, उग्र होगा, प्रचंड होगा और ऐसा होगा जिसकी कल्पना नही की जा सकती···तुम समझ सकती हो, यह सब फिजूल की बातें हैं—शायद ऐसा तुम्हारा कहना ठीक भी हो सकता है; मगर देश में जो इतनी निस्तब्धता छा गई है, वह क्या सदैव ऐसी बनी रह सकती है भला? जब-जब घोर निस्तब्धता छाई है तब-तब महाकाल ने करवट बदली है; यह भूचाल का लक्षण है, यह बड़े विस्फोटक के फटने का चिह्न है··· समझती हो, अभय, यह विस्फोटक कितना भयंकर होगा! ओह, कितना भयंकर!!······इसका अन्दाज हमारी स्थूल बुद्धि नहीं लगा सकती···

डा० स्वरूप अपनी गति में बोलकर चुप हो रहे, मगर इन बातों की ओर अभया झुकी-जैसी न दीख पड़ी। अभया जिस धातु की बनी है उसे ये सब बातें हिला नहीं सकतीं। इसलिए वह उछलकर खड़ी होती हुई बोली—अन्दाज न लगना ही अच्छा है बाबूजी! व्यर्थ की बातों का अन्दाज ही क्या?

अभया अब स्थिर न रह सकी, वह हँसती हुई बोलकर अपने कमरे की ओर दौड़ पड़ी। डा० स्वरूप ने एक बार अभया की ओर

देखा और आप-ही-आप बोल उठे—मगर यह यह व्यर्थ की बातें नहीं हैं अभय ! काश तुम समझ पा सकती !

अभया भोजन के बाद विश्राम करने को जब पलंग पर आ लेटी तब वह निश्चिन्त होकर लेट न सकी। उसकी स्मृति में बहुत-सी बातों का समूह एक साथ प्रतिभासित हो उठा। उसे एक बार चंपी की आकृति और उसकी दुरवस्था की चिंता हो आई, वहीं वह आनन्द के साथ आज की की हुई बातो की समस्या में उलझ पड़ी और उसके साथ-साथ अन्यान्य बातों में भी; उसके बाद उसकी दृष्टि के सामने व्रजेन्द्र का रूप खिच आया जो अपने त्याग-तपस्या और संकल्प की साधना में जाने कहाँ-कहाँ का अलख जगाए फिरता है। जिसे, लगता है, न खाने की चिता है, न आराम की कुछ परवा ! न कोई ख्विश, न कोई हौसला, न आकांक्षा, न अपेक्षा ! उसके सामने जो कुछ है, वह उसका कर्त्तव्य है—वह कर्त्तव्य जो उसकी आत्मा की एकांत पुकार है···और तभी उसे याद पड़ती है, अपने पिता की बात—वह विस्फोटक की बात, जिसे सुनकर वह उपेक्षाभरी हँसी हँस चुकी है, फिर भी वह विस्फोटक स्वयं उसके दृष्टि-पट पर अपनी भयंकरता की छाप डाले बैठा है, जिससे वह कठोर-कर्मा अभया स्वयं आप भी कुछ कम भयभीत नहीं है। अभया बातों में जाने कब तक उलझी-उलझी-सी पडी रही; मगर पड़ी न रह सकी। दिन-भर के परिश्रम-जनित अवसाद से धीरे-धीरे उसकी आँखें झपने लगीं और झपते-झपते ही उसे गहरी नींद हो आई······

मगर जैसे ही भोर हुआ, वैसे ही बाहर से किसी ने पुकारा—अभया देवी ! तब वह घोर निद्रा में पडी थी, मगर बाहर से उसके नाम की पुकार से उसे लगा कि कोई प्रतीक्षा में बाहर खड़ा है। वह सजग हो उठ बैठी—खडी हुई, उसने कपड़े सँभाले और बाहर की ओर निकल पडी। उसने आकर पाया कि पुकारनेवाला और कोई नहीं, स्वयं व्रजेन्द्र हैं और उस व्रजेद्र के प्रति नमस्कार ज्ञापन

करते हुए पूछा—कब आए, कब आप आए व्रजेंद्र बाबू ? मगर इतना सबेरे-सबेरे······

—हाँ, इतना सबेरे-सबेरे ही आना पड़ा, अभया देवी—व्रजेंद्र बोलते हुए दालान में आया और सोफे पर बैठते हुए कहा—वीरगंज में सभा का आयोजन किया है, बाहर के नेताओं के पधारने की स्वीकृति भी आ चुकी है, मगर अभी बहुत सारे काम करने को पड़े हैं। मैं आश्रम में आकर सभी को सभी तरफ भेज चुका हूँ, और जो-कुछ जरूरी चिट्ठियाँ पड़ी थीं, जवाब दे चुकने के बाद मैंने चाहा कि एक बार आपसे मैं मिल लूँ और स्वयं आपको आमन्त्रण दूँ कि आप तबतक मेरा साथ दें जबतक······

—ओह, साथ !—बीच में ही अभया हँसकर बोल उठी—मगर साथ तबतक मैं न दे सकूँगी जबतक आप मुझे वह अवसर···

—कौन-सा अवसर······

—सो मैं पीछे बतलाऊँगी—अभया जरा खिंची-खिची-सी बोली—मगर मैं पूछती हूँ कि बाहर में चक्कर लगाते-लगाते अपने बदन की क्या गत कर रखी है—इसपर भी कभी आपने खयाल किया है ? क्या यह जीने का लक्षण है······

व्रजेंद्र अभया की बातों को सुनकर हँस पड़ा और हँसते हुए ही बात काटकर बोला—जीने-मरने का प्रश्न हमारे सामने कहाँ है, अभया देवी ! जो प्रश्न सामने हैं, उन्हें ही तो पूरा नहीं कर सकता··· मगर अभी इन सब बातों के लिए वक्त ही कहाँ है ? आप तैयार हो लीजिए··········

—तैयार !—अँगड़ाई भरते हुए अभया ने कहा—जितनी जल्दी आप सोच रहे हैं मुझसे वह जल्दी न हो सकेगी।

—क्यों ? क्या कहती हैं आप ?

—मैं जो कहती हूँ, ठीक कहती हूँ !—अभया ने व्रजेंद्र की ओर देखते हुए कहा—आप जिस तरह तुरत तैयार हो उठते हैं, मैं तो उस तरह नहीं हो सकती·············

—मगर हमलोगों को तुरत निकलना जो चाहिए !......वक्त पर स्टेशन पहुँचना है, ट्रेन पकड़नी है, इस तरह देर करने से ट्रेन तो पकडी नहीं जा सकती और अगर अभी ट्रेन न पकड़ी गई तो दिन भर फिर बेकार गया ही समझिए, फिर आप ही सोचिए, कैसे क्या कुछ होगा।

—जैसे होता है, हो लेगा—अभया खिंची हुई ही बोली—यह सब भार मुझपर छोड दीजिए, मैं सँभाल लूँगी।

—आप ?

—हाँ, मैं—मैं !

—तो लीजिए, मैं बैठा, अब आप ही जो आज्ञा कीजिए, किया जाय !

—अच्छा तो कपड़े उतारिए......

—क्यों, मैं तो नहा-धोकर आ रहा हूँ......

—तो फिर मुझे ही जाने दीजिए। आप तबतक आराम से बैठिए, अब तो बाबूजी भी बाहर से टहलकर आ जायँगे।

अभया भीतर की ओर चल पड़ी, उसने रसोइए को बुलाकर जलपान की चीजें तैयार करने को कह एक छोटा-सा पुर्जा लिखा, फिर उसे एक नौकर के हाथो थमाकर वह स्नानघर की ओर गई।

ब्रजेंद्र अकेला बैठा न रहा, उसने अपनी अटैची खोली, उससे लेटरपैड निकाला और आवश्यक पत्र लिखने को बैठ गया। मगर जब वह इस तरह अपने कामों में संलग्न था, तभी डा० स्वरूप बाहर से बढ़ते हुए उसके सामने अचानक आकर बोल उठे—कल रात को हमलोग तुम्हारी चर्चा कर रहे थे, तभी मालूम हुआ कि तुम दो-एक दिन में आनेवाले हो......

ब्रजेंद्र उनके सम्मान में उठ खड़ा हुआ और अभिवादन-प्रदर्शित करते हुए बोल उठा—हाँ, बात सच थी; मैं कल रात को ही आश्रम में आ गया था......

—तो अभी कुछ दिन ठहरोगे ?

—ठहरना !—व्रजेंद्र हँसकर बोला—ठहरने का अवकाश ही कहाँ है ? वीरगंज में एक विराट् सभा होने जा रही है। कुछ बाहर के नेतागण आ रहे हैं ! अभी वहीं चलकर आवश्यक प्रबन्ध करना है। मैं अभी वही आमंत्रण लेकर यहाँ आया था, अभया देवी....

—अभय से भेंट हो चुकी है ?

—हाँ, भेंट हो चुकी है, वह तैयार हो रही होगी।

और तभी अभया भीतर से केशो पर कघी फेरते हुए वहाँ आकर बोल उठी—देखिए न, बाबूजी, व्रजेंद्र बाबू इत्ते दिनों पर आए भी हैं तो ये आपसे मिले बिना ही चले जाने को तैयार थे ! मैंने ही इन्हें रोक रखा है।

—नहीं-नहीं, सो बात नहीं है, डा० साहब—व्रजेंद्र हँसते हुए बोल उठा—यह कब हो सकता था कि मैं यहाँ आऊँ और आपसे मिले बगैर चलता बनूँ ? अभयादेवी नहीं जानती हैं, मगर मैं तो जानता हूँ कि आपसे मुझे कितना बल मिल रहा है ? मैं कितना साहस पाता हूँ आपसे ? आपके दो-एक शब्दों से ? हम कार्यकर्ताओं को, जितनी और चीजों की जरूरत महसूस नहीं होती, उतनी हमें आप-जैसे ज्ञान-वृद्ध की सद्भावना की आवश्यकता है, जो हमें आपसे मिला करती है।

डा० स्वरूप आरामकुर्सी पर आ बैठे और बैठते हुए स्थिर शांत स्वर में बोले—मानव-हृदय में खुद प्रेरक शक्ति मौजूद रहती है, पर किसी में वह जाग्रत् रूप में रहती है और कहीं सुप्त ! जहाँ जाग्रत् रहती है, वहाँ केवल इशारा कर देना ही काफी होता है, व्रजेन्द्र ! पर जहाँ खुद वह शक्ति मूर्च्छित हो पड़ी है, वहाँ इशारा क्या, बड़े-बड़े प्रयत्न भी निष्फल हो पड़ते हैं और फल कुछ नहीं मिलता। पर मुझे खुशी है कि तुममें वह—वह शक्ति स्वयं जाग्रत् है, सतत सचेतन है, वहाँ इशारा न भी किया जाय, अपना काम वह करेगी ही। तुमने साहस बँधाने की जो बात कही है, वह तो तुम्हारी शालीनता है ! मगर तुम-जैसे आज कितने कार्यकर्त्ता हैं जिन्हें इस बात का खयाल

हो ? फिर भी मैं उनकी प्रशंसा ही करूँगा, जो कम-से-कम इतना तो करते हैं कि वे अपने सुख-साधनों को तिलांजलि देकर देश-सेवा की ओर उन्मुख हैं……

व्रजेन्द्र ने डा० साहब की बातें सुनीं और वह उत्तर में कुछ कहा ही चाहता था कि, अभया बोल उठी—जल्दी जाना चाहते थे न व्रजेन्द्र बाबू ? मगर बाबूजी के पास बैठकर आप जो जल्दी जा सकेंगे—यह मैं जानती हूँ !

—नहीं नहीं—डा० स्वरूप हँस पड़े और हँसते हुए ही बोले—मैं कार्य में बाधक न बनूँगा अभय, मैं इन्हें रोकूँगा भी नहीं ! यह जबतक बैठे हैं तभी तक इनके साथ मेरी बातें हैं। क्यों, तुम तैयार हो गईं ?

—मैं तो कब से तैयार हूँ ।

—तो फिर मुझे भी आप तैयार ही समझिए—बोलकर व्रजेन्द्र उठ खड़ा हुआ ।

—मगर इस तरह उठने से काम कैसे चलेगा, व्रजेन्द्र बाबू—अभया बोल उठी—मैं तैयार ही कब हूँ ? अभी तो हमलोगों का जलपान ही कहाँ हुआ ? बिना भरपेट खाए, आप जा सकते हैं, मगर मैं तो जा नहीं सकती !

—आप ऐसा न कहिए अभया देवी !—व्रजेन्द्र ने हँसकर ही कहा—इस वक्त आप यहाँ से भगा देना भी चाहेंगी तो मैं जा न सकूँगा—इतना आपको भी स्मरण रहना चाहिए। मैं खाकर ही जाऊँगा। जब आप मेरे जाने का भार ले चुकी हैं तब मुझे चिंता ही क्यों होने लगी !

—धन्यवाद ! सुनकर प्रसन्नता हुई—कहती हुई अभया खिल-खिलाकर हँस पड़ी। इसी समय जलपान की चीजें लेकर रसोइया आया और टेबिलपर रख गया। अभया आई, तश्तरियों में चीजें चुनीं, एक व्रजेन्द्र की ओर बढ़ाई, दूसरी डा० साहब की ओर और एक आप लेकर बैठ गईं। मगर डा० साहब ने जलपान की सामग्री

ब्रजेन्द्र की ओर बढ़ाते हुए कहा—मैं केवल चाय ले लूँगा, जलपान की चीजें तो तुम्हीं लो ब्रजेन्द्र !

इसके बाद डा० स्वरूप ने अपने सामने इन दोनों को जलपान कराया। जलपान क्या था, पूरा भोजन ही था। जलपान शेष भी न होने पाया था कि कार लेकर खुद आनंद आ पहुँचा और दालान में आते ही वह अभया से बोला—कार अपने माँगी थी, आपके सामने है। कहिए, कहाँ जाना है, मैं खुद पहुँचा दूँ।

—कार के लिए धन्यवाद—अभय मुस्कराती हुई बोली—मगर मैं आपको और कष्ट नहीं देना चाहती।

डा० स्वरूप आनन्द को अचानक पाकर अस्तव्यस्त हो उठे और उसे अपने पास के सोफे की ओर इशारा करते हुए कहा—अच्छे वक्त पर आए आनद ! जलपान की चीजें धरी है, जलपान कर लो !... हाँ ब्रजेन्द्र बाबू, आपको आनद बाबू से परिचय है या नहीं?...शायद नहीं होगा......

तभी आनन्द बोल उठा—मैं आपको पहचानता हूँ, आप-जैसे नेता को कौन नहीं जानता, मगर आप मुझे पहचानेंगे......

—नहीं-नहीं—ब्रजेन्द्र बोल उठा—मैं नेता नहीं, एक लघु सेवक मात्र हूँ, आप जैसा समझ रहे हैं—यह तो आपका सौजन्य है, पर वास्तव वह नहीं है। और डा० साहब, आनंद बाबू के साथ सीधा मेरा परिचय न भी हो, मगर इनकी प्रशंसा सर्वत्र एक रस छाई है। आपने अपने उद्योग और अपनी श्रम-शीलता से कृषि-प्रधान देश की अपनी खोजों-द्वारा जो सेवा की है, वह भुलाने की वस्तु नहीं—एक रेकार्ड है, और वह सदा रहेगा। इतने बड़े व्यक्तित्व के सामने मैं अपने को पाकर अपना सौभाग्य समझता हूँ। अभया देवी से आपकी जैसी प्रशसा सुनी है, आज तो अपने सामने ही पा रहा हूँ कि वास्तव में आप प्रशंसा के पात्र ही नहीं—पूजा के योग्य हैं......

—अच्छी बात है—अभया जरा खिची हुई बोल उठी—उपास्य और उपासक दोनों बैठकर पूजा करते-करवाते रहिए, मैं तो अब चली।

आनंद ने व्रजेन्द्र के संबंध में जो धारणा बना रखी थी, उसने पाया कि व्रजेन्द्र वैसा नहीं है। उसके प्रति अबतक उसने जो अविचार अपने हृदय में पाल रखा था, वह बर्फ-जैसा आप-से-आप पिघलकर बह गया, पर वह अभया से ही प्रसन्न न हो सका। इसलिए वह बोल उठा—आप अकेली तो जा भी नहीं सकतीं, अभया देवी? आपको याद रखना चाहिए कि जो स्वयं आपके घर मेहमान हैं, उन्हें निरादर करने का आपको साहस भी नहीं हो सकता! क्या इतना बड़ा साहस आप कर सकेंगी? इस बार व्रजेन्द्र से चुप रहते न बना, अभया की ओर से उत्तर में वह बोल उठा—इतना बड़ा साहस अभया देवी कर सकती हैं; पर मैं ऐसा चाहूँगा भी तो नहीं! आपको मैं शायद नही भी जान सका होऊँ, मगर अभया देवी को तो मैं जानता ही हूँ। ये चाहे आपके सामने जो कुछ कह डालें, मगर आपके पीछे आपका उचित सम्मान करती हैं—करना जानती भी हैं। मगर, इस वक्त, आप यदि इजाजत दे सकें तो उत्तम। क्योंकि व्यर्थ में इन्होंने मुझे यहाँ रोक रखा और खुद आप रुकी रहीं!

—लेकिन रुकने से घाटा क्या रहा व्रजेंद्र बाबू?—अभया बीच में ही बोल उठी—आज आप नहीं रुकते तो अपने उपास्य के दर्शनों से आप सौभाग्यशाली नहीं हो सकते! यह कुछ कम लाभ है?··· केवल यही नहीं, अब तो आपको पहुँचाने के लिए स्वयं ये यंत्र-चालक बनेंगे! जहाँ आप जाना चाहेंगे, पहुँचा दिये जायँगे। अच्छा, तो उठिए, अब चला ही जाय।

अभया एक बार अपने कमरे की ओर गई और तुरत तैयार होकर आई। ये तीनों कार पर आ बैठे, सोफर की सीट पर अभया खुद बैठी। कार चल पड़ी।

मगर कार एग्रिकल्चर फार्म की ओर जब मुड़ी तब आनंद बोल उठा—क्यो, कार इधर क्यों मुड़ी?

—इसलिए कि श्रीमान् आनंद को उतार देना जो है!

—तो उधर से गाड़ी आयगी कैसे?

—क्यों, जो इधर से कार ले जा सकता है वह उधर से उसे ला नहीं सकता ?

—तो क्या आप स्टेशन नहीं जा रही हैं ?

—तब स्टेशन जाने का विचार था, पर आपने स्वयं आकर सब गुड़-गोबर कर दिया। उसी की सजा है कि आपकी कार मेरे साथ रहेगी। हाँ, उतरिए आप और बतलाइए कि पिट्रोल का खजाना कहाँ है, संग्रह कर लेना ज्यादा अच्छा होगा।

अभया उतरी, आनद भी उतरा और उतरकर आनंद ने अभ्यर्थना के स्वर में कहा—क्या व्रजेंद्र बाबू, पाँच मिनट के लिए आप नहीं उतर सकते ?

—उतरने में कोई आपत्ति नहीं, मैं आपका अनुरोध स्वीकार किये लेता हूँ।—व्रजेंद्र मुस्कराते हुए बोला—मगर अभी जाना ही ठीक होगा। ट्रेन तो छूट ही गई, अब तो तीस मील आपकी कार पर ही काटनी है। काम इतना जरूरी न होता तो इतनी जल्दी नहीं करनी पड़ती। फिर कभी देखा जायगा।

—ऐसा मेरा सौभाग्य होगा ?—आनंद ने व्रजेंद्र की ओर ताका।

—क्यों नहीं, क्यों नहीं—व्रजेंद्र बोल उठा—मैं तो सेवक ठहरा, बुलाये-बे-बुलाये आ जाना हमलोगो का काम है! अवकाश मिलने पर.........

—तो मैं आमंत्रित करूँ, स्वीकार होगा मेरा आमंत्रण ?

—आमंत्रण स्वीकार है, पर कब आ पहुँचूँगा—मैं स्वयं नहीं जानता। मगर मुझे प्रसन्नता ही होगी जब मैं आपका आमंत्रण पूरा कर सकूँगा।

—खैर, मेरे लिए यही बहुत है.........

अभया पिट्रोल की टीनें रखकर कार पर आ बैठी। आनंद ने कहा—क्या सोफर को बुला दूँ, अभया देवी ? शायद रास्ते में...

—इसकी आप फिक्र न करें। सँभाल लेंगे।

कार अपनी दिशा में चल पड़ी।

बहुत दिनों के बाद अभया व्रजेन्द्र को पा सकी है। उसके साथ घूमने-फिरने का अवसर उसे इसके पहले भी मिल चुका है, पर अवसर पाकर भी अभया अभी तक उसका संपूर्ण परिचय नहीं पा सकी है। इसलिए वह चाहती है कि इस बार उसके साथ रहने का जो अवसर उसे हाथ लगा है, उससे वह लाभ उठाकर ही रहे। अभया इन्हीं विचारों में उलझी-उलझी है; पर उसे अपने समय पर पहुँचना भी है, इसका उसे खयाल है, इसलिए उसने कार की चाल तेज कर रखी है, इतनी तेज कि जरा भी असावधान हुई कि फिर उसे सँभालना कठिन हो उठेगा; मगर अभया निर्भय है और निर्भय होकर ही वह अपनी गति में तीव्र है और जितना ही वह तीव्र है उतना ही व्रजेंद्र अपने-आप में भयभीत है और इसलिए भयभीत है कि अभया कहीं अपने काम में फेल न हो जाय—कहीं वह कार को किसी से टकरा न दे, तभी वह बोल उठता है—इतनी जल्दी क्या है, अभया देवी, अभी-अभी यदि आप कार को न सँभाल लेतीं तो वह बूढ़ा टकरा गया होता......

बूढ़ा शायद बहरा था। हार्न देने पर भी उसने न सुना!—हँसती हुई अभया ने कहा।

—सुना तो था, पर वह घबराहट में आ गया। क्या करे, क्या न करे! ऐसी हालत में एक्सिडेंट होने का खतरा रहता है।

—मैं इस खतरे को जानती हूँ।

—सो तो काम से ही जान पड़ा। इतनी जल्दी आप कार को सँभाल लेंगी—मैं अनुमान भी न कर सकता था! मगर, इतनी स्पीड में न ले चलें तो कुछ हानि नहीं, हमलोग वक्त पर पहुँच जायँगे, बल्कि वक्त से कुछ पहले ही!

—क्यों, आप स्पीड में चलना पसन्द नहीं करते?—अभया ने इस बार व्रजेन्द्र की ओर निहारा।

—स्पीड में चलना सहज नहीं अभया देवी, आप शायद इसे ही ज्यादा पसंद करती हैं, मगर मैं क्या आप-जैसी स्पीड में चल सकूँगा?

—ओह, जाना, आप स्पीड को पसन्द नहीं करते !—अभया इस बार हँसी और हँसते हुए व्रजेन्द्र की ओर देखकर बोली—तो क्या कार को धीमी गति में जाने दूँ ?

—यह तो आपकी अपनी इच्छा और रुचि पर ही निर्भर करता है !

—मगर आपकी रुचि का भी तो मुझे ध्यान रखना ही चाहिए ! मैं आपको घबराहट में डालकर अपनी रुचि पर प्रसन्नता प्राप्त करूँ तो यह गर्हित स्वार्थ होगा। मैं ऐसा हरगिज पसद नहीं करूँगी। यदि मैं यही बात पहले से जानती होती तो आपको परेशानियों में पड़ना न होता। लीजिए, आपकी खातिर चाल धीमी किये देती हूँ। अब तो आप प्रसन्न होंगे ?

और यह कहकर अभया ने कार की गति बिलकुल धीमी कर दी। जो कार ८०-८५ की स्पीड में जा रही थी, अब केवल दस पर आ लगी है; मगर इसपर आकर भी व्रजेन्द्र प्रसन्न नहीं है और वह तभी बोल उठता है—यह तो मुझपर अतिशय अनुग्रह है, अभया देवी—इसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ और कदाचित् आप इसे भी स्वीकार करेंगी कि यह अनुग्रह मुझपर प्रदर्शित किये गये ममत्व का प्रतीक है। जो कार्य आप की प्रसन्नता का कारण था, उस प्रसन्नता का विसर्जन क्या मेरे दुख का कारण नहीं हो सकता, अभयादेवी ? इसपर शायद आपने विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी। आप न समझे, किन्तु मैं समझता हूँ कि ममत्वपूर्ण हृदय में कर्त्तव्या-कर्त्तव्य की विवेचन-शक्ति नष्ट हो जाती है। किंतु मैं इसे पसंद नहीं करता। आप कार को उसी गति में जाने दें।

अभया जाने क्या सोचने में निमग्न थी, उसने व्रजेन्द्र की सारी बातें सुनकर भी, लगा, जैसे कुछ सुना ही नहीं। कार अब भी दस मील की स्पीड में ही चल रही थी, व्रजेन्द्र ने पाया कि अभया ने उसकी बातों पर अपना कुछ भी मन्तव्य प्रकाश न किया तो वह बोला

उठा—इतनी धीमी गति में तो हमलोग वक्त पर पहुँच भी नहीं सकेंगे, अभयादेवी, स्पीड बढ़ाइए।

—क्या कहा, स्पीड बढ़ा दूँ?—इस बार आश्चर्य-चकित दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए अभया ने कहा—क्या सच ही बढ़ाऊँ?

—हाँ, बढ़ाइए, सच ही बढ़ाइए।

—कोई एक्सिडेंट हो जाय तो?

—तो!··व्रजेंद्र कुछ क्षण रुका, फिर बोल उठा—उसकी कुछ परवा नहीं, मैं उसका भार अपने ऊपर लेता हूँ। मैं लेता हूँ भार अभया देवी, सच, मै लेता हूँ।

इस बार व्रजेंद्र सँभलकर बैठ गया, लगा जैसे मृत्यु को आलिंगन करने के लिए वह बद्ध-परिकर है!

—मगर मैं बढ़ा न सकूँगी।

—क्यों-क्यों, अभया देवी?

—क्यों का उत्तर मैं बता नहीं सकती!

—नहीं, उसे बताना ही चाहिए, बताना ही चाहिए, अभया देवी,—व्रजेंद्र अधिक विनम्र होकर ही बोल उठा।

—मैं हारी, वह मेरा अभिमान था।

—यह क्या कह रही हैं, अभया देवी?

—जो कह चुकी हूँ, वह सत्य है।

—मगर मैं इस गति में पहुँच नहीं सकूँगा, अभया देवी! तीव्रता चाहे मैं न पसंद करूँ; पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि मैं बिलकुल जड हो बैठूँ। मंजिल के लिए तीव्रता अपेक्षित न भी हो, मगर साधारणता तो चाहिए ही। और इतना साधारण नहीं कि वह जडता का प्रतीक हो उठे।

अभया इस बार हँस पडी और हँसते-हँसते ही बोली—क्या सामने जो गाँव दीख रहा है, यही तो वीरगंज नहीं, व्रजेंद्रबाबू?

—ओह, आगया?—व्रजेंद्र ने इस बार सामने की ओर दृष्टि

डाली और प्रसन्न होकर बोल उठा—हाँ, यही वीरगंज है, अभया देवी ! जहाँ तिरंगा झंडा फहरा रहा है, वही सभास्थल है।

—तो क्या स्पीड बढ़ाऊँ ?—अभया हँस पडी।

व्रजेंद्र भी इस बार हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा—अब आपकी स्पीड से मुझे भय नहीं, अभया देवी, मैं जानता हूँ, अब खतरा नहीं है—अभी के लिए नहीं है, मगर अब जो भी आये—आये। वह चाहे जितना बडा हो क्यों न, उसके लिए मुझे चिंता नहीं, प्रसन्नता होगी—क्योंकि मैं जानता हूँ, चालक आप हैं, आपका संचालन जिस दिशा की ओर हो, वहाँ ख़तरा भी आनंद का ही कारण होगा—इतना मुझे विश्वास है।

—विश्वास है ?—अभया ने हँसते-हँसते ही पूछा।

—हाँ, विश्वास है।

और तभी कार एक गढ़े पर उछलकर पार कर गई। व्रजेंद्र ने चौंककर पूछा—यह क्या था अभया देवी ?

—कुछ नहीं, साधारण खदक था—अभया फिर हँसी—क्यों, डरे तो नहीं ?

—विश्वास अटल है, अभया देवी, फिर यह प्रश्न क्यों ?

अभया इस बार बोल न सकी, चुप हो रही। कार आकर खड़ी हो रही। जब बहुत-से आदमी उस ओर आते दीख पड़े, तभी व्रजेंद्र दरवाजा खोलकर बाहर निकलते हुए बोल उठा—उतरिए भी तो !

अभया उतरकर बोल उठी—चलिए·············

पंचदश परिच्छेद

वीरगंज की सभा का अधिवेशन बड़ी सफलता के साथ संपन्न हुआ। बाहर के गण्यमान्य नेताओं के ओजस्वी भाषण अब भी वीरगंज की दिशा-विदिशाओं में प्रतिध्वनित हो रहे हैं। अधिवेशन समाप्त हो चुका है, नेतागण विदा ले चुके हैं। कार्यकर्त्ताओं में अब वह सरगर्मी नहीं रह गई है, चारों ओर आलस, शिथिलता छा गई है। जो चीजें संग्रह कर मँगवाई गई थीं वे अपनी-अपनी जगह पहुँचाई जा रही हैं; पर उमंग वह नहीं है, उत्साह वह नहीं है। फिर भी व्रजेन्द्र अपनी जगह अडिग है, वह यथास्थान सभी चीजों को पहुँचाकर ही वहाँ से विदा लेगा—उसकी विदा ही अंतिम विदा होगी। इसलिए वह चिंतित है, जरा उदासीन भी; फिर भी वह अपने कार्य की जगह अटका हुआ है, अभया भी उसका साथ देने को बाध्य हो गई है।

किन्तु अभया की कर्मोद्यत प्रकृति अवशाद-ग्रस्त हो उठी है। लगातार कर्मोन्माद में पडी अभया अपनी सफलता की पूर्णाहुति में उसी तरह तल्लीन है; पर तल्लीनता में व्याघात हो उठता है जब वह पाती है कि उसके सामने कार्य-संचालक व्रजेन्द्र स्थितप्रज्ञ-जैसा हो पड़ा है। न वह चंचल है, न वह अशांत, उसकी शांति चिरशांति-जैसी कठोर हो उठी है। अभया नहीं चाहती कि वह इस तरह उसे शांत-मुद्रा में देखे! यह शांति उसे वांछित नहीं; वह अवांछनीय शांति

में निमग्न अपने नायक ब्रजेन्द्र को देखना नहीं चाहती, न वह यही चाहती है कि, वह ब्रजेन्द्र जो स्वयं उसकी दृष्टि में उसका अभिन्न हो उठा है, अपने-आपमें हलचल से भिन्न होकर—रहित होकर—इतना चिरस्थिर हो बैठे कि वह जड हो जाय ! वह चेतन को जड़ नहीं देखना चाहती, बल्कि सच तो यह कि वह जड को भी चेतन देखना चाहती है। उसे यह अपेक्षित है, उसके लिए यही वांछनीय भी। और तभी वह बोल उठती है—दिन-रात काम करते-करते काफी थकावट आ गई है, ब्रजेन्द्र बाबू, चलिए न, कुछ दूर तक टहल आया जाय। यह प्रान्त मुझे अत्यधिक भाता है, वह जो पहाड के निकट झरना है, चलिए वहाँ तक, कुछ देर मन तो बहला लिया जाय। क्यों ?

ब्रजेन्द्र ने उसकी बातें सुनीं, पर तुरत उत्तर में कुछ कह न सका। वह अबतक सिर झुकाए जाने क्या सोच रहा था; पर उसे और अधिक सोचने का अवसर न मिला जब अभया पुनः बोल उठी—क्यों, बात क्या है, ब्रजेन्द्र बाबू ? बोलते क्यो नहीं ? 'ना' या 'हाँ' कुछ भी तो कहिए ! जो जी चाहे……

—क्या मेरा जाना ठीक होगा ? ये जो काम करने को पड़े हैं…

—काम ?—अभया जरा रुष्ट होकर ही बोली—इत्ते सारे लोग पड़े हैं, फिर ये सब काम में लगे हुए ही हैं, तो फिर क्यों न कुछ देर टहल लिया जाय।

—क्या आप अकेली नहीं जा सकतीं ?

—अकेली !—अभया चुप हो रही, फिर बोली—अकेली जाने में कोई भय नहीं, इतना तो आप भी समझ रहे हैं; मगर मैं पूछती हूँ कि क्या आपने सब बातो को टालना ही निश्चय कर रखा है ? जो मैं कहूँ, उसे आप टालें ही—जब यही निश्चय है तो कहिए, फिर मैं आपसे कुछ कहूँगी ही नहीं। जहाँ अपना-ही-अपना देखना है और दूसरे का नहीं, वहाँ उसे कुछ कहना ही उसपर अन्याय लादना है। यदि यही सच हो तो कहिए, मैं वैसा ही करूँ !

इस बार व्रजेन्द्र हँस पड़ा, पर उसकी हँसी स्थिर न रह सकी। अभया ने पाया कि यह हँसी उसके हृदय की नहीं--बाहरी है, जो केवल किसी की प्रसन्नता का कारणमात्र हो सकती है, इससे कुछ अधिक नहीं। अभया इस बार कुछ बोली नहीं, वह उसकी ओर देखती रही; पर वह अधिक क्षणों तक उसकी ओर देख न सकी। बीच ही में व्रजेंद्र उठ खड़ा हुआ और उठते हुए ही बोल उठा—अब मैं तैयार हूँ, अभया देवी! जित्ती देर चाहें—चलिए, टहला जाय।

—धन्यवाद, सुनकर मै. प्रसन्न हुई—अभया ने प्रसन्नता-सूचक ध्वनि में मुस्कराते हुए कहा।

दोनों चल पड़े। संध्या होने में कुछ ही देर थी, सूर्य पहाड़ की आड़ मे जा चुका था, मगर पश्चिमाचल आकाश पर लालिमा बिखरी पड़ी थी। दोनों उसी ओर जा रहे थे; मगर दोनो बढ़ते हुए जा रहे थे, धीमी गति में, बिलकुल निस्तब्ध, बिलकुल नीरव। अभया चाहती थी कि गति में तीव्रता लाकर पहाड़ की चोटी तक जा पहुँचे, जहाँ से वह डूबते हुए सूर्य को क्षितिज की रेखा पर पा सके; पर व्रजेंद्र की गति मंथर थी, वह अब भी जाने क्या सोच रहा था! पता नहीं, वह क्यों इतना, इस तरह, उलझा-उलझा-सा था। पहाड़ के निकट पहुँचते-पहुँचते ही व्रजेंद्र बोल उठा—विस्फोटक की बात एक दिन डाक्टर साहब ने कही थी, अभया देवी, शायद आपको भी याद होगा।

—हाँ, याद है—अभया व्रजेंद्र की आकृति की ओर देखकर बोल उठी—मगर यह बात अभी याद आई कैसे?

व्रजेंद्र शिला-खंड पर बैठ गया, अभया उसी के पास खड़ी थी, व्रजेंद्र बोल उठा—वह बात मैं भूलता कब हूँ, अभया देवी? मैं तो पाता हूँ कि डाक्टर साहब का अनुमान कुछ गलत नहीं है! सूक्ष्मदृष्टि ही काल की नाडी को पहचानसकती है और मैं पाता हूँ कि उस नाडी में भीतर-भीतर इतनी गर्मी पहुँच चुकी है कि, वह स्थिर चल नही सकती, वह फटेगी ही· ....

अभया इस बार उसकी बातों पर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही

उसी जगह बैठती हुई बोली—मैं पूछती हूँ कि इन ऊल-जलूल बातों को आप अगर न सोचें तो क्या कुछ काम न चले ! एक बाबूजी हैं जिन्हें बोलने का मर्ज है ! उनकी तबीयत किसी दूसरी बात से बहलती ही नही। वे जब कहेंगे तब ऐसी ही बातें कहेंगे। जाने इन सब बातों में ही उनका दिमाग उलझा रहता है; मगर उनके लिए मुझे चिंता नही। जानती हूँ, वे बूढ़े हैं और बूढ़ों को मरने की चिंता सबसे पहले होती है, जिस के लिए उन्हें क्षमा किया जा सकता है। मगर आपके मुख से ऐसी बातें सुनने के लिए मैं हर्गिज तैयार नहीं। मैं जानती हूँ कि यह शुभ लक्षण नही। आप-जैसे कर्मठ व्यक्तियों के दिमाग में ऐसी बातें घुसकर परेशान किये रहें—मैं इसे हर्गिज नहीं चाहती। क्या यह मृत्यु का लक्षण नहीं है ?

व्रजेंद्र अभया की बातो पर एक हलकी-सी हँसी हँस पड़ा, फिर बोल उठा—बूढ़ो की सभी बाते बिलकुल निराधार होती हैं और उन्हे मृत्यु की चिंता ही अधिक रहती है, ये सच हों भी; पर मै इन्हे ऐसा नही समझता। केवल मैं उनकी बातो पर ही पूर्णरूप से विवेचन नहीं करता। अभया देवी, मैं तो अपनी कहता हूँ, चाहे हम बाहर-बाहर जितनी उम्मीदें लिये बैठे रहें, मगर मुझे लगता है कि आज की युद्ध-जनित परिस्थितियो से देश में जो अवसाद घर कर गया है, वह बाहर से चाहे जितना स्थिर और शांत जान पड़े, पर उसके अन्तराल में ऐसी धधकती हुई आग है कि वह फूटकर निकलेगी ही और उस आग से सारा देश जल-भुनकर तबाह होगा। यह सुदूर भविष्य की बात मैं नहीं कहने जा रहा, मैं पाता हूँ कि दो दिन-दस दिन के भीतर—हाँ, सच है, इससे अधिक और न होगा, कुछ होकर ही रहेगा—और जो कुछ होगा—उसकी ठीक-ठीक कल्पना अभी नही की जा सकती। उसका रूप, उसकी आकृति जो भी हो, मगर चीज एक ही रहेगी, उसमें अंतर न आयगा।

अभया को व्रजेंद्र की बातो पर विश्वास न हुआ, इसलिए वह एक अवज्ञा की हँसी हँस पड़ी, लगा जैसे वह अपनी हँसी में व्रजेंद्र के मन

की सारी चिताओं को डुबो डालेगी, पर व्रजेंद्र पर उसका कुछ भी प्रभाव दीख न पडा। वह उसी तरह अभया की ओर देखता रहा, तभी अभया बोल उठी—यह उद्विग्न करनेवाली बात आपके मुख से मैं सुना नहीं चाहती, व्रजेन बाबू! जैसा समय आवेगा—देखा जायगा। उसके लिए इतना पहले से चिंतित हो उठना क्या उचित हो सकता है? जिन बातों पर अपना कुछ जोर नहीं, जो स्वय आप-से-आप पैदा होती हैं, उनका आप-से-आप अंत भी होता है—फिर ऐसी बातों में अपने को उलझाए रखना ठीक नहीं। फिर आप-जैसे व्यक्ति के मुख से जिनका जीवन ही सदैव एक खिलौना रहा है······

—जीवन एक खिलौना है—इस बार व्रजेंद्र प्रसन्नता की हँसी में हँस पडा और हँसते-हँसते ही बोल उठा—यही मै सुना चाहता था, अभया देवी, यही मैं सुना चाहता था। जो जीवन को खिलौना से अधिक महत्त्व नही देता, उसके लिए सुख-दुख, विपत्ति-सपत्ति, हानि-लाभ और जीवन-मरण में फिर अंतर ही क्या रह जाता है? दुख आए तो सुख आए तो, दोनो अवस्थाओं में वह समान है, दोनो अवस्थाएँ उसके लिए समान हैं, फिर वह कुछ करके ही क्यों न मरे और वह कुछ ऐसा हो—जो जीवन का एक संदेश हो, जो आनेवाली पीढ़ी को आगे बढ़ाए, आगे बढ़े हुए को और आगे बढ़ने की ओर बढ़ावा दे, हिम्मत बँधाए और जो स्वयं भू-लुंठित है, उसे फिर से उठ बैठने को प्रोत्साहित करे। यदि इतना भर हुआ तो मानो सब-कुछ हुआ, वह मरकर भी अमर है···मगर मैं यह भी नही चाहता, मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि मरूँ और मरकर देखूँ कि जीवन क्या था और मृत्यु क्या है?·········और यह तभी हो सकता है, जब अचानक कोई विस्फोटक फटे और ऐसी जगह फटे जब मैं अपने कर्म-कठोर-जीवन में उलझा-जैसा रहूँ, जब मुझे खुद अपने-आप पर सोचने-विचारने का भी अवकाश न रह जाय···जब मैं स्वयं डूबा हुआ रहूँ··· क्या ऐसा जीवन तुम्हें पसंद आयगा अभया देवी! ऐसे जीवन की ओर तुम······

—यह जीवन, यह जीवन !—अभया अपने आवेश में आकर बोल उठी—मैं नहीं कह सकती, मै पसद करती या नहीं, कैसे कहूँ कि वह जीवन क्या है ? जिसमें जीवन-मृत्यु, आनंद-विपाद स्वयं एकाकार हो उठता है, मैं नहीं जानती, वह क्या है ! पर, क्या आप इसे पसंद करते हैं—करते हैं व्रजेन बाबू ?

—यह मै खुद कहा नहीं चाहता, यह तो स्वयं काल ही बतलायगा अभया देवी—व्रजेंद्र प्रसन्नमुख बोल उठा—मगर उस समय मैं कहाँ हूँगा, तुम कहाँ होगी···नहीं, नहीं, यह गलत बात, इसकी ही अपेक्षा क्यों रहे···जब कि सारो अपेक्षाएँ मैं नहीं, नहीं कह सकता कि सारी अपेक्षाएँ मुझसे खो चुकी हैं······

अभया को लगा, जैसे व्रजेंद्र उसकी ओर लपकते आकर भी उससे दूर हो रहा है, वह व्रजेन्द्र जो सारी अपेक्षाओं से अपने को मुक्त समझ रहा है। क्यो वह आज इतना कठोरकर्मा है ? क्यों आज वह जोवन-मृत्यु की ओर से इतना अचचल है ? क्यो उसे अपने जीवन से मोह नहीं रह गया ? क्यों ऐसा जीवन इसका है जिसमें कोई साध नहीं, कोई प्रत्याशा नहीं, कोई अपेक्षा नही ? निरपेक्ष अवस्था संतो की अवस्था है, वह अवस्था हम सासारिकों के लिए नही है जिन्हें सघर्षों के भीतर से गुजरना है, जिन्हे सम्पत्ति-विपत्तियो को साथ-साथ लेकर चलना है··अभया और अधिक सोच न सकी, वह व्रजेन्द्र के हाथ को अपने हाथ में लेकर बोल उठी—जो अपनी सारी अपेक्षाओ से स्वयं ऊपर है, उसके सामने मै और तुम का प्रश्न ही क्या ? मगर मैं···कह नहीं सकती कि मैं उस समय अपनी आँखो, उस विस्फोटक के फटने के समय, देख सकती कि मैं भी वहीं हूँ जहाँ आप हैं···हाँ, इतना भर देख पा सकती !···

—क्या सच, अभया, तुम देखना चाहती हो वह वह समय—वह समय, जब विस्फोटक फटेगा ? जब मैं और तुम उसके भीतर रहेंगे··· जब मैं और तुम··· ···सच बताओ, अभया, देख सकोगी वह, इन खुली आँखों से देख सकोगी वह ?···

अभया का हाथ मृदुल से कठोर हो उठता है—व्रजेन्द्र से यह छिपा नहीं रहता, अभया की आँखें सजल हो उठती हैं और ओठों पर एक मृदु कंपन हो उठता है और वह वाष्प-गद्गद कंठ से कह उठती है—अंतरिक्ष के प्रभु साक्षी है—यही मेरी आकांक्षा है···

—यह आकांक्षा!—व्रजेन्द्र अपना हाथ खींच लेता है और उसकी दृष्टि में अपनी दृष्टि डालकर बोल उठता है—वह आकांक्षा, अभया, मैं क्या सुन रहा हूँ? क्या देख रहा हूँ? किंतु तुम्हें क्या पता है कि मैं कितना निःस्व हूँ? मेरा हृदय कितना निःस्व है!···

—निःस्व?—अभया खिलखिलाकर हँस पड़ती है, उसकी उन्मुक्त खिलखिलाहट से वहाँ की प्रकृति मुखरित हो उठती है!

—हाँ, निःस्व हूँ अभया, आज अपना कहकर पुकारनेवाला मेरे सामने नहीं रह गया। मैं सभी दिशाओं से निःस्व हूँ।

अभया व्रजेन्द्र की बातों से आकुल हो उठती है, वह समझ नहीं पाती कि कैसे वह समझाए कि उसका पूछनेवाला कोई न हो, मगर अभया है जो आमरण उसे पूछने के लिए अपने को प्रस्तुत कर चुकी है, वह आमरण उसे छोडना नहीं चाहती—वह तब भी छोड़ना नहीं चाहेगी जब वह स्वयं मृत्यु-दूत से दो-दो पकड लडता-जूझता रहेगा! किंतु वह अभया कैसे समझाए कि वह उसके लिए क्या है, क्या होकर उसकी छाया का अनुसरण कर रही है वह! अभया की वाणी स्वयं पंगु हो उठी, अपने-आपको व्यक्त करने से, वह कुछ न बोल सकी; किंतु उसकी सजल उज्ज्वल आँखे अपने उत्सर्ग के मुक्ताकणों को उसके फैले हाथों में डालकर स्वयं बता गईं कि वह क्या है? व्रजेन्द्र को यह समझते देर न लगी, उसने पाया कि अभया जो उसके निकट बैठी है, कितनी सवेदनशील है! अभया का यह रूप उसके लिए अभिनव था। उसने अभया को जाना था, जाना था कि वह कर्म-कठोर प्रवाह में बहनेवाली एक प्रखर झंझा है जिसमें आवेग है, उद्वेग है, गतिशीलता है, चपलता है और उद्दाम कार्य-करी शक्ति मत्ता है, जिसमें दया से अधिक स्वाभिमान है, जिसमें सह-

दयता से अधिक कठोरता है, जो बात-बात में किसी को मूर्ख बना देने की क्षमता रखती है; पर वह यह कदापि नहीं जानता था कि वह तो अभया की बाहरी दिशा है जो सदैव कठोर रही है, पर उसका अंतर इतना मृदु, इतना कोमल, इतना सुकुमार और इतना भाव-प्रवण भी होगा—इस ओर उसकी दृष्टि ही कब गई थी!...

व्रजेन्द्र ने एक बार साहस कर अभया की ओर देखा। संध्या का अंधकार घना हो आया है, द्वितीया का चाँद पहाड़ की ओट में जा छिपा है, इसलिए उस सघन अंधकार में अभया एक तपस्विनी की निर्विकार छाया-जैसी ही उसकी दृष्टि में उतर आई—हाँ, बिलकुल छाया-सी, अचल, अटल, निर्विकार एकरस, अचंचल! व्रजेन्द्र का हाथ स्वतः उसके हाथ से टकराया, और उसे अपनी मुट्ठी में भरकर बोल उठा—क्यों, अभया, तुम कुछ बोल नहीं रहीं, क्या सोच रही हो?

इस बार अभया अचंचल से चंचल हुई; पर उसने अपना हाथ उसकी मुट्ठी से खींचा नहीं, वह बोल उठी—क्या सोच रही थी, मैं स्वयं कुछ नहीं जानती; मगर मैं यह जानना चाहती हूँ कि जीवन में केवल कर्म ही अपेक्षित है या और कुछ? और, यदि और कुछ भी होता तो उसका ग्रहण क्या अनुचित होगा?

—क्या अनुचित और क्या उचित है, इसका विवेचन मुझसे न हो सकेगा, अभया—व्रजेंद्र कुछ क्षण रुका, फिर सहज गति में बोलता चला—उचित-अनुचित को छोड़कर जीवन में जिस व्रत का व्रती हो चुका हूँ, उससे अधिक मेरे लिए कुछ भी काम्य नहीं रह गया है। जीवन जिस मातृभूमि के लिए उत्सर्ग है, वह उसीके लिए सुरक्षित है और जो स्वयं उत्सर्ग हो चुका है, उसके लिए फिर दूसरा प्रश्न ही क्या रह जाता! मैं अपने कर्त्तव्य में सच्चा रहूँ, ईमानदार रहूँ, आपद में, विपद में एकरस रहकर यदि अपनी सेवा, सच्चे अर्थ में, समर्पित कर सकूँ तो मेरे लिए इससे बढ़कर और आनंद का कारण दूसरा न होगा।

अभया व्रजेंद्र के उत्तरों को सुनकर प्रसन्न न हो सकी। व्रजेंद्र की मनोदशा का इतना द्रुत परिवर्त्तन देखकर अभया स्वयं संक्षुब्ध हो उठी। पर संक्षुब्ध का कारण व्रजेंद्र न जान सका, उसका ध्यान इस ओर बिलकुल नहीं था। इसी बीच अभया ने धीरे से अपना हाथ कब खींच लिया, उसे इसका भी ध्यान न रहा। अभया इस बार दूसरी ओर देखने लगी; पर अंधकार में वह कुछ और न पा सकी। वह कुछ बोली नहो, कुछ हिली नहीं; पर उसके अन्तस्तल में एक ही साथ जैसे अनेक भावो का सघर्ष छिड़ गया। वह किसे पकड़े, किसे छोड़े—यह उसकी शक्ति के परे था। उसके मुँह से अचानक निकल गया—तुम बड़े पाषाण हो। व्रजेंद्र ने सरल गति में ही इसे स्वीकार किया, कहा—हाँ, अभया, सच कहती हो, मैं पाषाण हूँ।

—पाषाण होना ही स्वाभाविक है मेरे लिए अभया!—व्रजेंद्र इस बार अत्यंत कोमल होकर बोल उठा—जिसने कभी ममता पाई नहीं, जिसने स्नेह का सौम्य रस आस्वादन कभी कर नहीं पाया, जो सदेव अकिंचन बनकर, अकिंचन-जैसा रहकर, अपने को सब तरह से अलग रखता आया, उससे तुम ममता पाने की, स्नेह पाने की आशा नहीं रख सकतीं, अभया देवी!

अभया उत्तर में कुछ न बोल सकी। उसका मन चंचल था, इसलिए वह उठ खडी हुई और खडी होकर बोल उठी—रात कुछ अधिक हो आई है, अब चलना ही ठीक होगा।

—हाँ, चलना ही ठीक होगा—कहकर व्रजेंद्र भी उठा और चल पडा। अभया भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ी।

रास्ते में एक जगह नाला पड़ता था। दिन के प्रकाश में वह उतना भयकर न था, पानी का धार पतला तो था, मगर दोनो ओर के किनारे बहुत ही ऊँचे और उठे हुए थे। रास्ता क्या था, पंग-डेंडी थी जिसपर सँभलकर चलना पड़ता था, जरा भी पैर जमा नहीं कि घुलटकर नीचे गिरने की बारी थी। व्रजेंद्र को इसका खयाल था। जैसे ही वह आगे बढ़ते-बढ़ते उस स्थान पर आया वैसे ही

अभया को सावधान करते हुए, अपनी स्तब्धता को भंग कर वह बोल उठा—अब उसी स्थान पर आ गई हो अभया देवी, जहाँ दिन को ही तुम गिरने-गिरने को हो चुकी थीं। सावधान होकर चलो।

---ओह, हमलोग आ गए उस जगह पर?---अभया जैसे चौंक-कर ही बोल उठी—मगर इस वक्त मैं उस तरह चल नहीं सकूँगी, मुझे अवलंब चाहिए—चाहिए ही।

और ऐसा कहकर अभया ने अपना दायाँ हाथ उसके गले में डालकर कहा—अब चलिए, निर्विघ्न अब मैं पार कर जाऊँगी।

और इस तरह दोनों आगे बढ़े। दूसरा कोई समय होता तो व्रजेंद्र ऐसा करने को कभी उद्यत न होता। वह अबतक दूसरों के संसर्ग से अपने को बचाता आ रहा है, पर इस समय अचानक जो अभया कर बैठी, वह अभया के लिए भी उतना ही कठिन था जितना स्वयं व्रजेन्द्र के लिए भी, फिर भी अनिश्चित रूप से व्रजेन्द्र जिस स्पर्श को पा सका है, उसके लिए वह प्रलोभनीय न भी हो, उसे लग रहा है, कि वह उपेक्षणीय भी नहीं है। यह स्पर्श शीतल है, मृदु है, अपेक्षणीय है, श्लाघ्य है। व्रजेन्द्र को लग रहा है कि केवल वह शीतल ही नहीं, मृदु ही नहीं, वह और कुछ है जिसे वह प्रकाश करने में अक्षम है! किंतु अक्षम होकर भी वह सावधान है कि कहीं उससे कोई अविनय—अचिंत्य व्यापार—न हो जांय जो अभया के लिए दुख का कारण हो। अतएव जबतक वह नाले की एक कछार से दूसरी कछार को पार न कर गया, तबतक लगा जैसे 'वह अपनी साँस को भी रोके हुए ही चल रहा है। इसी बीच उसे अपने मन के साथ अनेक लड़ाई ठाननी पड़ी, अनेक द्वन्द्वों से उलझना पड़ा; पर जैसे वे दोनों समतल भूमि पर आ लगे, वैसे ही अभया हँसकर बोल उठी—व्रजेन्द्र बाबू, आप इतना सिकुड़े-सिकुड़े क्यों चल रहे थे? जो एक विस्फोटक के आघातों को अपने शरीर पर सहन करने की सामर्थ्य रखता है, नारी क्या उससे भी अधिक विस्फोटक है जिसका स्पर्शमात्र वह सहन करने को तैयार नहीं? मैं पूछती हूँ—क्या यह सत्य नहीं है?

व्रजेन्द्र हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोला—धर्म बिगाड़कर और मुझे लज्जित न करो।

—ओह, जाना—अभया किंचित् रोष में ही आकर बोली—धर्म बिगड़ गया, स्पर्शमात्र से बिगड़ गया धर्म!—ऐसा धर्म आप को ही मुबारक हो, मुझे न चाहिए वह!

अभया कुछ क्षण तक चुप रही, फिर आप-ही-आप बोल उठी—अब तो धर्म बिगड़ गया—यह तो मुझे मालूम हुआ; पर शास्त्र में इसे सुधारने का भी तो विधान है, और सुना है, वह विधान है—प्रायश्चित्त! तो यहाँ से चल कर, सबसे पहले, अपना प्रायश्चित्त कर लीजिए, तब कहीं अन्न-जल कीजिएगा। नहीं, क्यों?

—शायद!

—यानी?

—यानी यह कि सोचूँगा, मुझे क्या करना चाहिए और कब करना चाहिए, करना भी चाहिए या नहीं करना चाहिए!

अभया व्रजेंद्र के उलझे उत्तरों को सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ी और उसी खिलखिलाहट को लिये हुए वह बोल उठी—इतना साधारण-सा प्रश्न आपके लिए इस तरह का दुरूह हो उठेगा—मैं नहीं जानती थी! जो स्वयं कर्मठ है, वह कभी-कभी इतना कमजोर भी हो उठेगा—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण स्वयं मेरे सामने आया। ऐसे देवता को मेरा नमस्कार.........

—नमस्कार स्वीकार है!—हँसते हुए ही व्रजेंद्र बोल उठा—कमजोर होना अस्वाभाविक नहीं है, अभया देवी! फिर मैं तो एक क्षुद्र मानव प्राणी मात्र हूँ!

वे दोनो आश्रम के निकट आ गये थे, दूर ही से दीख पड़ा कि आश्रम के दरवाजे पर किटसन लाइट का तेज प्रकाश फैला है और उस प्रकाश में अब भी कुछ व्यक्ति राह की ओर प्रत्याशित दृष्टि से देख रहे हैं।

षोडश परिच्छेद

युद्धजन्य परिस्थिति से देश की दशा में असाधारण परिवर्तन आ गया है; पर यह परिवर्तन दिनानुदिन भयंकरता की ओर अग्रसर होता जा रहा है। फसलें अब भी उतनी ही पैदा होतीं जितनी धरती माता पहले से ही देती आ रही है; पर ये फसलें तैयार भी न हो पाती कि दुगुने-तिगुने दामो पर खलिहानों में ही खरीदार मौजूद ! मवेशियों का भी वही हाल है। पचास-पचहत्तर से सवासौ, सवासौ से पौने दोसौ, और इसी तरह के अनुपात में उनके दाम बढ़ते जा रहे हैं। बेचने वाले बेचने के वक्त नहीं सोचते कि इसका अंतिम परिणाम कहाँ जाकर टिकेगा ! काश्तकारों को देखने में रुपए तो बहुत मिल रहे हैं; पर उन्हें उनसे भी अधिक जीवन की अन्य उपयोगी वस्तुओं के खरीदने में लगाने पड़ रहे हैं। कोई चीज ऐसी नहीं जो कहने को भी सस्ती कही जा सके। कोई चीज ऐसी नहीं जो सुलभ हो ! गृहस्थ स्वयं अन्न पैदा करते हैं, पर उनके घर अनाज ठहर नहीं पाते। भूख की ज्वाला बढ़ रही है, मजदूर और नौकरी पेशा के आदमी संत्रस्त हो रहे हैं, साधारण स्थिति के आदमी समझ नहीं पाते कि वे आगत भविष्य का किस तरह सामना कर सकेंगे। इसी समय विश्वव्यापी युद्ध के लिए आदमियों की मांग होती है, सरकार की ओर से उन्हें अच्छे-अच्छे प्रलोभन दिए जाते हैं, स्थान-स्थान पर इस कार्य के लिए अनेक

रूप में एजेंट रख छोड़े गए हैं। वे या तो उपाधिधारी रईस, जमींदार या बड़े रुतबे के व्यक्ति है; या छोटे-बड़े ओहदे के हाकिम, जो देहातों में जाकर अमन-सभा करते हैं, लोगों को युद्ध के लिए प्रलोभित करते—उन्हें बढ़ावा देते और उनका उत्साह बढ़ाते है। उनकी दोधारी तलवार चल रही है। एक ओर मँहगी, दूसरी ओर प्रलोभन; एक ओर अकाल का ताण्डव, दूसरी ओर युद्ध में सम्मान-प्रद नौकरियों में मनचाहे वेतन और अन्य सुविधाएँ प्राप्त! फिर भारतवर्ष जैसा धर्मप्राण देश, जिसकी दृष्टि में सम्राट् इस भू-पर स्वयं जाग्रत भगवान समझा जाता है!! तो फिर क्यों न जाग्रत भगवान के आह्वान पर वे अपने को पूर्णतः न्यौछावर करने को तैयार हो! एक पंथ दो काज! सेवा की सेवा भी और जीवन की मधुमयी आकांक्षाओं को फलने-फूलने का सुन्दर सुअवसर! इधर अकाल सिर पर, अन्न के लिए जहाँ त्राहि-त्राहि मची हुई है, मुश्किल से जो एक संध्या भोजन कर पाता है, उसके लिए क्या बुरा है! यदि वह अपने आप में शारीरिक शक्ति रखता है तो युद्ध का आनन्द वह क्यों न ले भला! और इस तरह जो जहाँ है, वहीं से युद्ध की ओर दौड़ पड़ा है। कालेज के शिक्षार्थी, स्कूल के विद्यार्थी, डाक्टर-कंपाउंडर, ओवरसियर, लोहार, बढ़ई, मजदूर, धोबी, चमार—आखिर सभी की तो जरूरत है युद्ध-क्षेत्र के लिए! लेफ्टिनेंट से लेकर युद्ध-मैदान के कुली तक—आदमी चाहिए—बस आदमी चाहिए, किसी भी रूप में, किसी भी शकल में, किसी भी वय के हो, किसी भी अवस्था के—आदमी चाहिए और इस तरह के आदमी दौड़ पड़े हैं—युद्ध-क्षेत्र की ओर, घर की माया-ममता भुलाकर!! यह सर्वनाशी युद्ध कितना प्रलयंकर है—कितना भयंकर·······

मगर जो मनस्वी हैं, जो विचारक हैं, जो बुद्धि-जीवी हैं, वे अत्यंत चिंतित हो उठे हैं। उनकी चिंता साधारण नहीं, अतल तलस्पर्शी है। वे देखते हैं वर्त्तमान को ही नहीं, आगत भविष्य की ओर, जहाँ पहुँचकर वे पाते हैं कि यह जीवन तो जीवन नहीं है! कुत्ते की मौत मरना ······नहीं, ऐसे तो नपुंसक मरा करते हैं, हिजड़े इस तरह

मरना पसंद करेंगे। मनुष्य तो मनुष्य की ही तरह मरना पसन्द करेगा। मगर मनुष्य मरे ही क्यो इस तरह? क्यो न वह अपना विक्षोभ प्रकट करे उसके प्रति, जो उसे बाध्य करता है मरने के लिए? नहीं, वह विक्षोभ प्रकट करेगा ही, विद्रोह करेगा ही, क्राति लायगा ही! आखिर क्राति का जन्म भी इसी अवस्था में—इसी परिस्थिति में ही तो होता है! विद्रोह का उद्गम भी तो वही जगह है, जहाँ मनुष्य को बर्बर बनाने की चेष्टा की गई है! सहन करने की भी एक सीमा होती है। और उसी के भीतर वह एक गुण समझा जा सकता है; पर जब सहना अशक्य हो उठता है तब वहाँ कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार नहीं रह जाता। पाप-पुण्य का विचार नहीं रह जाता। उस समय रोष उबल पड़ता है, फिर उस अवस्था में किसे इतनी फुर्सत है कि वह सोच देखे—वह क्या है और उसकी शक्ति कितनी है! वह कूद पड़ता है मैदान में, फल चाहे जो हो—उस ओर उसका ध्यान ही कहाँ रह जाता··········

वे मनीषी—वे द्रष्टा अपने अन्तर्चक्षुओ के सामने पाते हैं कि क्षुब्ध पृथ्वी की बुभुक्षा इतनी प्रबल हो उठी है कि वह बलिदान लेकर ही शांत होगी, मगर बलिदान का आह्वान किस रूप में हो—इसी ओर उनका ध्यान लगा है। वे चाहते हैं, क्यों न मूल में ही कुठाराघात किया जाय। न मूल रहेगा, न शाखाएँ पनपेंगी! पर मूल का विनाश क्या इतना संभव है?······नहीं, संभव असंभव का विचार मनस्वी नहीं किया करते, वे तो केवल करना जानते हैं, जो उनकी दृष्टि में महत् है, जो उनकी दृष्टि में विराट है। उनकी केवल अपने लक्ष्य की ओर दृष्टि रहती है, केवल दृष्टि ही नहीं, उनकी युक्ति भी रहती है और वे अपनी दृष्टि और युक्ति से उसे संपन्नता की ओर ले जाने को तत्पर हो उठते हैं। आज देश की आत्माओ का एक ही स्वर है, एक ही ध्येय है ····अतीत का इतिहास उन्हें यही बताता है······ वर्त्तमान की परिस्थिति उन्हें ऐसा करने को सतत लाचार कर रही है—आगत की आशंका उनके मस्तिष्क में उत्तेजना भर रही है······

यही संचित विस्फोटक है, जो फटना चाहता है, जिसकी ओर मनीषियों का ध्यान जा लगा है। डा० स्वरूप यही सोचते हैं। व्रजेन्द्र भी यही सोचता है, उसकी कर्मपद्धति अवरुद्ध हो गई है। वह अपनी दृष्टि के सम्मुख पाता है कि द्रुतवेग से अचानक जो भयंकरता आ गई है, उसका हेतु क्या है? हेतु को ही वह पकड़ना चाहता है, हेतु पर ही वह प्रहार करना चाहता है। वह समझ नहीं पाता— जो देश इतने धन-धान्य से परिपूर्ण हो, उसी देश का निवासी आज अन्न-वस्त्र के लिए संत्रस्त क्यों हो उठे! ओह, अन्न के अभाव में कदन्न का ग्रहण करे, पेड़ों के पत्ते, शाक और जंगली फल! अपनी लज्जानिवारण के लिए वह आकाश की ओर करुण दृष्टि से निहारे! यह विधाता का कितना क्रूर प्रदर्शन है! कितना वीभत्स, कितना असंतोषप्रद, कितना घातक! ओह, कितना घातक!!

व्रजेन्द्र गंभीरता पूर्वक इन बातों पर विचार करता है, वह शिथिल होकर रह जाता है। उसकी प्रवृत्ति पंगु होकर रह जाती है, उसका मस्तिष्क जड़ हो उठता है। आश्रम उसका अब भी चल रहा है, पर उसकी आत्मा आज मूर्छित हो पड़ी है, उसमें न चेतनता रह गई है, न कुछ जीवन ही रह गया है, न उसमें हँसी-खुशी के कल्लोल का चिह्न दीख पड़ता है। जो गाँव सदैव प्रफुल्ल-प्रसन्न दीख पड़ता था, वहीं विशृंखलता छा गई है! यह विशृंखलता कहाँ जाकर अंत लेगी, आज वह कुछ सोच नहीं पा रहा!......

तभी व्रजेन्द्र को निमत्रण मिलता है। यह निमंत्रण आनंद-कौशल की ओर से आया है। सरकार की ओर से उसे उपाधि मिली है, जिसके उपलक्ष्य में वह हाकिम-हुक्कामो और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आमंत्रित कर प्रीति-भोज का उत्सव मनाने जा रहा है। उसमें डा० स्वरूप निमत्रित किए गए हैं, राजाबाबू निमंत्रित किए गए हैं। अभया आमंत्रित की गई हैं और खुद वह व्रजेन्द्र भी आमत्रित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त जिला के ऊँचे अफसर और नगर के गण्यमान्य सज्जन आमंत्रित हुए हैं!.........

व्रजेन्द्र निमंत्रण-पत्र पाकर एक बार उसे अथ से इति तक पढ़ जाता है, उसकी दृष्टि में एक ओर यह उपाधि-स्वीकार-जनित उत्सव और दूसरी ओर जनता में त्राहि-त्राहि की वीभत्स पुकार स्वयं विभीषिका के रूप में उपस्थित हो उठती है। उसे घृणा हो उठती है, उसकी आकृति पर लालिमा की सघन रेखा दौड़ पड़ती है, उसका सारा शरीर झनझना उठता है और विद्रूप की हँसी हँसकर वह आप-ही-आप बोल उठता है—यह आमत्रण नहीं, मानवता का अपमान मात्र है...........नहीं, वह इसमें सम्मिलित नहीं हो सकता.........

तभी उसके सामने मगल आता है—वह मंगल जो जेल की सजा भुगत कर अभी-अभी लौटा है, जो चंपी का पति है, जो किसी समय जुआड़ी और शराबी रह चुका है। वह आकर व्रजेन्द्र को नमस्कार कर अपना परिचय आप सुना जाता है, फिर विनम्र स्वर में कहता है—मैं स्वयसेवक होना चाहता हूँ, बाबूजी, मैंने शराब पीना छोड़ दिया है, क्या मुझे अपने दल में न रख सकेंगे?

व्रजेन्द्र मंगल की ओर देखता है—देखता है कि वह युवक तो है, पर उसकी आकृति में यौवन नहीं, दीनता की भयंकरता है, फिर भी उसकी वाणी में दृढ़ता और आँखों में तीक्ष्णता है। व्रजेन्द्र कुछ क्षणों तक उसकी ओर देखता रह जाता है और वह साधारण स्वर में बोल उठता है—क्या तुम स्वयसेवक बनना चाहते हो?

—हाँ, बाबूजी!—मंगल उल्लसित होकर बोल उठता है—मेरी बड़ी साध है कि मैं स्वयसेवक बनकर कुछ सेवा कर सकूँ। मैं अबतक गुमराह था, मैंने बड़े-बड़े पाप किए, मैंने चोरी की, दूसरों को ठगा, शराब पी और जुए खेले! ये ऐसी लत थीं जिनने मुझे आदमी की सूरत मे न रखा। मैंने शादी की, एक छोटी सी लड़की को घर लाया, उसे सुख तो क्या, कभी उसको भर पेट अन्न तक न दे सका! फिर ऊपर से मार, गालियाँ, जाने कैसे-कैसे अत्याचार न किए उस पर!......मगर आज वही है जो मेरे लिए एक बड़ा

सहारा है। जेल काट आया हूँ, चारों ओर से मुझ पर घृणा बरस पड़ी है, कोई मेरी ओर देखने को रवादार नहीं—कोई हँसकर मेरा पूछने वाला नहीं; मगर एक मेरी रानी चपी है, जिसने मुझे हँसकर ही अपने घर मे जगह नहीं दी है; बल्कि जिसने फूलो के हार और चंदनो से आनंद मे भरकर मेरी आरती भी उतारी है, जिसने मुझसे शपथ खिलाई है, जिसने मुझे आपके पास भेजा है। हाँ, बाबूजी, सच कहता हूँ, आज मुझे शरण दीजिए······शरण दीजिए और कोई है नहीं जो मुझ-जैसे पापियों को आज अपनी छाया में शरण देगा।

वृजेन्द्र उसके एक-एक शब्द को सुनता रहा और खूब ध्यान से सुना। उसे उसकी बातें असाधारण-सी लगीं। एक जुआड़ी जीवन भर शराब की लत पाले, जो अपनी जेल की सजा भुगत कर अभी-अभी वहाँ से लौटा है, वह देश-सेवा के लिए अपने आपको स्वयसेवक बनाना चाहे—अवश्य वह असाधारण हो तो हो सकता है! ब्रजेन्द्र ने फिर से उसकी ओर एक बार ताका और वह केवल उसकी दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए बोल उठा—स्वयंसेवक बनने से तुम्हारा कुछ विशेषलाभ तो होगा नहीं। तुम क्यों नहीं फौज में भर्ती हो जाते हो? फौजी दफ्तर खुला हुआ है, लोग धड़ाधड़ भर्ती हो रहे हैं। उन्हे अच्छी तनख्वाह दी जाती है, पहनने को काफी कपड़े, बूट-पतलून, खाने को गोश्त, चाय-टोस्ट-रोटियाँ, सिगरेट, सभी तरह के आराम······उनके घरो की हिफाजत····· और यहाँ तुम्हें क्या मिलेगा? दिन भर चक्कर मारोगे, सूखी-रूखी दो एक रोटियाँ·········परिश्रम ज्यादा, मिलना कुछ नहीं······ अच्छा तो यही हो कि तुम फौजी-दफ्तर जाओ······

—फौजी-दफ्तर!—मंगल हँस पड़ता है और हँसते-हँसते ही बोल उठता है—मजाक न कीजिए, बाबूजी, हम गरीब हैं सही, हम पापी और जुआड़ी-शराबी भी रहे हैं जरूर, मगर आदमी तो हैं! आदमी सिर्फ पेट भर लेना ही नहीं चाहता, वह कुछ और भी चाहता

है। फौज में भी मैं नाम लिखा सकता था, जहाँ मुझे रोटियाँ मिल सकती हैं, जहाँ मुझे रुपये मिल सकते हैं, जहाँ मुझे पतलून और बूट भी मिल सकते हैं, मगर मैं खुद उसकी फौज में शामिल होऊँ, जो हम पर सितम ढाती है, जो हमें आदमी नहीं, गुलाम समझती है, जिसे हमारे जीने की जरा भी परवा नही, जो हमें सब तरह लूटती है! शराबी मुझे किसने बनाया? जुआड़ी हम क्यों बने? हम आज इतने लाचार क्यों है? हम अन्न उपजाएँ, मगर हम खुद उसी अन्न के लिए तरस-तरस कर मरें·······आज सरकारी गुदामों में लाखो मन गल्ले सड रहे हैं, मगर हम चार दाने के लिए तरसते हैं! ऊँचे दामों पर गल्ले वे ही खरीद सकते हैं, जिनके घर रुपए की कमी नहीं, जो रुपए खुद बनाते हैं। उनका हाथ कौन पकड़ता है? वह नौ की चीज नब्बे में खरीदे तो उसे घाटा क्या है? जो अपने इमान को इतने सस्ते में लुटा सकती है, आप उसी का साथ देने की मुझे सलाह दे रहे हैं बाबूजी! आप चाहें मेरी मजाक कर सकते है, मगर भगवान के नाम पर ऐसी सलाह तो आप दें ही नहीं! मैं जेल देख आया हूँ! इमान्दारी से जब खाना न जुटा सकूँगा तो मेरा रास्ता खुला हुआ है, खुद उसके घर सेंध डालूँगा, लूटूँगा और अगर बच गया तो अच्छा ही, और अगर न भी बच सका तो उसके लिए मलाल भी नहीं रह जाएगा—जेल की सिद्दतों को हँसते-हँसते काट लूँगा! आखिर सारा हिन्दुस्तान जेल ही तो है—बड़ा-सा जेल! फिर छोटे-से जेलखाने से कौन डरता है? डर था मगर अब नहीं रहा—मैं उसे देख चुका हूँ···

मंगल बोलकर चुप हो गया, वह जाने कुछ और क्या कहा चाहता था, पर वह कह नहीं सका। व्रजेन्द्र ने उसकी ओर देखा और पाया कि उसने जो कुछ कहा है, उसमें उसके हृदय का संपूर्ण योग है, वह सत्यता से परिपूर्ण है! दंभ का जरा भी नाम नहीं! जो कुछ कहा है—स्वाभाविक रूप में कहा है, जो उसके अंतर की व्यथा से फूट निकला है। फिर भी व्रजेन्द्र उसकी ओर सदय न हुआ, उसने पूछा—तो क्यों नहीं, और कोई जगह नौकरी कर लेते?

—नौकरी !—मंगल हँस कर ही बोला—नौकरी कर सकता था, मगर एक तो मैं नौकरी पर टिक नहीं सकता, दूसरे कोई मुझे नौकर रखना ही नहीं चाहेगा। आप ही बतलाएँ, जिसके सिर कलंक का टीका एक बार लग चुका है, उस टीका को पचाना साधारण आदमी का काम नहीं हो सकता। वह तो वही पचा सकता है, जिसके सामने अमृत और विष एक जैसा है, जो विष को ही गले से लगा सकता है और अमृत-दान कर दे सकता है। वह शंकर हो सकता है, जिसके रंगी-भंगी, भूत-दूत सहचर हैं। मैं उसी शंकर की शरण में आ गया हूँ। मेरा सौभाग्य, अगर वह मुझे स्वीकार कर अपनी शरण में स्थान दें तो मुझे उसके लिए खुशी होगी, और अगर वह न भी स्थान दें तो समझूँगा कि मैं उसके योग्य अभी नहीं बन पाया; मैं उस योग्य बनने की कोशिश करूँगा—कोशिश कर देखूँगा, अगर वैसा बन सका तो अच्छा ही, नहीं तो उसी के नाम पर मर मिटूँगा। मिटना तो है ही, फिर कुत्ते की मौत मरने से यह तो कहीं अच्छा रहेगा। जिस नाम को लेकर मरूँगा, उसकी लाज तो उसके हाथ में रहेगी ही, फिर मुझे दुख क्या ?......तो क्या मैं चलूँ, बाबूजी ?

इस बार व्रजेन्द्र को लगा कि पश्चाताप की अग्नि में घुलकर जो पवित्र हो चुका है, वह अतीत में चाहे जैसा रहा हो, वह त्याज्य नहीं, उसका स्थान सुरक्षित रहना ही चाहिए। ऐसे ही व्यक्ति से उसका मिशन चल सकता है, ऐसे ही व्यक्ति उनके गाढ़े वक्त पर काम आ सकते हैं। व्रजेन्द्र ने फिर से एक बार उसकी ओर दृष्टि डाली और प्रसन्न होकर बोल उठा—अब जाने की तुम्हें जरूरत नहीं है। यह आश्रम तुम्हारा है, तुम रह सकते हो, तुम्हारा नाम स्वयं-सेवक की श्रेणी में लिख लिया गया। जो आदेश होगा, करोगे और सदैव इस बात का ध्यान रखोगे कि तुम भारतमाता के चरणों में अपने को अर्पण कर चुके हो, उसकी लज्जा तुम्हारी लज्जा है, उसका सम्मान तुम्हारा सम्मान है......

—बस, मैं निहाल हो गया बाबूजी, निहाल हो गया !—मंगल प्रसन्न होकर बोल उठा—मुझे, बस, और कुछ न चाहिए। मैं आपके हाथों अपने को सौंप चुका हूँ, सौंप चुका हूँ इसलिए कि मैं आदमी बनूँ। मैं दूसरी जगह भी रह सकता था, मगर मैं आदमी बन नहीं सकता था, वहाँ मेरी प्रवृत्ति फिर उभर सकती थी, पर मैं शपथ खाकर कह सकता हूँ कि आप जैसे महान व्यक्ति के निकट मैं आदमी बनकर ही रहूँगा। यही मुझे आशीर्वाद चाहिए बाबूजी, एक बार मेरे सिर पर आप अपना हाथ रख दीजिए, रख दीजिए बाबूजी······

और मंगल अपनी जगह से उठकर व्रजेन्द्र के पैरों पर सिर झुकाए पड़ गया। व्रजेन्द्र अपने आप में सजग हुआ और सजग होकर बोल उठा—यह क्या करते हो मंगल ? यह उचित नहीं, यह तो दास्यवृत्ति है, यह ठीक नहीं। हम भाई-भाई हैं, गले-गले मिल सकते हैं।

और व्रजेन्द्र ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए उसे उठाकर अपने गले से लगाते हुए कहा—मंगलमय प्रभु का आशीर्वाद और शुभाकांक्षा सदा तुम्हारे साथ रहेगी मगल ! चलो, उठो, भोजन कर लो, मैंने भी अभी नहीं किया है।

व्रजेन्द्र उठकर भोजनशाला की ओर चल पडा, मंगल भी उसके साथ-साथ चला। आज उसके आनंद का क्या कहना ? कौन कह सकता है कि यह वही मंगल है जो जुआड़ी और शराबी रह चुका है·········जो जेलखाने से सजा भुगतकर अभी-अभी लौटा आ रहा है·······

सप्तदश परिच्छेद

अभया इन दिनों गाँव से बाहर-बाहर ही रही, इसलिए ज्योंही वह उधर से लौट आई, त्योंही उसे मालूम हुआ कि राजाबाबू के घर से उसकी भाभी ने उसकी भेंट चाही है—यह समाचार खुद डा० साहब ने उसे सुनाया था। अभया आज उसीसे मिलने को चल पड़ी है; पर उससे मिलने के पहले, रास्ते में ही एक आदमी से भेंट हो गई जो पड़ोस के गाँव से उसी के पास आ रहा था। उसने बड़े विनम्र होकर नमस्कार किया, फिर एक छोटा-सा पुर्जा उसके हाथ पर डालते हुए कहा—बाबू ने दिया है आपको देने, मैं आपके ही पास जा रहा था !......अभया ने उसे पढ़ा, कुछ क्षण तक सोचती रही, फिर आप ही बोल उठी—अभी तुम्हें कहाँ जाना है ? क्या लौट जाओगे ?

—हाँ, मुझे लौट ही जाना है, फिर बाबूजी जहाँ कहीं कहेंगे जाने, जाऊँगा !

—अभी क्या उनसे तुम्हारी भेंट होगी ?

—शायद हो भी सकती है।

—अगर भेंट हो तो कह देना—मैं अभी-अभी वहीं चली, जहाँ के लिए उन्होंने लिखा है ! मगर, इतनी दूर पैदल तो जाया नहीं जा सकता, इसलिए सवारी का इन्तजाम तो मुझे कर लेना ही होगा !...

—अच्छा, तो जाओ।

अभया बोलकर राजाबाबू-हवेली की ओर चल पड़ी और वहाँ पहुँचकर सीधे राजा बाबू के कमरे में गई, जहाँ वह मसनद के सहारे लेटे हुए सटक पी रहे थे। राजा बाबू ने अभया को अपने सामने आते पाकर कहा—आओ, आओ, अभया बेटी, इधर तो तुमसे भेंट ही नहीं होती! इतने काम में फँसी रहती हो कि जरा भी तुम्हें अवकाश नहीं मिलता!··· ··मगर तुम अभी आई कैसे बेटी?

—अभी तो जरूरत से ही आई हूँ, चाचाजी! अभयपुर के ठाकुर साहब के घर डिलीवरी होनेवाली है, पर हो नहीं रही है, बड़ी तकलीफ है, जहाँ मेरी खास जरूरत है। मुझे रास्ते में खबर लगी, सवारी मुझे चाहिए···इसके बिना तो इतनी दूर जाया नहीं जा सकता···

—सवारी!—राजाबाबू ने दरवान को बुलाते हुए अभया से कहा—सवारी का इन्तजाम अभी तुरत हो जाता है, बेटी, बैठो तबतक···

—हाँ, तबतक चाचीजी से मिल लेती हूँ, सवारी ठीक हो जाय तो कहला दीजिएगा।

—कहलवा दूँगा—राजाबाबू बोले, अभया बाहर निकलने को हुई तब फिर वे बोल उठे—अरी बेटी, जरा सुन तो जाना!

अभया उल्टे पाँव तुरत लौट कर बोली—क्या है चाचाजी?

—तुमने मृणाल का समाचार तो शायद नहीं सुना है?

—नहीं, क्यो ठीक है न चाचाजी!

हाँ, ठीक ही है; मगर जमाई बाबू को टाइफायड हो गया है, आज इक्कीस दिन हो रहे हैं। मृणाल को चिट्ठी आई है, उसने तुम्हें भी याद किया है। मैंने धीरू को वहाँ भेज दिया है देखने······ जाओ न भीतर, चिट्ठी तुम खुद से देख लेना।

—टाइफायड!—अभया विस्मित होकर बोल उठी—सिरियस टाइप की तो नहीं है चाचाजी? और कोई कम्प्लिकेशन?

—ऐसा तो कुछ साफ नहीं लिखा है, बेटी, मगर इतना जरूर मालूम पड़ता है कि मृणाल बहुत ही घबराई हुई है।

—अच्छा तो मैं भीतर चलकर चिट्ठी देखती हूँ—कहती हुई अभया भीतर आई, और आती हुई सीधे अपनी भाभी के कमरे में दाखिल हुई; पर कमरा यों ही खाली था, वह बरामदे पर आकर खड़ी हुई और पुकार उठी—भाभी, ओ भाभी !

तभी दूसरी ओर से भाभी आती हुई दीख पड़ी और आते ही बोली—ओह, बड़ी कृपा की, अभया बहन !

—कृपा नहीं—अभया उसके साथ कमरे की ओर बढ़ते हुए बोल उठी—आपने बुलाया था न भाभी, पिताजी से मालूम हुआ। मै बाहर चली गई थी ! जैसे ही उन्होंने कहा—मैं चल पड़ी। कहिए, क्या आज्ञा है ?······हाँ, भाभी, क्या इधर मृणाल की चिट्ठी आई है ?

—हाँ, आई है, तभी तो आपको बुलाया था अभया बहन !—कहकर भाभी पलंग के सिरहाने की ओर बढ़ी और तकिए के नीचे से लिफाफा निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—यही है अभया बहन, वह बेचारी बड़ी घबरा उठी है, वे बीमार जो हैं !

अभया पत्र को एक साँस में पढ़ गई और उसे शेष करते हुए बोली—हाँ, सचमुच घबरा गई है, भाभी ! और घबराना स्वाभाविक है भी ! जिसने बीमारी कभी देखी नहीं है, उसके सामने जब वह पहुँचती है तब बड़ा विकराल रूप लेकर पहुँचती है, फिर ऐसे बहुत कम लोग हैं जो धीरज रखकर उसका उपचार करा सकते हैं। मृणाल तो अभी बच्ची है···मैं देखती हूँ, वहाँ मुझे चलना होगा ! हाँ चलना ही होगा, भाभी, नहीं तो मृणाल क्या कहेगी, क्या समझेगी ?

—जभी तो आपके भाई साहब आपको ढूँढ़ रहे थे, सुना कि आपको अभी बाहर से आने में देर है, वे ठहर न सके। उन्होंने भी कहा था—अभया आवे तो कह देना। अगर आप जा सकें तो मृणाल को बड़ा सहारा मिलेगा। यों तो वहाँ डाक्टरों की कमी होगी नहीं, मगर आपका जाना उनके लिए एक बहुत सहारा होगा।

अभया कुछ क्षण तक चुप रही, फिर आप-ही-आप बोल उठी—हाँ, बहुत बड़ा सहारा मिलेगा, मैं जरूर जाऊँगी भाभी ! अगर मैं

अपने आपके लिए भी काम में न आई तो मेरे इतने दिनो का परिश्रम व्यर्थ ही समझिए !......मगर मैं अभी ठहर नहीं सकती, भाभी, अभय-पुर के ठाकुर के घर डिलिवरी होने को है; पर सुना, हो नहीं रही है, वहाँ हमारी सख्त जरूरत है, अभी ब्रजेन्द्र बाबू ने समाचार दिया है ! गाँव की दगरिनें किसी काम की नहीं........

दगरिनो का नाम सुनकर कुछ क्षणो के लिए भाभी की आकृति सफेद हो उठी, वह भीतर-ही-भीतर काँप उठी। आगत भविष्य की आशंका से वह भयभीत हो उठी; पर वह स्वयं कुछ न बोल सकी।

अभया ने उसकी आकृति देखी, उसे समझते देर न लगी। वह तभी बोल उठी—एक दिन मुझे आपके घर इसी उद्देश्य से आना पड़ेगा, भाभी, उस दिन मैं दिखलाऊँगी कि यह डाक्टरी पेशा क्या है ? आपने अबतक डा० अभया को देखा तो नही है ?

—हाँ, देखा तो नहीं है—भाभी निश्चितता की साँस लेकर प्रसन्न-मुख बोल उठी—मगर डा० अभया को जानती अवश्य हूँ और यह भी जानती हूँ कि वह अपनी कला में उतना ही दक्ष है, जितना वह और कामों में।

इसी समय स्वयं राजाबाबू भीतर आते हुए दीख पड़े, अभया ने कमरे से ही उन्हें भीतर आते हुए देखा, वह उठकर खड़ी हुई और भाभी से बोली—मैं अब ठहर नहीं सकती, शायद सवारी ठीक हो गई। चाचाजी खबर देने स्वयं आ रहे हैं। वह झटपट बाहर निकली और निकलते-निकलते ही बोल उठी—सवारी ठीक हो गई चाचाजी ?

—हाँ, यही खबर देने आ रहा था, अभया बेटी—राजा बाबू अपनी जगह से ही बोल उठे।

इतने में ही चाची भी अपनी जगह बैठी दीख पड़ी। अभया उनकी ओर बढ़ी और उसके चरणों को स्पर्श करने के लिए जैसे ही वह झुकी, वैसे ही चाची बोल उठी—कब आई, अभया बेटी !

—अभी-अभी आई थी, चाचीजी, और अभी तुरत चल रही हूँ। मुझे एक आवश्यक काम से जाना है बाहर! यहाँ सवरी लेने आई थी! जिसके लिए खुद चाचाजी खबर देने को आ खड़े हैं।

—तो क्या ठहर नहीं सकोगी?—चाची बोल उठी—मृणाल की चिट्ठी आई है, लल्लन वहीं गया है!

—चिट्ठी अभी-अभी देखी है, चाचीजी!—अभया ने निश्चिंत होकर कहा—मगर डरने की बात नहीं है। मृणाल घबरा उठी है। छुट्टी पाते ही मैं जाऊँगी वहाँ। मैंने निश्चय कर लिया है।

—हाँ, अभया बेटी—चाची उदास होकर बोल उठी—तुम्हारा जाना ही ठीक होगा! कब क्या हो जाय, कौन कह सकता है!

—अच्छा ही होगा, चाचीजी। तुम आशीर्वाद करो कि वे अच्छे हो जायँ!

—आशीर्वाद!—चाची गम्भीर होकर बोल उठी—मैं तो चिट्ठी पाकर तभी से दुर्गा-दुर्गा कर रही हूँ, अभया बेटी! मैं जानती हूँ कि दुख क्या है—और संतान का दुख······ओह, संतान का दुख माँ-बाप के लिए कितना असह्य होता है, बेटी, यह तो खुद दुर्गामाता ही जानती हैं।

—सब ठीक ही होगा, चाचीजी, इतना घबराने से कैसे काम चलेगा!—अभया बोलती हुई बाहर की ओर चल पड़ी, तभी चाची बोल उठी—लौटती बार मिलकर जाना बेटी, तुमसे मुझे बड़ा बल मिलता है, जरूर मिलती जाना·········

—हाँ, जरूर मिलकर ही जाऊँगी चाचीजी!—अभया बोलकर चल पड़ी।

वह सवारी पर बैठी, घर गई, फिर आवश्यक चीजों को लेकर सवारी पर आ बैठी। सवारी तेजी के साथ अभयपुर की ओर चल पड़ी।

अभयपुर का ठाकुर एक प्रतिष्ठा-सम्पन्न और प्रसिद्ध व्यक्ति है। अभया जैसे ही पहुँची, दरवाजे पर बहुत आदमी बैठे हुए दीख पड़े;

पर सब-के-सब विषएण मुख-मुद्रा में बैठे थे। अभया को लगा—जैसे चारों ओर की अवसन्नता वहीं आकर इकत्रित हो उठी हो। अभया उतरी और दरवाजे की ओर चल पडी, तभी ठाकुर ने अभया की ओर देखा, उनके जान में जान आई, रुकी हुई साँस जैसे चलने को हुई। बैठे हुए अचचल जन-समूह में चचलता की एक लहर दौड़ पड़ी, सभी की दृष्टि उसकी ओर खींच आई, तभी अभया बोल उठी—सूतिका की क्या हालत है?

—बेचैन है देवीजी, बच्चा उलटा पड़ गया है, कोई तदवीर काम नहीं आती!

—खैर, कोई चिंता नहीं, चलिए भीतर!— अभया निर्द्वंद्व बोल उठी—गाड़ी पर सामान रखा है, मंगवा लीजिए!

अभया आगे की ओर बढ़ चली, एक आदमी गाड़ी की ओर दौड़ा, ठाकुर साहब अभया के साथ भीतर की ओर चले। अभया ने भीतर आकर देखा कि सूतिका-गृह के आस-पास बहुत-सी औरतें विचित्र मुख-मुद्रा में खड़ी है। भीतर से रह-रह कर भयंकर चीख की आवाज आ रही है। अभया निर्भय मुद्रा में वहाँ आ पहुँची, सब की दृष्टि उस ओर गई, तभी एक अधेड़ स्त्री उसके पैरों से लिपट कर बोल उठी—बहू मर रही है, बचाओ, माँ!

—ओह, घबराने की जरूरत नहीं, चलिए भीतर!—अभया बोलकर भीतर घुसी, और वहाँ की हालत देख कर बोल उठी—तुम सब-की सब बाहर जाओ, यहाँ किसी के रहने की जरूरत नही, आप रह सकती हैं! यह आग की बोरसी बाहर कीजिए, धुएँ से दम घुट रहा है। हाँ, यह खिड़की भी खोल दीजिए! इतना अंधेरा······अंधेरा नहीं प्रकाश चाहिए·········

सभी औरतें बाहर निकल आईं, भीतर वह रह गई, रह गई घर की वह और जच्चा! अभया ने गरम पानी तैयार करने का आदेश किया, और वह अपने उपचार में लग गई। वास्तव में जच्चे की अवस्था बड़ी ही दयनीय थी; फिर भी अभया को अपने बल

पर भरोसा है, अपने कौशल पर अटल विश्वास है ! वह अपने कार्य में सिद्ध-हस्त रह चुकी है ! वह अस्त्रोपचार करती है, उसमें हस्त-लाघवता दिखलाती है और करीब आध घंटे के भीतर ही वह अपने काम में सफलीभूत होती है। शिशु भूमिष्ठ होकर रो पड़ता है; मगर जच्चा अचेत है.........

मगर अभया सचेष्ट है, समयोपचार चल रहा है। इस बार जच्चे ने अपनी आँखें खोलीं और सामने बच्चे को रोते हुए पाया। अभया इस बार मुस्कराई और मुस्कराते हुए बच्चे को गर्म-गर्म पानी से नहलाते हुए बोली—बच्चा हृष्ट-पुष्ट है, इसने आपको बड़ा तंग किया, नहीं क्यों ?

जच्चा बोल न सकी, पर उसकी आँखें सजल-उज्ज्वल होकर स्वयं बता रही थीं कि वे उसकी कितनी कृतज्ञ हैं !

तभी वह अधेड़ स्त्री बोल उठी—तंग तो इसने जरूर किया है—माँ को ही नहीं, घर भर को भी, आज तीन दिनों से दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा ! कितनी मिन्नतें न मानीं, कितने ओझा-गुनी के दरवाजे न देखे, कितनी दाई-दगरिनों की बाँहें नहीं पकड़ीं, मगर सभी बेकार हुए ! सच पूछो तो किसी को आपका खयाल ही नहीं आया ! भगवान भला करे, बरज बाबू का, जिन्होंने आपको यहाँ भेजा.......

—मैं तो बराबर काम पर इधर आती थी, खुद आपकी बहू तो हमारे अच्छे काम करनेवालों में हैं ! क्यों रमा, तुम्हें भी मैं याद न पड़ी ?

जच्चा मुस्कराई और मुस्कराती हुई ही धीरे से बोली—नहीं !

—क्यों, नहीं ?—अभया कुछ रुष्ट होकर ही बोली—क्या अब भी याद न रखोगी ?

—याद !—जच्चा लेटे-लेटे ही बोलकर चुप हो रही, फिर मुस्कराकर बोल उठी—शायद !

—खैर, याद न भी रखो, उसके लिए मुझे दुख नहीं—अभया बोली—मगर अभी अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान तो तुम रखोगी ही! मैं एक पुर्जा लिखकर रख छोड़े जाती हूँ, दवा मँगवा लेना, अभी जितना आराम से रह सको, रहो। दो-चार दिनों में ठीक हो जायगा।

अभया घर से बाहर हुई, तभी उसने देखा कि दूसरे घर के बरामदे पर बहुत-सी औरतें इकट्ठी हैं और बीच में ढोलक और झाँझ रखे हुए हैं। अभया उस समूह के निकट आकर हँसती हुई बोल उठी—हाँ-हाँ, बधाई के गीत शुरू करें। अब क्या देर है? फिर मुँह-माँगी मिठाई कैसे मिलेगी। मगर मुझे भूलकर आपलोग अपने आप सभी सफाचट न कर लीजिएगा। इस घर में भूलने की आदत लगी हुई है पहले से ही; इसलिए इनसे आशा तो मुझे बिलकुल नहीं; हाँ, आपलोगों से रख सकती हूँ! अपने हिस्से से ही सही—मुझे तो मिठाइयाँ चाहिए ही·········

—आपकी रमा आपको भूल सकती है—वह अधेड़ स्त्री उसके पास आकर हँसती हुई बोल उठती है—मगर मैं कैसे भूल सकती हूँ आपको, जिन्होंने मेरे आँसू पोंछे हैं, मेरे घर को हँसाया है! अभी बधाई के गीतों का जो समा बँधा है, वह आपकी ही दया से तो! फिर मिठाइयों की कौन-सी बात है! वे तो जब चाहें, आपकी मिहनत की कमाई ही ठहरीं! मैं आपकी खातिर कर ही क्या सकती हूँ, यह मेरी ओर से आप ग्रहण करें······

और अभया ने देखा कि उसके हाथ पर वह घर की मालकिन अशरफी रख रही है! अभया उसे देखकर विचलित नहीं हुई, वह बोल उठी—यह तो मुझे चाहिए ही नहीं, मैं तो मिठाइयों की भूखी ठहरी, मुझे तो वे ही चाहिए!

—उन्हीं के लिए तो दे रही हूँ, रख लीजिए ·····

—हाँ-हाँ, रख लीजिए—जन-समूह की ओर से आवाज आई।

—नहीं-नहीं, मैं आपसे इतना ही नहीं लूँगी—और लूँगी—

अभया तनकर खड़ी हो रही, फिर बोल उठी—क्या आप मुझे इतना ही कुछ देकर टरका देना चाहती हैं ?

—नहीं-नहीं, टरकाने की कौन-सी बात !—घर की मालकिन हँस पड़ी और हँसकर ही बोली—जो भी चाहेंगी, ऐसी कोई चीज नहीं, जो नहीं दी जा सके, मगर मैं गरीब आदमी दे ही क्या सकती हूँ !

—गरीब आदमी हैं आप, तभी तो मैं माँग रही हूँ !—अभया फिर से उसी गंभीरता को लिये हुए ही बोल उठी—आप धनी होतीं तो मैं कुछ नहीं लेती।

घर की मालकिन चिंता में पड़ गई, वह क्या कहे—उसे कुछ सूझ न पड़ा। तभी अभया फिर से बोल उठी—तो क्या कहती हैं, साफ कह दीजिए, मैं समझती हूँ, आप आगा-पीछा कर रही हैं !

—नहीं-नहीं, मैं ऐसा कुछ भी नहीं करती—घर की मालकिन बोली—जो भी आप कहेंगी, मैं दूँगी, जरूर दूँगी।

इसी समय ठाकुर साहब भीतर आए, उनकी प्रसन्न आकृति स्वयं बता रही कि वे अभया के प्रति अपनी कृतज्ञता ही प्रकट करने को आ पहुँचे हैं। उन्होंने देखा कि अभया और घर की मालकिन दोनों दुबिधाओं के बीच पड़ी हुई हैं। वे वहीं खड़े चकित-विस्मित होकर दोनों की ओर देखने लगे। तभी घर की मालकिन अभया से बोल उठी—कहिए न, कह क्यों नहीं रही हैं, अभी तो मालिक भी सामने हैं !

इस बार अभया हँस पड़ी और ठाकुर साहब की ओर देखते हुए बोली—मालकिन की ओर से इनाम में मुझे अशरफी मिल रही है; पर मैं चाहती हूँ कि मुझे और भी कुछ······

—हाँ, हाँ, जरूर मिलेगा, अभया देवी !—ठाकुर साहब हँसकर बोल उठे—मगर कहिए भी तो !

—सच कहते हैं, मिलेगा ?

—जरूर मिलेगा।

—तो मुझे वही बच्चा दे दीजिए, मैं पाल-पोस लूँगी उसे !

ठाकुर साहब खिलखिलाकर हँस पड़े, मालकिन भी हँसी, और बधाई गानेवाला नारी-समूह भी हँस पड़ा। तभी मालकिन हँसते-हँसते बोल उठी—वह तो तुम्हारा है ही बेटी, मगर पालने की इल्लत क्यों पालो, उसे तो तुम इस बूढ़ी पर ही छोड़ दो, जब खेलने-दौड़ने लायक हो जायगा—ले जाना।

—अच्छा तो यह सही—अभया बोलकर फिर से सौरगृह की ओर दौड़ पड़ी और भीतर जाकर अशरफी बच्चे के हाथों थमाकर बाहर आकर बोली—अच्छा तो अब चलती हूँ!

—मगर जलपान तो करके ही जाना होगा!—मालकिन बोली।

—नहीं, अभी तो सीधे घर जाना है, बिना नहाए-धोए यह सब काम तो मैं कर नहीं सकती।

और इस बार अभया तीव्र वेग से बाहर की ओर चल पड़ी। ठाकुर साहब उसके साथ आए, वह गाड़ी में आ बैठी, सामान पहुँचा दिया गया। ठाकुर साहब ने अपनी कृतज्ञता प्रकट की, सवारी चल पड़ी। अभया को जल्द अपने घर पहुँचकर नहाना-धोना था, इसलिए गाड़ी तेज चाल में चल रही थी, पर रास्ते में जब वह दूसरे गाँव से गुजरते समय अपने मन-ही-मन जाने क्या सोचने में डूबी हुई थी तब चंपी अचानक उसके सामने दीख पड़ी और वह पास आकर बोली—आप कहाँ से लौटी जा रही हैं, अभया बहन!

गाड़ी कुछ क्षण के लिए रोक दी गई, अभया हँसकर बोल उठी—अभी-अभी ठाकुर के घर से लौटी जा रही हूँ चंपी! कहो, तुम अच्छी हो?

—हाँ, अच्छी हूँ, अभया बहन!—चंपी ने स्वाभाविक रूप में ही जवाब दिया—अब तो वह जेल से आगए हैं और इधर तो कई दिनों से वह आश्रम में ही रहने लगे हैं। शायद तुमने तो उसे देखा होगा, बहन?

—नहीं, उसे तो मैंने देखा नहीं अबतक, चंपी!—अभया निर्विकार भाव से बोली—मंगल आश्रम में रहने लगा है—वह शराबी? अरी, कहती क्या हो?

—ठीक कहती हूँ, अभया बहन!—चंपी उसी तरह सरल भाव से कहती गई—कल रात घर आये थे, वह तो बरज बाबू की खूब तारीफ कर रहे थे। कह रहे थे, वे आदमी नहीं, देवता हैं! जरा भी भेदभाव नहीं, जरा भी अभिमान नहीं! वह तो उन्हीं की निगरानी में रहने लगे हैं! कहते थे—आश्रम के कामों में खूब मन लगता है, जहाँ दूसरे आदमी उन पर गंदी-गंदी बातें उगलते थे, वहाँ बरज बाबू उनको अपने साथ रखते हैं। जो वे खाते हैं, उनको खिलाते हैं। उनसे सुना—तुम तो उन्हीं के साथ आश्रम का काम करती-फिरती हो।

—तो क्या उसने शराब पीना छोड़ दिया?—अभया ने मुस्कराते हुए पूछा।

—छोड़ी है या नहीं—सो तो मैं नहीं कह सकती, अभया बहन! मगर जब से वह जेल से लौटे हैं, कभी उनको पीते हुए न पाया, न कभी यही पाया कि वह नशे में हैं।

—खैर, सुन कर खुशी हुई मुझे—अभया खुशी में ही बोली—अब तो तुम पर मार नहीं पड़ती, चंपी?

चंपी इस बार मुस्कराई और मुस्कराते हुए ही कहा—मार भी पड़े तो अब उसके लिए दुख नहीं है, अभया बहन! वह मेरे हैं, मैं उनकी हूँ, वह जिस तरह मुझे रखना चाहें, मुझे उसी में सुख मिलेगा; मगर जब कोई मेरे सामने उनकी निंदा या उन्हें गंदी बातें कह उठता है, तब लगता है कि या तो मैं मर जाऊँ या उसकी जबान निकाल लूँ! मैं सब-कुछ सह सकती हूँ, मगर मुझसे यही नहीं सहा जाता! कौन ऐसा है, जिससे गलती नहीं होती, मगर गलती करनेवाला भी तो आदमी है, फिर आदमी को आदमी से आदमी-जैसा व्यवहार करना ही चाहिए! जो खुद अच्छा है, उसके लिए तो कोई बात नहीं, मगर बुरे को अच्छा बनाया जाय—यह तो गंदी बातों से नहीं हो

सकता, अभया बहन ! मगर मैं खुश हूँ, ऐसा आदमी मिल गया है। अब मेरा भाग्य, अगर उनकी संगत में वह सुधर गये तो फिर क्या कहना ! देखना बहन, अगर कभी तुमसे भेंट हो जाय तो उनको समझाना !

अभया चंपी के बातों पर मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई। वह अपने शराबी पति की इतनी अनुगामिनी हो सकती है—इसे पाकर अभया प्रसन्नता की हँसी हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही कहा—जरूर समझा-ऊँगी चंपी ! मगर जो अपने-आप अच्छे रास्ते पर आ लगा है, उसे न भी समझाया जाय, वह रास्ते पर खुद चलता चलेगा। खैर, मुझे खुशी है कि तुम्हारे बुरे दिन जाते रहे, अब जो दिन आया है और आयगा—वह तुम्हारी प्रसन्नता के दिन ही आएँगे।

चंपी अभया की बातें सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। लगा जैसे उसके अंग-प्रत्यगो से प्रसन्नता फूट पड़ी हो। वह सिर झुकाए ओठों में भीनी मुसकान लिये खड़ी रही।

—अब चलती हूँ चंपी—अभया ने कहा और उसने गाड़ीवान को इशारा किया। गाड़ी चल पड़ी।

लौटती बार उसे राजा बाबू के घर ही उतरना था, उसने पहले से ही ऐसी बात दे रखी थी, पर वह वहाँ उतर न सकी। गाड़ी उसके दरवाजे पर ही आ लगी, वह उतर पड़ी और उतरकर गाड़ीवान से कहा—चाचीजी से कह देना, अभी मैं वहाँ न आ सकी, अवसर पाकर किसी समय आ जाऊँगी।

गाड़ीवान सामान भीतर पहुँचाकर गाड़ी पर आ बैठा, अभया दालान होकर अपने कमरे में पहुँची। वहाँ सामान को यथास्थान रखकर ज्योंही वह स्नान-घर की ओर जा रही थी, त्यों ही उसने सुना कि कार दरवाजे पर आ लगी है, आवाज उसने सुनी; पर वह दालान की ओर न आकर स्नान-घर में ही जा पहुँची। अभया जानती थी कि, वह कार किसकी है, कौन आया है और किसलिए आया है। पर यह जानकर भी वह चंचल नहीं हुई, बल्कि बाथरूम

में उसे जितना समय लगाना चाहिए, उससे कहीं अधिक समय वह लगाती रही वहाँ। वह जान-बूझकर ही ऐसा कर रही थी ; पर क्यों वह ऐसा कर रही थी, वह स्वयं नहीं समझ रही। फिर भी आगंतुक ऐसा था जो उससे मिलकर ही जायगा। उसे इतना जरूर पता लग चुका था कि वह (अभया) अभी तुरत बाहर से लौटकर घर आ गई है, वह घर पर ही है। वह यह भी अनुमान कर रहा था कि बाथ-रूम में कितना समय लग सकता है! पर जब उसने आने में विलंब देखा तब वह डा० स्वरूप से, जो उसी के साथ बाहर से आये हैं, बोल उठे—शायद अभया देवी बाहर से आकर लेट तो नहीं रही हैं? जरूर लेटी ही होंगी।

डा० स्वरूप अपनी आरामकुर्सी से हिले, वह कुछ बोलना ही चाहते थे कि अभया ने भीतर से ही कहा—हाँ, अभया लेट रही है आनन्द बाबू! यही तो उसे लेटने का वक्त मिला है!

आनंद मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रसन्नतापूर्वक ही बोल उठा—सो तो जानता था, अभया देवी! मगर आप जान-बूझकर घर में इस तरह छिपी रहेंगी—यह मैं नहीं जानता था! कृपा कर आइए भी तो! आप इस तरह छिपी रहेंगी तो काम कैसे चलेगा? सारे काम पड़े हैं, उनमें आपकी सख्त जरूरत है।

—जरूरत तो पूरी होने से रही!—इस बार अभया सादे कपड़े में, तौलिये से मुँह पोंछती हुई सामने आकर खड़ी हो रही, और उसने देखा कि वहाँ केवल आनन्द और डाक्टर साहब ही नहीं हैं, राजा बाबू हैं और दो सज्जन और हैं, जो नये-नये दीख पड़ रहे हैं।

अभया दो नवागंतुक को अपने सामने पाकर जरा अप्रतिभ हुई, पर इसी समय डा० स्वरूप ने ही उन दोनों का परिचय कराते हुए कहा—तुमने समझा था कि यहाँ केवल आनन्द ही है और कोई अन्य नहीं ; पर तुम्हें जानकर खुशी होगी कि ये दो सज्जन, जिन्हे तुम अपने बीच पा रही हो, आनन्द के अन्यतम मित्र हैं। यह हैं मि० कैलासपति आई० सी० एस, इस जिला के मजिस्ट्रेट और दूसरे हैं राय बहादुर

विपिन सिन्हा, एस० पी० । फिर उन दोनों की ओर मुखातिब होकर बोले—अब तो आप लोगों को शायद इनका परिचय न भी देना हो—यही मेरी बेटी डा०.........

दोनों अपने स्थान से जरा उठे और अभया के प्रति सम्मानपूर्वक अपना अभिवादन जनाते हुए कहा—आपसे मिलकर अवश्य प्रसन्नता कुछ कम नहीं हुई, मिस स्वरूप।

—यह आपका सौजन्य है—अभया ने अपनी स्वीकृति की सूचना दी - मगर इतने बड़े आदमी मेरे यहाँ आएँगे—इसकी तो मुझे कभी कल्पना भी न थी !

– हाँ, यह सच है, अभय !—डा० स्वरूप ने प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार किया—यह तो आनन्द की कृपा ही समझो ! कल ही तो उत्सव होने जा रहा है, खुद प्रान्त के गवर्नर ने अपने पधारने की स्वीकृति दे दी है, जिसके प्रबन्ध में आप सभी को यहाँ आना पड़ा है। हमारा परम सौभाग्य है कि हमलोगों के बीच आनन्द बाबू का आना कितना आना अच्छा हुआ। हमलोगों का कर्त्तव्य है कि यह उत्सव सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाय....... ..

—इसकी सफलता के लिए आपका सहयोग आवश्यक है, अभया देवी !—आनन्द ने अभया की ओर देखते हुए बड़े उल्लास में कहा—कुछ काम ऐसे हैं, जिनके लिए आपकी खास जरूरत है। यों निमंत्रण तो आपको मिल चुका होगा; पर मैं आज खुद आपको खास तौर पर आमंत्रित करने आया हूँ। मैं चाहता हूँ कि अभी आप हमलोगों के साथ चलें और जो काम आपके लिए बच रहे हैं, उन्हें पूरा करें।

—मैं भी आपसे यही अनुरोध करना चाहता था—मि० कैलाशपति ने कहा।

—अनुरोध कहकर आप मुझे लज्जित न करें !—अभया ने जरा गंभीर होकर ही कहा-जहाँ आप-जैसे बड़े-बड़े अधिकारियों का पदार्पण हो चुका है, वह उत्सव यों ही सफल होकर रहेगा, यह तो कोई भी विश्वास कर सकता है। पर मुझे दुख है कि मैं साथ न दे सकूँगी !

—साथ न दे सकेंगी ?—रायबहादुर विपिन सिन्हा ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए गंभीर स्वर में कहा।

—हाँ, मुझे समय नहीं है, मुझे बाहर जाना है।

—बाहर जाने के लिए समय है, मगर इस कार्य के लिए नहीं, यह क्या कह रही हैं मिस स्वरूप !—फिर से रायबहादुर सिन्हा ने उसी स्वर में कहा।

—जो कह रही हूँ ठीक कह रही हूँ—अभया रोष में कुछ गंभीर होकर बोली—बाहर जाने के लिए समय है, इसलिए कि वह जरूरी काम है मेरे लिए; मगर यह जरूरी नहीं !

—यह जरूरी नहीं, जहाँ गवर्नर खुद तशरीफ ला रहे हैं !—फिर से रायबहादुर सिन्हा ने ही कहा।

अभया इस बार हँस पड़ी और हँसते हुए ही कहा—गवर्नर तशरीफ ला रहे हैं, यह आप के लिए जरूरी हो सकता है, क्योंकि आप को उनके अंदर रहना है; मगर मेरे लिए वह जरूरी नहीं। मैं अपनी जरूरत को खुद महसूस कर सकती हूँ, आप नहीं कर सकते !

—आई-सी !—राय बहादुर आप-ही-आप बोल कर चुप हो रहे।

—संभव है, जरूरी काम हो, हमलोग भी फील करते हैं; मगर क्या वह कल के लिए टाला नहीं जा सकता ?—मि० कैलाशपति ने वातावरण को संभालते हुए पूछा।

—नहीं, बिलकुल नहीं !

—क्या जान सकता हूँ कि वह कौन-सा काम है ?—फिर राय बहादुर बोल उठे।

—यह मेरा प्राइवेट बिजनेस है, जिसे मैं बताने से असमर्थ हूँ।

डा० स्वरूप स्वयं चिंतित हो उठे, वह समझ नहीं सके कि इतना जल्द अभया के लिए कौन सा आवश्यक कार्य आ गया है जिसके लिए वह इतना तैयार हो उठी है, जिसे वह बताना भी नही चाहती। मगर राजाबाबू प्रसन्न हैं, वह जानते हैं कि अभया कितनी कर्त्तव्य-परायणा है। वह जानते हैं कि उसे कहाँ जाना है और क्यों जाना

है ! फिर भी वातावरण में जो अभी शुष्कता आ गई है, इस ओर भी उनका ध्यान है। एक ओर अभया की कर्त्तव्य-परायणता पर जितनी ही उन्हें प्रसन्नता है, उतना ही उन्हें दुख भी कि उसे इस प्रकार का उत्तर न देना ही कहीं अच्छा होता। उन्होंने वातावरण को सँभालना चाहा और इसी उद्देश्य से वे बोल उठे—अभया जो कह रही हैं, उसकी गुरुता को मैं महसूस करता हूँ और यह भी जानता हूँ कि जो कुछ वह कह रही हैं, वह सच है; मगर क्यों अभया बेटी, एक दिन के लिए क्या तुम ठहर नहीं सकतीं ? मैं जानता हूँ, देर तो हो ही गई, फिर एक दिन और सही !

अभया इस बार फिर से हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही उसने जवाब दिया—चाचाजी, यह आप कह क्या रहे हैं ? और मैं सुन क्या रही हूँ आपके मुख से ! सरकारी ओहदे का मोह, और इस बुढ़ापे में, देखती हूँ, आपको भी कुछ कम नहीं है ! एक ओर कोई मरे और कोई दूसरी ओर जशन मनाए ? आप यही चाहते हैं न ! क्या सच-मुच आप यही चाहते हैं ?

इस बार डा० स्वरूप राजा बाबू की ओर मुखातिब हुए और कहा—बात क्या है, राजा भाई ?

—बात !—राजा बाबू ने उन्हें याद दिलाते हुए कहा—मृणाल की चिट्ठी की बात आप क्या भूल गए, डाक्टर भाई ?

—ओह, आई-सी !—डा० स्वरूप इस बार आरामकुर्सी से जरा उठे और आकृति पर प्रसन्नता की रेखा खींचते हुए बोले—क्या लल्लन ने वहाँ से कोई चिट्ठी नहीं लिखी ?

—बात क्या है, राजा बाबू ?—इस बार आनन्द स्वयं बोल उठा—जान पड़ता है, कोई सिरियस मैटर है, नहीं तो अभया देवी से ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

—क्योंकि आपकी ये फ्रेंड हैं न !—रायबहादुर ने व्यंग के स्वर में कहा।

—हाँ, फ्रेंड ही नहीं, मैं और भी कुछ हूँ, जो वह जानते हैं, आप नहीं जान सकते !—अभया इस बार बिगड़कर बोल उठी।

—खैर, धन्यवाद, इतना तो मैंने जाना ही कि आप और भी कुछ हैं !—फिर रायबहादुर सिन्हा ने ताना मारा !

—देखती हूँ, आप में जरा भी आदमीयत नाम की चीज नहीं रह गई !—इस बार अभया उठ खड़ी हुई और रोष में ही आकर बोल उठी—पुलिस-विभाग में काम करते-करते आप अपनी सभ्यता भी खो बैठे है, यह बहुत दुःख की बात है। मैं ऐसों से बातें नहीं करती। आनन्द बाबू, अपने मित्र को आप सँभालिए..........

अभया इस बार रुक न सकीं, भीतर की ओर चल पड़ी। डा० स्वरूप भी भीतर-भीतर बड़े अप्रसन्न हो उठे, पर आनन्द का दिल न दुखे, इसलिए वे कुछ न बोले। मगर मि० कैलाशपति को राय बहादुर सिन्हा का व्यवहार भद्रोचित न जान पड़ा, तभी वह बोल उठो—डा० स्वरूप, मुझे खेद है कि डा० अभया हमलोगों से अप्रसन्न हो गईं। मगर मुझे प्रसन्नता है कि वे अपनी ड्यूटी को ज्यादा पसंद करती है। नहीं तो यह कभी संभव न था कि मि० आनन्द के उत्सव में वे शामिल न हों।

इसी समय एक साइकिलिस्ट वहाँ आ पहुँचा, जो पोस्टल वर्दी में था। वह भीतर आकर एक तार का लिफाफ डा० स्वरूप के हाथ पर दिया और एक स्लिप, जिस पर उन्होंने स्वाक्षर कर लौटा दिया। तार अभया के नाम था, पर डा० स्वरूप ने ही उसे खोलकर पढ़ा और पढ़कर राजा बाबू की ओर उसे बढ़ाते हुए कहा—अभया का जाना ही ठीक है, राजा भाई !

—क्या कहा, उनका जाना ही ठीक है !—आनंद ने विस्मित होकर पूछा।

—हाँ, मृणाल ने लिखा है—डा० स्वरूप बोले—देखता हूँ, मैं भी न रहूँगा आनन्द ! जीवन-मरण का प्रश्न जहाँ सामने है, वहाँ उत्सव कोई महत्त्व नहीं रख सकता ! देखो राजा भाई......

राजा बाबू ने तार आनन्द की ओर बढ़ा दिया, उसने एक ही दृष्टि में उसे पढ़कर कहा—तब तो आप भी जाएँगे राजा बाबू ?

—देखता हूँ, मुझे भी जाना होगा, मि० आनन्द !—राजा बाबू इस बार बड़े ही चंचल हो उठे और चंचल होकर ही बोले—मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ और है ! अभी-अभी मैं अभया पर मन-ही-मन बिगड रहा था, मगर अब मैं पाता हूँ कि वह अपनी जगह ठीक है। अब आप ही बतलाइए, क्या किया जाय ! एक ओर हमारे घर पर उत्सव और दूसरी ओर मेरे दामाद मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा हो ! क्या करूँ—क्या न करूँ—कुछ समझ मे नहीं आता। आप ही कहिए मि० कैलाशपति !

—भाई, कहना बड़ा मुश्किल है ! मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या कहूँ ?—मि० कैलाश ने समवेदना के स्वर में कहा—मगर इस वक्त तो गाड़ी कोई मिलेगी नही ?

—नहीं, सबेरे सात बजे जाती है !

—तो क्या अच्छा हो, अभी कृपा कर फार्म पर साथ चलिए, डा० स्वरूप भी चलें, कम-से-कम काम का कुछ सिलसिला तो जोड़ ही लिया जाय !—मि० कैलाश ने कहा—और अगर अभया देवी इतने कुछ समय तक साथ दे सकें·······

—आनन्द, तुम भीतर जाओ, कहकर देखो—डा० स्वरूप ने आनन्द की ओर मुखातिब होकर कहा।

—नहीं, अब मैं उन्हे और न कह सकूँगा।

—अच्छी बात !—मि० कैलाश बोल उठे—अभी उन्हें और कुछ कहना अच्छा न होगा। अब चला ही जाय ! क्यों० डा० स्वरूप ?

और सब-के-सब उठ खड़े हुए और सभी कार पर आ बैठे, कार अपनी दिशा में चल पड़ी।

अष्टादश परिच्छेद

अभया अपने कमरे में आकर निश्चिन्त नहीं है, रह-रह कर उसे याद आती है वह घटना, जो अभी-अभी घटी है। राय बहादुर सिन्हा इस जिला के एस० पी० हैं। अभया पुलिस-विभाग को जानती है और यह भी जानती है कि उस विभाग के व्यक्ति स्वभावतः संशयालु होते हैं! संभव है, उसने संदेह की दृष्टि से ही उसे देखा हो; पर अभया को उसकी जरा भी चिन्ता नहीं है। उसे खेद है तो केवल इसी बात का कि उसने रायबहादुर की बातों का जवाब रूखे और रोष-भरे शब्दों में दिया है। उसी सिलसिले में उसे आनन्द का भी स्मरण हो आता है, जिसने सरकार से 'सर' की उपाधि पायी है और जिसके लिए उस उत्सव का आयोजन किया गया है। उस उत्सव में वह स्वयं निमंत्रित भी है और इतना ही नहीं, वह आनन्द आमंत्रण का ही संदेश स्वयं आकर उसे दे रहा था। आनन्द के उत्सव में अभया उपस्थित न हो—अवश्य यह एक विस्मय-जनक बात है। मगर बात सच्ची है, अवश्य परिस्थिति ही इतनी विरुद्ध आ पडी है कि जहाँ अभया स्वयं उलझन में फँस पड़ी है! दूसरा कोई समय होता तो लाख नुकसान सहकर भी वह अवश्य उस उत्सव में सम्मिलित होती, पर उसके सामने तो जीवन-मरण की समस्या है। ऐसे

समय में जब कि मृणाल अपने परमप्रिय रुग्ण पति के लिए विह्वल होकर अपने पत्र-द्वारा उसका आह्वान कर रही है, वह उस आह्वान का अनादर कर अपनी मानवता को किस तरह कलंकित करे······ नहीं-नहीं, उससे यह अधर्म का कार्य नहीं हो सकता! वह जायगी ही, वह अपनी सेवा अर्पित करेगी ही। जीवन-मृत्यु अपने बस की बात नहीं है; फिर भी जीवन की रक्षा के लिए लोग सतत तत्पर रहते ही आए हैं, यह उनका स्वाभाविक धर्म है, उस धर्म से डिगना उसके लिए संभव नहीं······

इसी समय नौकर दौड़ता हुआ उसे तार दे आता है, जो अभी-अभी डा० स्वरूप को मिला था, जिसे सब लोग देख चुके हैं। अभया उसके हाथ से उसे लेकर कह उठती है—क्या वे लोग चले गये? उतर में 'हाँ' कहकर वह नौकर बाहर निकल आता है। अभया उस तार को पढ़ती है, पढ़ती है कि केश सिरियस हो गई है, डाक्टर बाबू और बाबूजी (राजा बाबू) के साथ तुम लौटती ट्रेन से आओ। अभया अत्यंत चंचल हो उठती है, उसके सामने मृणाल की छवि खिंच आती है, उसीके साथ-साथ विवाह-मंडप पर आसीन मृणाल और आदित्य की युगल जोड़ी की अभिनव छवि उसके हृदय को और भी चंचल कर छोड़ती है! अभया अब लेटी पडी नहीं रह सकती, उठ खड़ी होती है, कमरे में टहलने लगती है। वह क्या करे—क्या न करे—कुछ समझ नहीं पाती, कुछ क्षण इसी तरह द्वन्द्वात्मक अवस्था में पड़ी रहती है, फिर बाहर निकल पड़ती है·········

अभया तीव्र वेग से राजा बाबू के दालान में आकर उनसे मिलना चाहती है; पर उसे मालूम होता है कि वे अबतक बाहर से लौट नहीं आए हैं, शायद अबतक आनन्द बाबू के साथ ही होंगे। उसे विस्मय होता है, वितृष्णा होती है और खेद भी! वह रुकी नहीं रहती, भीतर जाती है और सीधे चाची के निकट पहुँचकर कहती है—मैं लौटती बार मिल न सकी थी चाचीजी, अभी सोचा कि चलकर मिल लूँ, फिर मिल न सकूँगी, मुझे भोर की गाड़ी से ही जाना है······

—क्या सचमुच, अभया बेटी, भोर की गाड़ी से जा रही हो ?—उल्लसित होकर चाची बोल उठती है—भगवान भला करे, बेटी, मैं कितनी परेशान हूँ, नहीं कह सकती, जबतक यहाँ खुशी की खबर आ नहीं जाती, तबतक न मुझे दिन को चैन मिलेगा और न रात को ही नींद आयगी······मुझे उम्मीद है कि, तुम्हारे जाने से मृणाल की चिंता मिटेगी बेटी और दुल्हा बाबू जरूर अच्छे हो जाएँगे···

—उम्मीद तो ऐसी ही है, चाचीजी!—अभया सरल गति में बोल उठी—मगर मुझे तो चाचाजी पर क्रोध होता है, जिन्हें अपने घर की बीमारी का तो पता हो और यह भी पता हो कि बीमारी साधारण नहीं; फिर भी वे इधर-उधर उत्सव मनाते फिरें—यह क्या तुम्हें अच्छा लगता है, चाचीजी ?

—अच्छा ! यह क्या कहती हो, अभया बेटी ?—चाची खिन्न स्वर में बोल उठती है—मेरी वे सुनते ही कब हैं ? मैं कहकर हार गई कि एक बार खुद जाकर देख तो आवें, मगर वे कहते हैं—अच्छे हो जाएँगे, घबराने की कौन-सी बात है ! तुम्हीं कहो, आखिर मैं क्या करूँ ! अपने आदमी जब आए दिन काम न आए तब और क्या कहा जाय······

—अच्छा, अभी मैं चलती हूँ, चाचीजी !—अभया उठ खड़ी हुई और उठते हुए ही बोली—चाचाजी आएँ तो कह दीजिएगा कि अभया आई थी, उसके साथ आपको वहाँ चलना ही होगा—चलना ही होगा। हाँ, चाचीजी, देखेंगी—वे आपको टरका सकते हैं; पर मुझे टरकाना उनके लिए सहज नहीं। वे भोर की गाड़ी के लिए तैयार रहें।

अभया बोलकर चल पड़ी, वह भाभी से अभी मिल न सकी, चाची अपनी जगह बैठी रहकर अभया की ओर अपलक दृष्टि से देखती रही और मन-ही-मन सोचती रही कि अभया को मृणाल के प्रति कितना अधिक स्नेह है।

अभया घर लौट आई और अपने कपड़ों को चुन-चुन कर अपने सूटकेस में भरने लगी। इस तरह जब वह अपने सूटकेस को भर

चुकी तब वह अपने पिता के कमरे में गई, उनके कपड़ों को सहेजा और उन्हें उनके सूटकेस में भरा। उसके बाद कुछ जरूरी चीजें रखीं। इस तरह अपनी तैयारी पूरी कर चुकने के बाद रसोईघर में जाकर भोजन करने बैठ गई। मगर, भोजन शेष भी न कर पाई थी, तभी डा० स्वरूप दालान में आते हुए दीख पड़े, और आते ही उन्होंने अभया को पुकारा। इसलिए अभया झटपट भोजन शेष कर मुँह पोछते-पोंछते ही उनके निकट पहुँचकर बोल उठी—क्या है बाबूजी !

डा० स्वरूप आरामकुर्सी पर लेट गए और लेटते हुए स्थिर होकर ही बोले—उस समय कहकर न जा सका, अभय, राजा भाई ने भी तय कर लिया है वहाँ चलने को, भोर की गाड़ी ही पकड़नी है, यहाँ से कम-से-कम तीन-साढ़े तीन को ही चल देना चाहिए। कपड़े-लत्ते··· ···

—कपड़े-लत्ते वगैरह सहेजकर मैंने सूटकेस में रख डाले हैं बाबूजी—अभया अत्यंत प्रसन्न होकर ही बोली—अब इन सबके लिए कुछ करना-धरना नहीं है। आप ब्यालू कर लें और सो रहें। रात ज्यादा हो गई है। मैं आपका खाना यहीं भिजवाए देती हूँ।

अभया कहकर भीतर की ओर गई, उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि वह अकेली ही नहीं जायगी, बल्कि उसके बाबूजी और राजा बाबू भी उसका साथ देंगे।

अभया आकर लेट रही, पर उसे नींद न आई, वह इस तरह लेटी न रह सकी। उसके मस्तिष्क में एक ही साथ अनेक भावों का द्वन्द्व-युद्ध जैसे छिड़ गया हो। इसलिए वह अपने को स्थिर करने में असमर्थ हो रही। जब बड़ी देर के बाद वह अपनी उलझन को सुलझा सकी, तब वह अपने बिछावन से उठी, टेबिल के पास आई, लैंप की बत्ती को उसकाकर और तेज किया, और ड्रायर से राइटिंग पैड निकाल कर पत्र लिखने को बैठ गई। इस तरह जब वह पत्र शेष कर सकी, तब उसने एक बार निश्चिंतता की साँस ली। फिर

बत्ती को धीमी कर बिछावन पर आ लेटी। इस बार उसे खूब गहरी नींद आई, और वह तबतक सोई रही जबतक उसके पिता ने आकर उसे नहीं जगाया। सवारी के लिए कार पहले से ही आकर पड़ी थी। डा० स्वरूप ने सोफर को उठाकर कार के साथ उसे राजा-बाबू के पास भेजा, तबतक इधर अभया अपनी तैयारी में लगी।

कार राजाबाबू को लेकर आ पहुँची। डा० स्वरूप और अभया भी अपने सामानों के साथ उस पर आ बैठे। कार स्टेशन की ओर चल पड़ी। जब वह कार फार्म होकर दौड़ी जा रही थी, तब अभया ने देखा कि, स्थान-स्थान पर मेहराव लगे हैं, जो फूल और पत्तों से सजाए गए हैं, बीच-बीच में बिजली की बत्तियाँ जल रही हैं, जो अत्यंत ही आकर्षक हो उठी हैं। अभया की दृष्टि में यह दृश्य बड़ा ही करुण, बड़ा ही विषादमय जँचा। वह और अधिक न सोच सकी। कार यथासमय स्टेशन पर आ लगी। सोफर ने उतर कर दरवाजा खोला, सभी उतर पड़े, सामान स्टेशन पर प.चाए गए। टिकटें कटाई गईं। गाड़ी पहुँचने में अब भी कुछ देर थी, सोफर उन सभी के साथ अब भी प्लेटफार्म पर था। अभया ने उसे अकेले पाकर अपने हाथ की अटैची से रात का लिखा वह पत्र निकाला और उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—इसे आनंद बाबू को दे देना। उसी समय ट्रेन आ पहुँची और सब-के-सब डिब्बे में जा बैठे। यथासमय ट्रेन चल पड़ी।

राजाबाबू ने स्टेशन पर आकर अपनी पार्टी के साथ आने की सूचना तार-द्वारा दे दी थी, इसलिए जैसे ही ये सब स्टेशन पर गाड़ी से उतरे वैसे ही लल्लन स्वयं स्टेशन पर दीख पड़ा। अभया ने ही पहले-पहल उसे देखा और वह तुरत निकल कर उसके पास आकर बोल उठी—आदित्य बाबू कैसे हैं भैया? कुशल तो है?

—हाँ, कुशल ही है अभया!—लल्लन ने निश्चिंतता की साँस लेते हुए कहा—पर अब भी उन्हें होश नहीं है। ये दिन बहुत

बुरी तरह कटे, पता नहीं, कब क्या हो जाय ! तुमने आने में बहुत देर कर दी !······

तभी डा० स्वरूप नीचे उतरे और राजा बाबू भी। लल्लन ने उन दोनों के पाँव छुए। डा० स्वरूप ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—हाँ, आने में देर हो गई लल्लन; तुम्हारा तार अगर कल न मिला होता तो शायद हमलोगों को आज तुम यहाँ न पाते ! बड़ी-बड़ी मुश्किलों को पार कर हमलोग यहाँ आ सके हैं। मगर देर करने की जरूरत नहीं, बाहर चलो·········

और सभी बाहर आए। कार लगी थी, सामान बाहर बँध गए, सभी कार पर आ बैठे और कार अपनी गति में चल पड़ी।

कार जब सदर दरवाजे पर आ लगी, तब अभया ने देखा कि वह मकान क्या है, राजमहल है ! बहुत बड़ी विस्तृत फुलवारी के बीच आलीशान महल स्वयं अपनी गुरुता उद्घोषित कर रहा है। अभया को मृणाल की याद हो आई, मृणाल इतनी सौभाग्यमयी है, उसे अब अनुभव हुआ। सब-के-सब उतरकर अंदर की ओर चल पड़े, कई मकानों को पार कर, लल्लन उन सभी के साथ उस कमरे में आया जहाँ आदित्य पलंग पर लेटा पड़ा है। उसके पास मृणाल है और दो नर्सें हैं······ ···

अभया लल्लन के पीछे-पीछे दबे पाँव कमरे के अन्दर आई और मृणाल को अपनी भुजाओं में कसकर बोल उठी—आ गई हूँ, मृणाल, आ गई हूँ, बाबूजी भी आए हैं, चाचाजी भी आए हैं····· ओह, सूखकर कैसी काँटा हो उठी है पगली !

मृणाल कुछ न बोली, उसकी आँखो से आँसुओं की बाढ़ जैसे फूट पड़ी ! उसी समय डा० स्वरूप और राजा बाबू ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। मृणाल अपने पिता के पैरो पर गिरना ही चाहती थी कि डा० स्वरूप ने उसे बीच में ही रोककर उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—मंगलमय प्रभु सब मंगल ही करेंगे मृणाल ! हमलोग आ गए हैं, कोई चिंता की बात नहीं। तुम अभया को अपने कमरे में

ले जाओ, हमलोग यहाँ ठहरते हैं, अब इनकी देखभाल का जिम्मा मुझपर रहा।

डा० स्वरूप बीमार के सिरहाने की ओर कुर्सी लेकर बैठ गये। उन्होंने बीमार के सिर पर हाथ फेरा, उसकी नाडी देखी, स्टेथस्कोप लगाकर देखा और राजा बाबू से बोल उठे—घबराने की बात नहीं, राजा भाई, घबराने की बात नहीं······

—सो मैं कैसे कहूँ, भाई स्वरूप!—राजा बाबू ने बीमार की देह पर हाथ फेरते हुए कहा—तुम डाक्टर हो; तुम ऐसा कह सकते हो, पर जबतक मैं इन्हें होश में नहीं देख लेता तबतक मेरे हृदय पर कैसा कुछ गुजर रहा है, सो मैं · · ·

—सो मैं भी जानता हूँ राजा भाई!—डा० स्वरूप ने उनकी बात काटकर बीच ही में कहा—मगर मुझे परमात्मा पर भरोसा है और अपने-आप पर विश्वास। मैं इतना सिरीयस नहीं समझता, टाइफाइड के केस में सेंसलेस रहना कोई खतरे की बात नहीं।

डा० स्वरूप ने हैंड-बैग से दवा निकाली और इजेक्सन की सिरींज में उसे भरा और रोगी के बाएँ हाथ को अपने हाथ में लेकर धीरे से सुई चुभो दी। घण्टा भी न बीतने पाया कि डा० स्वरूप के अनुभव और दवा काम कर गई। रोगी ने धीरे से आँखे खोलीं; लगा, जैसे गभीर निद्रा से सोकर उठ रहा है वह। राजा बाबू के ओठ हिले, प्रसन्नता के मारे वह बोल नहीं सके! उधर रोगी ने आँख खोलते ही धीरे से पुकारा—मृणाल!

नर्स उसके सामने आई और आकर मुस्कराती हुई बोली—क्या मृणाल को बुला दूँ?

—मृणाल को!—रोगी ने इस बार स्पष्ट रूप से आँखें खोलीं और पाया कि सामने जो बैठे हैं, वे तो उनके श्वसुर हैं—श्वसुर ही तो! तो क्या वे आ गए है?—और तभी वह बोल उठा—नहीं, रहने दो!

तभी राजा बाबू स्वयं बोल उठे—अब कैसा मालूम पड़ रहा है, बाबू? क्या मुझे पहचानते हो?

रोगी के ओठों पर एक क्षीण मुस्कराहट की रेखा दौड़ गई और धीमे स्वर में वह बोल उठा—बड़ा कष्ट किया आपने बाबूजी, मेरा प्रणाम·········

रोगी ने अपने दोनों हाथों को जोड़कर अपने सिर से लगाया। तभी डा० स्वरूप ने फिर से नाड़ी देखी और प्रसन्नता में भरकर बोल उठे—आदित्य बाबू, मुझे पहचानते हो?

इस बार आदित्य ने उनकी ओर देखा और देखते ही बोल उठा—यह तो आपका अतिशय अनुग्रह है!

—अनुग्रह नहीं,—डा० स्वरूप प्रसन्नवदन बोल उठे—यह तो कर्त्तव्य था आदित्य बाबू! तुम तो कोई बेगाने हो नहीं! तुमने काफी कष्ट सहे हैं; पर अब और कष्ट में रहना न पड़ेगा। अभी एक सुई और दिए देता हूँ······

और डा० स्वरूप ने फिर से सुई भरी और मुस्कराते हुए रोगी से कहा—डाक्टर का काम भी बड़ा कठोर होता है, आदित्य बाबू। देखो न, जान-बूझकर सुई चुभोनी पड़ती है! हाँ, देखूँ इस बार, दायाँ हाथ!

आदित्य ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा—डाक्टर का काम कठोर होता है, यह सही है; मगर आप तो कठोर नहीं, बड़े दयालु हैं, दयालु न होते तो मेरे यहाँ·····

—अभी ज्यादा बोलना ठीक नहीं आदित्य बाबू, आराम से लेटे रहो—कहते हुए डा० स्वरूप ने बड़ी शीघ्रता से सुई चुभोई और धीरे-धीरे औषधि प्रवेश कराकर सुई निकालते हुए बोले—अब आराम से लेटे रहो, भगवान चाहेंगे तो इतना ही बहुत है, अब सुई चुभोने की और आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी!

इस बार आदित्य की आँखें कृतज्ञता के रस से सिक्त हो उठीं; पर वह मुँह से कुछ बोल न सका!

कहना व्यर्थ है कि डा० स्वरूप के सतत उद्योग और अनुभव से आदित्य में पुनः प्राण-प्रतिष्ठा हुई। वह तीन-चार दिन के भीतर ही उठ बैठा, उसे पथ्य दिया गया; पर वह अब भी दुर्बल है, बिछावन ही उसका सहारा है!

अभया उसकी सेवा में आ जुटी है! वह अपने हास-परिहास के भीतर ही रहकर उसमें प्राणों का संचार कर रही है। आदित्य अब अपने सहारे खड़ा होता है, अपने सहारे कमरे से निकलकर भीतर की फुलवारी के चबूतरे पर आकर आरामकुर्सी पर आ लेटता है, वहाँ एक ओर अभया रहती है और दूसरी ओर मृणाल। मृणाल भी अब बहुत वाचाल हो उठी है। जिस मृणाल ने अपने बुरे दिनों में रात को रात नहीं समझा, जो अपनी तपस्या में अपर्णा बन बैठी, वही अपनी सफलता की सीमा पर पहुँचकर पाती है कि उसका आराध्य देव उसके निकट प्रसन्नवदन बैठा उसकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से निहार रहा है, उसी दृष्टि की मूक भाषा समझकर मृणाल बोल उठती है—डाक्टर चाचा और पिताजी अब जाना चाहते हैं; क्या कहते हैं, अब वे जायँ?

—क्यों, इतनी जल्दी क्या है, मृणाल!—आदित्य जरा चिंतित स्वर में कहता है—लल्लन बाबू तो गए ही हैं, घर की देखभाल वे करेंगे ही, फिर जल्दी क्या है, कुछ दिन रुक जाते तो······

—रुकने के लिए तो अभया बहन रुक ही रही हैं—मृणाल बोल उठी।

—मैं ही रुककर अब क्या करूँगी, मृणाल?—अभया ने उसकी ओर ताका।

—अभी आपने किया ही क्या है?—आदित्य हँसकर बोल उठता है—अबतक तो डाक्टर चाचाजी की देख-रेख में मैं रोग-मुक्त हो पाया हूँ, मगर रोग की मुक्ति से ही तो मैं काम करने योग्य नहीं हो जाता! जबतक पूर्ण सबल न हो लूँ, तबतक···हाँ, तबतक तो आपको रहना ही चाहिए······क्यों, आपको कोई कष्ट तो·········

—कष्ट !—अभया हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—खैर, मेरे कष्टों की ओर आपका खयाल तो है ! मुझे कोई कष्ट नहीं है—इसे स्वीकार करती हूँ, पर अच्छा तो यह होता कि मैं भी उन लोगों के साथ ही चली जाती.........क्यों, क्या कहते हैं आप ?

—मृणाल शायद जाने को कह सकती हैं; पर मैं तो आपसे अनुरोध ही करूँगा कि जब आप यहाँ आई ही हैं तब जबतक मैं काफी सबल नहीं हो लेता तबतक आपको रहना ही चाहिए। मृणाल मुझे सबल नहीं बना सकतीं, जितना आप बना सकती हैं...... ... इसे आप सच मानिए।

अभया उसके अन्तिम वाक्य पर स्वयं लजा उठी, लज्जा से उसकी आकृति आरक्त हो उठी, वह कुछ क्षण चुप साधे बैठी रही, फिर बोल उठी—मृणाल, तुम क्या कहती हो, मैं तुमसे ही सुनना चाहती हूँ !

—मैं जानती हूँ, ये जो कह रहे हैं, सच कह रहे हैं,—मृणाल मुस्कराई और फिर बोल उठी---क्यों न और कुछ दिन ठहर ही जाओ अभया बहन, तुम्हें तो ऐसा कुछ काम है भी नहीं। अगर हो भी तो इससे ज्यादा वह आवश्यक न होगा—ऐसा मैं जोर देकर ही कह सकती हूँ। मैं जानती हूँ, तुम्हारा रहना इनके लिए कितना आवश्यक है.........

अभया इस बार क्षण भर चुप रही, फिर आप-ही-आप गंभीर होकर बोल उठी---तो मैं रहती हूँ, अब तो आप प्रसन्न हुए ? क्यों मृणाल, अब तो तुम खुश हो ?

—जरूर-जरूर !---मृणाल और आदित्य दोनों एक स्वर में और एक ही साथ बोल उठे।

आदित्य के आग्रह से डा० स्वरूप और राजाबाबू और भी एक सप्ताह रह गए। अब आदित्य बाहर भी आने लगा है, उसमें पहले से अभूतपूर्व परिवर्तन हो चला है। इतना शीघ्र और इतना

द्रुतवेग में वह सबल हो उठेगा—इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

अंत में वह दिन भी आया जब डा० स्वरूप और राजाबाबू अपने घर के लिए प्रस्थित हुए। उस दिन उन्हें पहुँचाने के लिए स्वयं आदित्य स्टेशन तक आया, अभया और मृणाल भी आईं। यथासमय ट्रेन पहुँचने पर दोनों डब्बे में जा बैठे, सामान रखवा दिए गये, खाने-पीने के लिए बहुत-से पकवान और फल, उन दोनों की इच्छा के विरुद्ध भी मृणाल ने चुपके से रख दिए। गाड़ी खुलने में अब भी देर थी, तभी राजाबाबू ने आदित्य से कहा—लंबी बीमारी के बाद चेंज में जाना अच्छा है बाबूजी, इसलिए मेरी इच्छा है कि कुछ दिनों के लिए तुमलोग अपने घर आ जाओ तो बड़ा अच्छा! क्यों, डाक्टर भाई?

—हाँ, हाँ, यह तो बहुत ही अच्छा होगा, ठीक कह रहे हो राजा भाई—डा० स्वरूप बोल उठे—आदित्य बाबू, मैं भी यही कहा चाहता था, तबीयत भी बहल जायगी और स्वास्थ्य में भी सुधार होगा। अरी अभय, देखना, जरूर इन्हें साथ लाना। क्यों आदित्य बाबू, क्या कहते हो?

—आज्ञा शिरोधार्य है, प्रयत्न तो रहेगा ही, पर काम सारे पड़े हैं, देखूँ किस तरह उन्हें सँभाल पाता हूँ।

—मगर काम में ही ज्यादा झुक न पड़ना, आदित्य बाबू—डा० स्वरूप बोले—काम के लिए तो सारी जिंदगी पड़ी है, मगर सबसे पहले अपने शरीर पर ही ध्यान देना उचित होगा। क्योंकि इसके अभाव में तो और कुछ किया नहीं जा सकता है! इसलिए, शरीर पहले और काम पीछे—इसे याद रखो। तभी चेंज की बात मैं कह रहा था.........

इस बार अभया हँसती हुई बोल उठी—इन्हें क्यों पूछते हो बाबूजी, मैं जब रह रही हूँ तब इसका मतलब साफ है कि इन्हें हमलोग लेकर ही आवेंगे। देखेंगे, ये किस तरह नहीं जाते.........

—सो ही तो आशा है, अभया बेटी !—इस बार बोलते हुए राजा बाबू हँस पड़े और उनकी हँसी में सभी ने एक स्वर से साथ दिया।

गाड़ी चल पड़ी। जबतक गाड़ी प्लेटफार्म से निकल नहीं गई, तबतक ये सब स्टेशन पर खड़े-खड़े ट्रेन की ओर देखते रहे, फिर स्टेशन से बाहर आकर कार पर बैठे, कार अपनी गति में चल पड़ी।

उनविंश परिच्छेद

आदित्य जब स्टेशन से लौट आया तब संध्या हो रही थी। इधर बीमारी में जबतक कुछ अच्छा रहा, अखबार या रेडियो पढ़ता-सुनता रहा, पर ज्यों ही बीमारी बढ़ चली त्यों ही पढ़ना या सुनना रुक गया। आज संध्या को उसकी तबीयत रेडियो सुनने को बहुत मचल उठी, तभी वह अपने कमरे से सटे लाइब्रेरी-हॉल में आकर सोफे पर बैठते हुए बोल उठा—मृणाल, रेडियो का प्लक ठीक कर दो तो भला! सुनूँ कुछ इधर-उधर की खबरें।

—खबरें ही सुनेंगे, गाना नहीं?—अभया बोल उठी।

—क्या गाना ही आप सुनना चाहती हैं?

—हाँ, रहे कुछ!

और लखनऊ के स्टेशन से मीटर जोड़ा गया, और गाना शुरू हुआ। लगातार दो-तीन गाने के बाद अभया बोल उठी—बस, अब गाना शेष करो मृणाल।

—क्या और नहीं?

—नहीं, खबरें ही सुनी जायँ। इधर अखबार भी तो नहीं देख सकी। अब तो कांग्रेस वर्किंग कमिटी की मीटिंग खतम हो गई होगी! नहीं, क्यों?

—शायद !—आदित्य ने अनिश्चित रूप से कहा—क्या इधर सिटिंग चल रही थी ? हाँ मृणाल, तब तो बंबई के स्टेशन से ही सुनना अच्छा होगा ! क्यों ? आज कौन-सी तारीख है......मुझे यह भी पता नहीं कि, कौन-सा महीना है ।

आदित्य बोलकर स्वयं हँस पड़ा । तभी अभया बोल उठी—आप तो उस समय आप ही परेशान थे । मालूम हो भी कैसे ? तारीख और महीने से बीमार का क्या काम......

अभया बोलकर आप ही हँस पड़ी, आदित्य भी हँसा । मृणाल ने बम्बई का मीटर जोड़ा और तभी रेडियो गड़गड़ा उठी और मोटी आवाज में सुन पड़ा—नौ अगस्त, शाम का वक्त......'क्विट इंडिया' रिज्योलुशन पास...महात्मा गांधी, जवाहर नेहरू, मौलाना आजाद... जो जहाँ थे, वहीं से एक-एक कर सभी अहले-सुबह गिरफ्तार हो गये......वर्किंग कमिटी के कोई मेंबर बचने न पाए...पब्लिक में बड़ी सरगर्मी है—अजीब सनसनी है...अजीब जोश है......नहीं कहा जा सकता, नतीजा क्या होगा......क्विट इंडिया रिज्योलुशन चाहे जैसा रहा हो, मगर अचानक इनकी गिरफ्तारी साफ बताती है कि... रात को ही टेलीफोन और टेलीग्राम के वायर काट डाले जायँगे ताकि यहाँ की खबरें बाहर न जा सकें । अब तो पब्लिक भी काफी उफान पर आ रही है, समझ में नहीं आता—कब क्या हो जाय ! आसार अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं । अब यह खबर यहीं खतम होती है ।

अभया की मुख-मुद्रा गंभीर हो उठी, वह उठ खड़ी हुई, उसने रेडियो का प्लग आफ कर दिया, वह अपने-आपमें बहुत ही चंचल हो उठी और तभी बोल उठी—आसार अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं आदित्य बाबू, सचमुच आसार अच्छे नहीं दीखते ।

—क्या खयाल है आपका ?—आदित्य ने अपनी चंचलता लिये हुए इस बार अभया की ओर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि डाली ।

—खयाल ?—अभया क्षण भर चुप रही, फिर जाने क्या सोच-कर गंभीर होकर ही बोली—बड़े भयंकर वक्त से हमलोगों को गुजरना

पड़ेगा ! लगता है—क्रांति की सृष्टि हो चुकी है, जो आग इतने दिनों से छिपी पड़ी थी, लगता है, जैसे वह भभक उठी है। नेताओं की गिरफ्तारी इस बात का सबूत है कि नौकरशाही ने जो भूल की है, वह ऐसी नहीं, जो तुरत भुलाई जा सके, वह हमारे इतिहास की एक चीज होकर रहेगी।

—क्या कह रही हो अभया बहन !—इस बार मृणाल निस्तब्धता को भंग करती, कुछ घबराई हुई-सी बोली उठी—तुम्हारी बातें कुछ समझ नहीं पा रही, साफ-साफ कहो, अभया बहन, बात क्या है ?

—दिल्ली स्टेशन को देखो तो भला, मृणाल !

मृणाल ने रेडियो की स्वीच को ठीक किया, पर रेडियो गड़गड़ाकर रह गई, दिल्ली स्टेशन से कुछ भी आवाज न आई। तभी मृणाल बोल उठी—अब क्या करूँ, अभया बहन ?

—करोगी क्या तुम पगली !—अभया इस बार हँस पड़ी और हँसती-हँसती ही बोली—क्यों तुम जेल जाने से घबरा रहीं मृणाल ? आज तो हमारे नेता ही गिरफ्तार हुए हैं, कल तो हमारी ही बारी आयगी ! उस समय तुम क्या करोगी, मृणाल ?

—मैं क्या करूँगी, सो मैं खुद नहीं जानती—मृणाल अत्यन्त गंभीर होकर बोल उठी—मगर मुझे तो भय है कि कहीं आप न गिरफ्तार कर लिये जायँ ! आप अभी तक पूर्ण सबल भी तो नहीं हो पाये हैं......

मृणाल की बातों पर आदित्य हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोला—इतना सबल जरूर हूँ कि जेलखाने जा सकूँ ! चेंज में तो जाना था ही मृणाल, फिर जेलखाना ही क्या बेजा होगा ? मगर मुझे दुख है कि अभया देवी को मैंने क्यो रोक रखा ? आप सकुशल चली गई होतीं तो अच्छा होता......

—अच्छा क्या खाक होता !—इस बार अभया का मुख तमतमा उठा, वह अपनी निर्भय वाणी में बोल उठी—जब आदित्य बाबू जेल जा सकते है तब यह अभया भी खुशी-खुशी जेल जा सकती है।

अभया कभी किसी से पीछे नहीं रह सकती !......मगर अभी तो इन बातों को यहीं छोड़िए। जैसा समय आयगा, देखा जायगा, अभी से उसके लिए क्यों चिंता की जाय ! क्यों परेशान हों ? मगर इतना जरूर है कि अब तो हमें तैयार ही रहना चाहिए, जाने कब किधर से भूत टपक पड़े ! मगर अभी इन बातों पर विचार करना फिजूल है, अब हमलोग उठें। मुझे भूख लग रही है, फिर हमलोग साथ मिलकर खा सकेंगे या नहीं, नहीं कहा जा सकता। चलो मृणाल, महराज से कहो—खाना परोसें। उठिए आदित्य बाबू, चलकर मुँह-हाथ धोइए......और अभया बोलकर उठ पड़ी, मृणाल भी उठी, आदित्य भी उठा। उस दिन की मजलिस आनंद और उल्लास में वहीं खत्म हुई।

भोजन कर चुकने के बाद आदित्य अपने पलग पर आ लेटा। मृणाल और अभया दोनों अपने कमरे में आकर बड़ी देर से गपशप कर ही रही थीं कि इसी समय दरवान भीतर आया। अभया ने उसे अपने कमरे से ही आते देख लिया था, वह कमरे के दरवाजे के पास आकर बोल उठी—क्या चाहते हो ?

—बाहर दालान में बहुत-से कांग्रेसी बाबू आए हैं, बाबू से मिलना चाहते हैं।

—उन्हें कह क्यों नहीं दिया कि बाबू सो रहे हैं ?—अभया ने किंचित रुष्ट होकर ही पूछा।

—कह तो दिया था, बाबू रात को अधिक जागते नहीं हैं।

—फिर ?

—फिर वे कहते हैं कि बहुत जरूरी काम है, अभी मिलना ही चाहिए।

—अभी मिलना ही चाहिए !—अभया ने अपने-आप इन शब्दों को दुहराया, फिर कुछ क्षण तक चुप रहकर बोल उठी—चलो, मैं खुद चलती हूँ ! बड़ी मुश्किल से तो अभी उनकी जान बची है और आए उन्हें तंग करने ! वे सब उन्हें चैन न लेने देंगे।

अभया बोलकर द्रुत गति से दालान की ओर चल पड़ी। मृणाल भी उन दोनों की बातें सुन रही थी, वह भी कमरे से निकली और उस ओर को चल पड़ी।

अभया ने दालान में आकर देखा कि कोई बीस-पचीस की संख्या में काँग्रेसी सज्जन बैठे हैं, सब-के-सब खादी-धारी हैं, सब-के-सब सुसभ्य और सज्जन हैं। मगर सभी की मुख-मुद्राओं पर जिज्ञासा की रेखाएँ इकत्रित हो उठी हैं।

अभया वहाँ पहुँचकर एक ओर खड़ी हो रही, फिर निःसंकोच होकर पूछा—बाबू से आपलोग क्या कहा चाहते हैं ?

सभी ने अभया की ओर देखा, सभी की दृष्टि में वह अपरिचित-जैसी लगी। सब एक दूसरे की ओर देखने लगे। तभी उनमें से एक जरा संकुचित होकर बोल उठा—मगर बाबू से ही कहना ज्यादा अच्छा होता।

—क्यों, मुझसे आप भय खाते हैं!—अभया हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—मगर भय खाने की कोई आवश्यकता नहीं। आपको जानना चाहिए कि, जब मैं इस घर में रह रही हूँ तब जो कुछ मैं कहूँगी—अधिकार-पूर्ण ही कहूँगी, उचित ही कहूँगी।

अभया बोलकर चुप हो रही, क्षण भर वहाँ निस्तब्धता बनी रही, फिर उनमें से एक ने कहा—क्या मृणालिनी देवी भी सो रही हैं ?

—हाँ, मृणालिनी भी सो गई हैं—अभया इस बार कुछ तेज होकर ही बोल उठी—मगर मैं उनकी बहन हूँ और मृणालिनी देवी या आप लोग जो काम करते हैं वही मैं भी करती हूँ, मैं कोई दूसरी नहीं......

—तो आप जानती होंगी, महात्माजी......

—हाँ जानती हूँ कि वे गिरफ्तार हो चुके हैं और उनके साथ अन्य दूसरे भी......मगर आप कहा क्या चाहते हैं, उसे ही साफ-साफ कह डालिए तो ज्यादा अच्छा।

अभया बोलकर जन-समूह की ओर देखने लगी। वातावरण

कुछ क्षणों तक उसी तरह स्तब्ध रहा ; पर स्तब्धता उसी तरह रह नहीं सकी, जब उनमें से कई एकस्वर में बोल उठे—हमें लीड चाहिए······

—लीड !—अभया क्षण भर सोचती रही, फिर गंभीर स्वर में बोल उठी—हाँ, लीड चाहिए ही; मगर इस समय और कोई लीड न करेगा, लीड तो सबसे ज्यादा आपकी अंतरात्मा ही कर सकती है ! जो आवश्यक और उचित जँचे, उसीके आह्वान पर करते जाइए···· अभी और सोचने-विचारने का वक्त नहीं है, ऐसे समय में और सोचना हो ही क्या सकता है ? जब घर में आग लग चुकी है······यह आग युगों के बाद भडकी है, इसे हम-आप रोक भी नहीं सकते······प्रकृति अपना काम करके ही रहेगी। अभी आप लोग जाइए, आराम कीजिए और आराम करने के वक्त अपनी अंतरात्मा से पूछिए, फिर जो वह आज्ञा दे, वही कीजिएगा। बस, अब जाइए, नमस्कार।

सभी आगंतुक सज्जन उठ खड़े हुए। सभी ने एक बार अभया की ओर प्रसन्न दृष्टि से देखा, प्रतिवाद के रूप में कोई कुछ न बोलकर सभी चलने को उद्यत हो उठे। अभया उन्हें विदा कर भीतर आई, मृणाल वहीं खड़ी थी, वह हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही कहा—अच्छी लीड कर आई अभया बहन ?

—क्या इसमें भी तुम्हें सन्देह था मृणाल ? तुम छिप-छिप कर यही सुन रही थीं पगली ?

—नहीं तो······

उसके बाद दोनों अपने-अपने पलंग पर आ लेटीं। आज का दिन हँसते-खेलते ही समाप्त हुआ था, पर रात किस तरह कटी—उसे अभया ने न जाना; पर मृणाल की आकृति प्रातःकाल स्वयं बता रही थी कि उसे रात को खूब गाढ़ी निद्रा न आ सकी।

रात-ही-रात बिजली की तरह चारो ओर गिरफ्तारी के समाचार फैल चुके हैं और रात-ही-रात सभी ने अपनी अंतरात्मा की पुकार सुन ली है। प्रातःकाल उठते ही लगा, जैसे विषाद का बादल सर्वत्र

आकाश में छाया हुआ है, वातावरण अत्यंत ही शुष्क हो उठा है, जहाँ तक दृष्टि जाती है, दीख पड़ता है कि प्रकृति अत्यत अशांत और रुद्र हो उठी है, वह लीलने को जैसे मुँह बाए खड़ी-जैसी दीख रही है। लगता है, जैसे प्रलय होकर ही रहेगा! वायु का वेग इतना सूक्ष्म हो उठा है कि लगता है,··जैसे साँस रुक-रुककर चल रही है, बाल सूर्य की ओर देखकर लगता है कि काल पुरुप की खोपडी को चूर-चूर कर जैसे किसी ने लहू-लुहान कर दिया है, और सर्वत्र जो पूर्व दिशा की ओर लालिमा छा गई है, वह लगता है, जैसे भारतीय नारियों का सुहाग-सिन्दूर सिमिटकर आकाश में छिड़ गया है। राज-पथ पर स्वयं विराट् जन-समूह जैसे कौन-सा निमत्रण पाकर अपने-आप बढ़ा जा रहा है—कहाँ, क्यों जा रहा है, क्या करने जा रहा है, उसे इसका कुछ भी पता नही, फिर भी वह बढ़ता जा रहा है, वह बढ़ भी नहीं पाता, तभी दूसरा, उससे भी बड़ा समूह, आ पहुँचता है, फिर तीसरा, फिर चौथा,—इसी तरह जाने मरण-यज्ञ की तैयारी में घर छोड़-छोडकर बढ़े चले जा रहे हैं। मृणाल छत पर जाकर देखती है और टकटकी बाँधकर देखती रह जाती है, अभया वहाँ जा पहुंचती है, वह देखती है और आप-ही-आप वह बोल उठती है—रुद्र का प्रलयंकर रूप कितना भयावह है, ओह, कितना भयानक? क्या उसका तांडव नृत्य देखोगी मृणाल?

—ताडव नृत्य!—चकित-विस्मित दृष्टि से मृणाल देखने लगती है अभया की ओर, वह समझ नहीं पाती कि अभया उसे क्या कह रही है; मगर अभया उस ओर नहीं देखती—देखती है राज-पथ की ओर, फिर देखती है दूसरी दिशा की ओर—और जिधर देखती है, उधर ही वह पाती है कि उद्दाम गति मे बढ़नेवाले सक्षुब्ध जन-समुद्र में जाने कैसा ज्वार आ गया है! यह संक्षुब्ध-जन-समुद्र क्या यों ही शांत हो जाने को है? जिधर ही वह बढ़ेगा, प्रलयंकर दृश्य दिखाकर ही दम लेगा! कौन ऐसा है जो बढ़ते हुए सागर-प्रवाह को रोक सका है! वह क्या रुकने की चीज है? अभया वहीं से देखती

है—देखती है कि ये जन-समूह कई रूपों में, कई दिशाओं में बँट गए हैं। कुछ तो रेलवे स्टेशन की ओर बढ़कर उत्पात मचा रहे हैं, कुछ सड़कों के बिजली के खंभो, टेलीग्राम और टेलीफोन के तारों को तोड़ रहे हैं। कुछ जन-समूह पोस्ट-आफिस को घेरे हुए हैं, कुछ पुलिस-स्टेशन की ओर बढ़े जा रहे हैं.........अभया अब स्वयं समझ नहीं पाती कि वह क्या देख रही है और जो-कुछ वह देख रही है, वह वास्तव है या केवल स्वप्नमात्र ! आखिर उसे वह क्या समझे, जबकि अपनी आँखों पर ही उसे विश्वास नहीं हो रहा ? वह और वहाँ ठहर कर देखने के लिए पडी नहीं रह सकी, उतर पड़ती है, मृणाल जाने कब उतरकर वहाँ से नीचे आ चुकी है। अभया वहाँ से उतरकर सीधे आदित्य के कमरे में दाखिल होती है, पर वह वहाँ न तो आदित्य को ही पाती है और न मृणाल को ही; फिर वे दोनो कहाँ हैं ? बाहर तो नहीं निकल गए ? ओह, कितना बुरा होगा ? आदित्य अभी-अभी तो बिछावन से उठ सके हैं ? तो क्या वह सचमुच बाहर चले गए ?

अभया ने बडी कठिनाई से दिन काटा, रात काटी, सबेरा हुआ। उसे आशा हुई कि अब तो वे दोनों आ पहुँचेंगे ; पर उन दोनो का कहीं पता नहीं। वह कहाँ जाय, क्या करे ! फिर भी वह दूसरे दिन अपने को रोक न सकी, बाहर निकली, सड़क पर आई और वहाँ से स्टेशन की ओर चल पड़ी; पर स्टेशन तक पहुँच न सकी—उसने पाया कि स्टेशन-रोड का पुल बुरी तरह तोड़ डाला गया है, दूसरी ओर से कुछ लोग इक्के-दुक्के आ रहे हैं, सवारी तो बिलकुल दीख नहीं पड़ती, दूकानें बंद हैं, कोर्ट के आफिसो में ताले पड़े हैं, कागजों का अंबार लगा है, जो बुरी तरह जल रहा है ! जो नगर नयन-मनोहर था, आज वह शंकर की श्मशान-भूमि बन रहा है ! यह संक्षुब्ध आत्माओं का कितना विकट अट्टहास है ! अभया आगे न बढ़ सकी, तभी वह आदित्य-निवास की ओर लौट पडी; मगर, भगवान शंकर को धन्यवाद, अभया के घर पहुँचते ही मृणाल स्वयं हँसती हुई आकर बोल उठती है—कहाँ से आ रहीं अभया बहन ? क्या तांडव-नृत्य देखने गई थीं ?

—तांडव नृत्य !—अभया भवों पर बल डालकर गंभीर वाणी में बोल उठती है—खूब खुलकर देखो तांडव नृत्य, कौन रोकता है तुम्हें और दिखाओ अपने पति देवता को······

तभी दूसरी ओर से पति देवता स्वयं वहाँ आकर हँसते हुए कहता है—यह रुद्र का तांडव नृत्य ही तो है अभया देवी ! क्या बताऊँ, जब से बाहर निकला, एक क्षण के लिए मुझे चैन न मिला। लोगों को समझाता फिरा, ऊँचे मंच पर खड़े हो-होकर कितने भाषण दिए, कितना कहा-सुना, पर कुछ असर न हुआ। नक्कारखाने में भला तूती की आवाज सुनी जाती है ! रात-दिन एक कर दिया, मगर जो होना था, होकर ही रहा, जाने और क्या होनेवाला है, कुछ पता नहीं चलता ! और कबतक ऐसा चलता रहेगा—यह भी नहीं कहा जा सकता ! ओह, वह दृश्य—वह दृश्य, क्या बताऊँ अभया देवी, कितना भयंकर है ! कितना प्रलयंकर है !!

—हाँ,—प्रलयंकर ही तो है, आदित्य बाबू—अभया उदास होकर बोल उठी—अब मैं जा कैसे सकूँगी ! मेरा जाना ही अच्छा था।

—आपके जाने की तो मुझे चिंता नहीं !—आदित्य बोल उठे—मगर डाक्टर चाचा और बाबूजी के लिए अवश्य मुझे चिंता है। वे तो शायद रास्ते में ही रोक लिये गए हों ! तार के कनेक्शन भी तो नहीं रहे ! फिर मालूम हो किया जाय तो कैसे ? यह आग तो सिर्फ यहीं नहीं भड़की है, यह तो सर्वव्यापी है ! भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक ! ऐसा विद्रोह और इतने अल्प क्षण में होकर रहेगा—इसे कौन जानता था ?

और यह विद्रोह एक सप्ताह तक प्रचंड और साधारण वेग में, रुककर, थमकर, फिर थमकर, रुककर चलता रहा। लगा, जैसे चारो ओर से स्वतंत्रता की एक हल्की-सी लहर दौड़ पड़ी है ! सड़कों पर आज़ादी के गीत गाए जा रहे हैं, पार्कों में जो जहाँ बैठे या घूम रहे हैं, सभी की आकृतियों पर एक उल्लास है, आँखों में स्वप्न की रंगीन तस्वीरें हैं—जाने ये कैसी तस्वीरें !

इसके बाद—हाँ, इसके बाद वे दिन आते हैं जिनकी याद खून से लिखे इतिहास के पन्ने देते रहेंगे! वह पकड़-धकड़, वह मार-पीट, वह गोली, वह शूटिंग, वह फाइरिंग !!! मगर जनता की ओर से नहीं—उसकी ओर से जिसे शासन का अधिकार है, वह नादिरशाही, वह नौकरशाही जिसके सामने मनुष्य एक शिकार-मात्र है, उसकी इज्जत, उसकी अस्मत सिर्फ पुस्तकों के पृष्ठों पर लिखी रह गई है......खुलकर गोलीकांड हो रहे हैं, कौन बचेगा—कौन रहेगा—यह वह स्वयं नहीं जानती। औरतें अपनी अस्मत लिये पनाह खोजती-फिरती हैं, बूढ़े और मरणोन्मुख रोगी अपनी बिछावन पर मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे हैं, खोज-खोजकर जवान पकड़े जा रहे हैं। उनपर मार पड़ती है, वे घुटनों के बल दौड़ाए जाते हैं, उनके सामने उनकी पत्नियों, बहनों पर अत्याचार किए जाते हैं, यह सब खुलेआम हो रहा है। घर-घर तलाशियाँ ली जा रही हैं, उनकी घरेलू चीजें लूटी जाती हैं, संदूकें और बक्से तोड़-फोड़कर जेवर और रुपयों से जेबें भरी जा रही हैं। खास कर खादी-धारियों को बड़े सशंक दृष्टि से देखा जा रहा है, उनकी खिल्लियाँ उड़ाई जा रही हैं, उनके हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ डालकर वे लारियों में भरकर जेल पहुँचाए जाते हैं! जिनपर जरा भी सन्देह हुआ, वे छूट न पाए! यहाँ कौन तटस्थ है और कौन कसूरवार—इसे देखने-सुननेवाला है कौन?

और एक दिन खूब तड़के-तड़के एस० पी० कुछ मिलिटरी जत्थों के साथ आदित्य के घर पर आ लगा है और दरवान से कह रहा है—कहो, साहब आया है, वह बाबू से मिलना चाहता है।

दरवान भीतर जाता है और वह आदित्य से सब समाचार कह सुनाता है! आदित्य क्षण भर रुका रहता है, फिर बाहर की ओर चल पड़ता है; मृणाल रोकना चाहती है, पर वह रुकता नहीं, हँसकर कहता है—यह तो मैं जानता ही था मृणाल! सम्भव है, तुम भी न कहीं गिरफ्तार कर लिये जाओ! यदि ऐसा हुआ तो कोई बात नहीं, अगर कहीं तुम बच रहीं तो देखना—तुम अपने रास्ते पर

अडिग रहना, कहीं यह आग बुझने न पाए! हमलोग फिर कभी मिल लेंगे।

मृणाल कुछ क्षण के लिए किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर रह जाती है, आदित्य आगे बढ़ जाता है। वह दालान में प्रसन्न होकर आ पहुँचता है, तभी एस० पी० सूखी हँसी हँसकर बोल उठता है—आइए मिस्टर आदित्य, माफ कीजिएगा, मुझे दुख है कि आज आपको गिरफ्तार करने आया हूँ!

—दुख!—आदित्य मुस्कराते हुए बोल उठता है—इसमें दुख की क्या बात, यह तो आपका कर्त्तव्य ही ठहरा!

—क्या मिसेज आदित्य को बुलाने का कष्ट नहीं कर सकते?—एस० पी० ने अपने गंभीर स्वर में कहा।

—क्यों, उनके नाम से भी वारंट है?

—हाँ!—कहते हुए एस० पी० ने दोनो वारंट अपनी जेब से निकालकर उसके सामने टेबिल पर रख दिए।

आदित्य ने उन्हें उठाकर देखा, फिर हँसते हुए बोला—तो अच्छी बात है, बुलाए देता हूँ!

आदित्य बोलकर उठ पड़ा और उठते हुए बोल उठा—क्या चाय मँगवाऊँ?

—नहीं, धन्यवाद!—अपने रिष्टवाच की ओर दृष्टि डालते हुए एस० पी० बोल उठा—ज्यादा वक्त हो चुका है, चलिए, फिर कभी पी लेंगे!

आदित्य भीतर गया, मृणाल बगल में आकर स्वयं खड़ी-खड़ी सब-कुछ सुन रही थी, वह उससे वहीं मिला और मिलते ही कहा—मृणाल, देखती क्या हो? हम दोनों-के-दोनो गिरफ्तार हैं।

—सो तो सुना, पर इसके लिए आप इतने चिंतित क्यों दीख रहे हैं?—मृणाल बोल उठी—जैसा हमलोग सोच रहे थे, आखिर वही तो होने जा रहा है, कुछ नई बात नहीं; फिर विलंब क्यों? चलिए, कुछ आवश्यक कपड़े और कुछ चीजें तो रख ही लिये जायँ!

फिर दोनों अपने कमरे में आए और जितनी जल्दी बन सका, कुछ चीजे अपने-अपने सूटकेशो में सहेजकर दोनो तैयार हुए। अभया वहीं खडी खडी देख रही थी। उसे लग रहा था कि जैसे कोई तीर्थयात्री अपनी यात्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे हो। अभया उन्हे विदा करने के लिए पहले से तैयार पडी थी। उसने मृणाल के सिर पर सिंदूर लगाया और आदित्य के ललाट पर चंदन की टीका की, फिर एक-एक हार दोनो को पहनाया, उस समय मृणाल सचमुच उच्छ्वसित हो उठी; पर अभया ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—यह क्या मृणाल?

—मुझे अपने लिए कोई दुख नहीं, अभया बहन, तुम्हें अकेली छोड़े जा रही हूँ·····मृणाल के स्वर में कंपन थी!

—अब और ज्यादा रुकना ठीक न होगा, मृणाल—आदित्य बोल उठा—अभया बहन, आप जबतक यहाँ रहना चाहें, रहेंगी; किसी तरह का कष्ट न होने पावे, घर आपका है, सम्पत्ति आपकी है, जब आप जाने लगेंगी—दीवानजी को मेरी ओर से कह दीजिएगा, वे सभी बातों की देखभाल रखेंगे। उनसे मेरी भेंट न हो सकी—इस बात का मुझे खेद है।

और इस तरह दोनो अभया के साथ-साथ बाहर आए। अभया ने दोनों को अपने कार पर बिठाया। एस० पी० ने अपनी कार ले लेने की इजाजत दे रखी थी। एस० पी० भी इसी कार पर आ बैठे। सोफर की सीट पर एक मिलिटरी मैन को बैठा दिया, कार का सोफर बगल की सीट पर बैठा, कार आगे-आगे चल पडी और इसके पीछे-पीछे मिलिटरी से लदी लारी भी।

अभया खड़ी-खड़ी देखती रही, जाने कबतक देखती रही; पर उनकी आकृति पर विषाद की रेखा न थी। वह जानती है कि देश-भक्ति का यही सबसे बडा पुरस्कार है। अपनी मातृभूमि का उद्धार इन्हीं-जैसे पुरुष-सिंहों से हो सकता है, जो अपने जीवन के सारे अरमान—सारी आकांक्षाएँ मातृ-चरणों पर न्यौछावर करने में सतत तत्पर रहते आए हैं। आज अवश्य वे लांछित-अपमानित और त्याज्य समझे जायँ,

पर भविष्य उनके चरणों पर अपना मस्तक झुकाएगा ही, भविष्य का इतिहास अपने पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से उनकी यशःकृति को अंकित करेगा ही। उसे लगा कि क्यों न वह स्वयं इस कार्य के योग्य समझी गई ? क्यों न उसके नाम वारंट निकाला गया ? क्यो न वह स्वय अपने-आपको पकड़वाने के लिए एस० पी० से कुछ कह सकी ? उसे अपने-आप पर ही वितृष्णा हो आई; पर अब क्या होता है ? अब तो मृणाल और आदित्य उसकी दृष्टि से ओझल हो चुके हैं; किन्तु उनका भव्य भवन आज उनके अभाव में उदास, जड़-सा खड़ा, अपनी असमर्थताओं पर पश्चात्ताप की अग्नि में स्वयं तप रहा है। कैसी बेबसी है, कितनी बेबसी !

अभया खड़ी-खड़ी और अधिक न सोच सकी, वह चुपचाप भीतर आई; पर भीतर आकर स्थिर न रह सकी। वह सीढ़ियों की राह ऊपर गई, खुले छत पर पहुँचकर उसने एक बार चारो ओर अपनी दृष्टि डाली, उसने पाया कि लोगों का आना-जाना बिलकुल बंद है। राजपथ योंही जन-शून्य पड़ा उदास-खिन्न होकर जैसे बता रहा है कि वह कितना निःसंग है, कितना असमर्थ, कितना असहाय........

विंश परिच्छेद

अभया के ये दिन कैसे कटे—इसे बताना सहज नहीं है। दीवानजी आते हैं, अभया उनसे आ मिलती है; उनसे बहुत तरह की बातें होती हैं, बहुत तरह के विचार उठते हैं; पर वे किसी काम के नहीं होते, उनसे न तो उसके हृदय को परितृप्ति मिलती है, न आश्वासन मिलता है। दीवानजी वयोवृद्ध व्यक्ति हैं, सज्जन हैं, सहृदय हैं, दयालु हैं। वे अभया को वात्सल्य-पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, उस दृष्टि को पाकर अभया के हृदय में उनके प्रति भक्ति-भाव की सरिता फूट निकलती है, तभी वह कह उठती है—आप तो हैं ही दीवानजी, मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं घर जा सकूँ। पिताजी की क्या अवस्था होगी, चाचाजी किस तरह उद्विग्न हो रहे होंगे!—नहीं, मुझे जाना ही चाहिए—अब तो मुझे जाना ही चाहिए, दीवानजी!

और तभी दीवानजी हँसकर कहते हैं—जाना तो है ही बेटी, मगर जा कैसे सकोगी; अभी तो ट्रेन चलती भी नहीं है। सुना है, अब रास्ते ठीक हो रहे हैं। दो-चार दिन और ठहर जाओ, इसके सिवा दूसरा चारा ही क्या है ?

अभया निरुत्तर हो रहती है। वह स्वयं जानती है कि ट्रेन चलने में अभी कुछ विलंब है। उसके हृदय में उपद्रवियों के प्रति विक्षोभ हो

उठता है, वह घृणा से मन-ही-मन बोल उठती है—क्षणिक आवेश में कुछ-का-कुछ कर बैठना—क्या यही देश-सेवा है? इससे हम क्या स्वाधीनता अर्जन कर सकते है? इसीके द्वारा हम अपनी मातृ-भूमि का त्राण कर सकेंगे? नहीं, यह गलत तरीका है, बिलकुल गलत··· फिर अभया द्वंद्वात्मक स्थिति मे आ जाती है, वह मन-ही-मन अपनी बातों का आप खडन करने लगती है। उसके सामने एक प्रश्न उठ खड़ा होता है—आखिर इन उत्पातो के मूल में कौन-सा विचार काम कर रहा है? क्या वह विचार उपेक्षणीय है? क्या उसका उद्गम शोषित-शासित, अपमानित और अपदस्थ अतरात्मा से नहीं है? वह अंतरात्मा जो पराधीनता के पास में आबद्ध होकर कराह रही है, जिसकी कराह शासको की दृष्टि में एक व्यंग-मात्र है? क्या यह व्यग जले पर नमक छिड़कना नहीं कहा जायगा? क्या यह मानवता का अपमान नहीं है? अपमान?—अभया इसके बाद और अधिक नहीं सोच सकती। सचमुच अपमान शब्द-मात्र के स्मरण से उसके कान की जडे गर्म हो उठती हैं, भवो पर बल पड जाते हैं, उसकी मुट्ठियाँ आप-से-आप बॅध जाती हैं, उसके नथने फूलने लगते हैं और अपने ओठो को दाँतो से कुचलते हुए वह भीतर-ही-भीतर बोल उठती है—तेरा सर्वनाश हो!·········इस बार उसकी आँखें चमक उठीं, दर्प से उसकी आकृति खिल उठी, उसके दृष्टि-पथ पर उस दिन के दृश्य प्रत्यक्ष हो उठे, जब क्षुब्ध मानव का अपार स्रोत जाने कहाँ से फूटकर बह निकला था, वह क्षुब्ध मानव जो अभिशप्त जीवन से ऊब चुका है, जो अपमान से स्वयं जर्जर है······अभया और कुछ सोच न सकी, वह पलंग पर आकर लेट रही······ओह, ये दिन उसके कितनी बुरी तरह कटे!

अब ट्रेन चलने लगी है, उसमें जन-साधारण की संख्या नगण्य है। सच तो यह है कि वह केवल मिलिटरी फोर्स के आवागमन के लिए चलाई जा रही है। अभया आज अपने घर के लिए प्रस्थित हो सकी है, दीवानजी स्वयं उसे पहुँचाने के लिए स्टेशन आए हैं! टिकट

कटा ली गई है, अभया प्लेटफार्म पर आकर ट्रेन की प्रतीक्षा कर रही है। प्लेटफार्म पर यात्रियो की संख्या कम है, अधिकांश पुलिस और मिलिटरी फोर्स बंदूको और बोगचों से लैश इधर-उधर दौड़-धूप लगा रहे हैं, फोर्सों में टामियो और बलूचियों की संख्या ही अधिक है, जिनकी भाषाएँ अभया समझ नहीं पाती। वे अभया की ओर घूरते हैं, कोई सिसकारियाँ भरता है, 'कोई सीटी बजाता है और कोई अश्लील गजलें गाता है......अभया की भवें वक्र होकर रह जाती हैं, तभी ट्रेन आ पहुँचती है। अभया सतर्कता से फर्स्टक्लास के डिब्बे को खोलकर एक बर्थ पर जा बैठती है, उसकी दृष्टि बगल के बर्थ पर जाती है, जिसपर कोट-पैंटधारी एक सज्जन बैठे दीख पडते हैं, उनकी वेश-भूषा से मालूम पड़ता है कि वह कोई ऊँचे दर्जे के अफसर हों! अभया निश्चिंतता की साँस लेकर खिडकी से मुँह बाहर किए बोल उठती है—मैं आपको पाकर बड़ी ही गौरवान्वित और प्रसन्न हूँ दीवानजी! आज मैं निश्चित होकर ही जा रही हूँ। उम्मीद है, आपकी उपस्थिति में आदित्य बाबू के काम-काज......

—काम-काज!—दीवानजी गंभीर होकर बोल उठते हैं—काम-काज चलाने लायक क्या यह शरीर रह गया है, बेटी? आदित्य को बचपन से पाल-पोसकर बड़ा किया है, अभी तो वह लड़का ही है, लड़कपन तो होना ही चाहिए; मगर देखो तो भला, वह अपने मन की ही सदा से करता आया और आज पिंजड़े में बंद है! बहूजी आईं; उम्मीद थी कि आदित्य अब काम पर लगेगा; मगर वह भी उसी रंग में रंग गई......खैर, चिंता की कोई बात नहीं, जबतक मैं उसकी थाती फिर से उसे थमा नहीं देता, तबतक तो......

इसी समय गाडी ने सीटी दी। इंजिन भीम गर्जन कर उठी। दीवानजी की आँखें छलछला आईं और तभी वे बोल उठे—घर जाकर समाचार लिखना बेटी, तुम्हारी याद......

गाड़ी चल पड़ी, अभया ने एक बार पुनः दीवानजी के प्रति अपना नमस्कार ज्ञापन किया। गाड़ी चल रही है, अभया खिड़की की राह

बाहर के दृश्य देखती जा रही है! लाइन के किनारे टेलिग्राम और टेलिफोन के खभे भागते-जैसे दीख रहे हैं, अभया उन्हें गिनती जाती है; पर गिन नहीं सकती, वह उलझ पड़ती है। उसके मस्तिष्क में बहुत तरह की बातें इकट्ठी हो उठती है, वह किसे सँभाले, किसे रखे, किसे भुलावे—वह समझ नहीं पाती। फिर भी मजे में उसकी राह कटती जा रही है, वक्त कटता जा रहा है। ट्रेन आकर स्टेशन पर रुकती है। बहुत चढ़ते हैं, बहुत उतरते हैं, अभया का मन बहल जाता है; वह खुली आँखों स्टेशनों की दुर्दशा देखती है, देखती है कि किसी की दीवारें ढाह दी गई हैं, किसी के खपड़े उधेड़ दिए गए हैं, किसी के किवाड़ और खिड़कियाँ ही गायब हैं! कहीं स्टेशन के मकान जला दिए गए हैं, कहीं मालगाड़ी के डब्बे उलटा दिए गए हैं और कहीं पैसेंजर गाड़ी के डब्बे अधजले कंकाल की याद दिला देते हैं। अभया इन सबकी ओर जब-जब देखती है तब-तब वह अनायास हँस पड़ती है। जाने वह हँसी कैसी है? जाने उस हँसी में समवेदना है या परिहास!

और इस तरह हँसती-देखती और देखती-हँसती हुई जब वह अपने स्टेशन पर गाड़ी से उतर पड़ती है, तब वह पाती है कि वहाँ का स्टेशन तो मानो श्मशान-जैसा भयावह हो उठा है। आग की लपटों से मकान की दीवारें चिटक उठी हैं; लगता है, जैसे वे गलित कुष्ट हों। ऊपर की छावनी जल चुकी है और सभी दीवारें धुएँ से काली हो उठी हैं! आफिस का काम अभी अलग टेंट खड़ा करवा कर किया जा रहा है। मिलिटरी फोर्स का संगीन पहरा है......उतरनेवाले पर कड़ी निगाह रखी जाती है—कौन है, क्या नाम है, कहाँ से आया है, कहाँ जायगा—उनसे पूछे जा रहे हैं। स्टेशन पर अनेक वेश में, अनेक रूप में सी-आई-डी के व्यक्ति इधर-उधर डोल रहे हैं। अभया उतरकर क्षणभर चारो ओर देखती है। उसी समय एक कुली सामने आता है। अभया अपने सामान की ओर उसे इशारा करती है। कुली सामान अपने सिर पर उठाकर गेट की ओर चल देता है। अभया भी चल

देती है। गेट पर टिकट देने के समय एक आदमी उसके सामने आकर पूछता है—आप कहाँ जायँगी ?

—मैं ?—अभया भवों पर बल डालकर बोल उठती है—आइए न मेरे साथ, देखिए कि मैं कहाँ जा रही हूँ !

अभया बिना उसकी ओर देखे, तमककर, जरा तनकर बाहर निकल पड़ती है, पूछनेवाले को फिर हिम्मत नहीं होती कि उसे फिर वह छेड़े ! अभया किराए की गाड़ी पर बैठ जाती है, कुली सामान रखकर अपनी मजूरी लेकर चल देता है, इधर गाड़ी गंतव्य पथ पर चल पड़ती है।

अभया के मन की बड़ी विचित्र दशा है। वह रास्ते में कहीं रुकती नहीं, वह गाड़ीवान से कहती है, इनाम का प्रलोभन देती है, वह उसे जल्द पहुँचाए अपने घर पर, वह बड़ी व्यग्र है, उत्कंठित है घर पहुँचने के लिए। इतनी उत्कंठित वह क्यों है, वह स्वयं नहीं समझती, फिर भी चाहती है कि वह किस तरह जितनी जल्द हो सके—घर पहुँचे। और इस तरह जब अभया अपने दरवाजे पर गाड़ी से उतर पड़ती है, तब किसुन उसके पास पहुँचकर कह उठता है—आ गईं रानी बेटी—आ गईं !

अभया हँसकर कहती है—हाँ, आ गई किसुन ! कहो, अच्छे हो न !

—हाँ, सभी अच्छे हैं !—गाड़ी पर से सामान उतारते हुए किसुन बोल उठता है।

—बाबूजी कहाँ हैं ?—अभया गाड़ीवान को किराया और इनाम के रुपए थमाती हुई पूछती है—अच्छे हैं तो वे ?

—अच्छे ही तो हैं, अभी-अभी राजाबाबू के साथ शायद उनके घर पर गए हैं।

अभया प्रसन्न-वदन दालान होकर अपने कमरे में आती है। रास्ते की लंबी यात्रा की थकावट से वह शिथिल होकर सोफे पर लुढ़क पड़ती

है। किसुन सामान रख जाता है, अभया उसे फिर से बुलाकर पूछती है—अपने गाँव में आन्दोलन कैसा रहा किसुन ?

—आंदोलन !—किसुन चकित-विस्मित होकर बोल उठता है—क्या पूछती हो अभया बेटी, जो कभी नहीं देखा, जो कभी नहीं सुना, वैसा देखना पड़ा, वैसा सुनना पड़ा। और आए दिन क्या-क्या न देखना पड़े ! क्या कहूँ और कैसे कहूँ ?—कहकर किसुन चुप हो रहता है, अभया उसकी ओर अपनी उत्सुक दृष्टि डालती है। उसे लगता है कि वह किसुन कहने के लिए जैसे अपने में बल का संग्रह कर रहा हो, और सचमुच किसुन अपने में बल सग्रह करके ही बोल उठता है—उस दिन जवानों की बात तो अलग रही, हम बूढ़ों की नसों में भी गर्मी आ गई थी, जाने कैसी गर्मी ! आंदोलन के बहुत पहले फारम में जलसा हुआ था, साहब-सूबे आए थे; हाकिम-हुकाम सब आए थे। देखने लायक जलसा था; मगर गाँववाले देखने से रोक दिए गए थे। रास्ते पर पुलिस और चौकीदारों के पहरे बैठाए गए थे ! क्या मजाल कि उस होकर कोई निकल जाय ! यह तो इंतजाम था इजीनियर साहब का ! पूरे साहबी ठाट ! गाँव मे जलसा हो, मगर गाँववाले देखने को तरसा करें ! यह दुख तो था ही, उसके बाद आया आदोलन—और ऐसा कि समझ में न आया कि क्या होनेवाला है। कौन अगुआ था, नहीं कहा जा सकता। बूढ़े-बच्चे-जवान—जो जहाँ थे, सभी घर से निकल पड़े ! न आगे देखा, न पीछे—सभी ने बम बोल दिया। जय माँ काली, जय माँ दुर्गा—कहकर सभी दौड़ पड़े ! कितना बड़ा मजमा था वह, रानी बेटी, कैसे बताऊँ कि वह कितना बड़ा मजमा था !

किसुन बोलते-बोलते आप-ही-आप रुक गया। अभया सुनने को अतीव उत्कठित हो उठी। वह बोल उठी—फिर क्या हुआ किसुन ?

—ओह, क्या हुआ, सो क्या बतलाऊँ रानी बेटी ?—किसुन ने एक गहरी आह भरी, फिर बोल उठा—यह मत पूछो कि क्या हुआ ?

यही पूछो कि क्या नहीं हुआ! सारी भीड़ टूट पड़ी। पहला जोश फारम पर ही पड़ा। उसके मकान जलाए गए, मशीनें बर्बाद की गईं, बिजली के तार टूक-टूक किए गए, गल्लों को तहस-नहस किया गया, कुछ बखारियों में आग फूँक दी गई। उसके बाद थाने की ओर भीड़ चल पड़ी। दारोगा ने आव देखा न ताव, भीड़ पर गोली दागना शुरू किया! नतीजा यह हुआ कि कई आदमी खेत रहे, कुछ घायल हुए, उन मुर्दों और घायलों को देखकर भीड़ तैश में आ गई, तभी थाने पर छापा मारा, बंदूकों की कोई परवा न की, मकानों में आग फूँकी, तभी एक ओर से दौड़े हुए बिरजू बाबू आ पहुँचे। उन्होंने लाख कोशिशें कीं, लाख समझाया, लाख मनाया; मगर वहाँ कौन सुनता है? दारोगा को लोगों ने पकड़ लिया, बंदूक छीनकर आग में फेंक दी गई, वह धधकती हुई आग में उसे निकालने को आगे की ओर बढ़ा, मगर उधर से वह लौट नहीं सका। उसमें जो गिरा तो सँभल न सका। वह वहीं लटपटाकर ढेर हो गया! किसी ने उसके लिए आह तक न भरी! अपनी करनी का फल उसे हाथोंहाथ मिल गया। कुछ कांस्टेबल उसी समय दूसरे कमरे से भागे जा रहे थे, उन्हें भीड़ ने घेर लिया। वे वही थे, जो कुछ देर पहले भीड़ पर गालियों की वर्षा कर चुके थे, अब उन्हीं पर लात-जूते पड़ने लगे। मगर उसी समय किसी ने उन्हें बचा लिया। उसके बाद उन्हें शपथ खिलाई गई, उन्हें चीटें पहनाकर अपने दल में लेकर भीड़ चलती बनी······

किसुन इस बार फिर चुप हो रहा। अभया चकित हो, साँस रोके उसकी सारी बातें सुनती रही, उसके बाद वह बोल उठी—जानते हो, स्टेशन किसने जलाया किसुन?

—किसने जलाया, मुझे नहीं मालूम!—किसुन बोल उठा—सुना कि उस ओर परले सिरे के गाँववालों ने उसे जलाया है, उन लोगों ने ही रेल की पटरियाँ उखाड़ फेंकीं, तार तोड़े, खंभे खोद-खोदकर उखाड़ डाले, मालगाड़ियों को लूटा······

अभया उसकी सारी बातें कान खोलकर सुनती रही, उसके बाद

उसकी ओर देखते हुए बोल उठी—बिरजू बाबू कहाँ हैं, किसुन ? आश्रम का क्या हाल है ?

—आश्रम !—किसुन बोल उठा—आसरम में तो मिलटरी रहती है अब, और बिरजू बाबू तो उसी दिन से फरार हैं !

—फरार ?

—हाँ, फरार हैं ! पुलिस गाँवों में छापा मारती फिरती है। घुडसवार चारो तरफ दौड़ लगाते हैं, मिलटरी दिन-दहाड़े गाँवों पर छापा मारती है, तलाशी लेती फिरती है। चर्खे और करघे निकाल-निकालकर तोड़-फोड़ डालती है, घरवालो पर बेंत पड़ती है, बंदूकों के कुंदे से मार पड़ती है, घोड़ों के टापों से वे रौंदे जाते हैं। जवान औरतें सरे-आम बेइज्जत की जाती हैं······क्या पूछती हो अभया बेटी, इन दिनो बुरा हाल है गाँवों का ! सुना है, सारा कसूर बिरजू बाबू पर थोपा जाता है। उनको पकड़ने के लिए पुलिस रात को किसी भी घर पर छापा मार सकती है। कोई भी गाँव घेरा जा सकता है। पाँच हजार का इनाम सरकार ने सुना रखा है बिरजू बाबू पर ! मगर वह बेचारा तो बेगुनाह है, गुनाह कोई करे और फल कोई भुगते—यह तो अंधेर है—अंधेर······मगर रानी बेटी, सुनने-सुनाने को तो बहुत-कुछ है, मैं जानता ही कितना हूँ ! मैं बॅगले को छोड़कर कहीं जाता भी तो नहीं, फिर सुनी-सुनाई बातों पर इतवार ही क्या ? उठो, रानी बेटी, थकी-माँदी आई हो, नहा-धो लो, महराज भी चौके में होगा—उसे चलकर कह तो दूँ कि तुम्हारे लिए वह थोड़ा जलपान तो बनाकर दे······किसुन कहकर वहाँ से चौके की ओर चल पड़ा।

अभया कुछ क्षण तक उसी तरह पड़ी रही; पर पड़ी न रह सकी, वह उठी और बाथ-रूम की ओर चल पड़ी।

डा० स्वरूप बड़ी रात को घूमते-घामते अपने घर पहुँचे। पहुँचते ही किसुन ने अभया के आने की बात उनसे कह सुनाई। डा० स्वरूप बड़े प्रसन्न होकर अभया के कमरे में आए और आकर देखा कि वह तो बेखबर सोई पड़ी है। उन्होंने उसे उठाया नहीं; वे अपने कमरे में

आकर लेट रहे। उसी समय महराज ने कहा—बाबूजी, आप तो भोजन कर लें।

—क्या अभय ने भोजन कर लिया है?—डा० स्वरूप ने पूछा।

—नहीं, वह तो जलपान करके ही शाम को सो गई हैं, क्या उन्हें उठा दूँ?

—नहीं, नहीं, उसे सो लेने दो, रास्ते की थकी है, थोड़ा रुक जाओ, मैं भी उसके साथ ही खाऊँगा।

महराज बाहर निकल आया। डा० स्वरूप पास के रखे मासिक-पत्र को उठाकर पढ़ने लगे।

अभया नींद में ही चौंक उठी। लगा, जैसे स्वप्न देखकर वह भयभीत हो उठी हो! वह वास्तव में इतनी भयभीत थी कि सजग होकर भी वह जान न सकी कि वह उसका स्वप्न था; पर जब कुछ क्षणों के बाद वह आश्वस्त हुई, तब उसने आँखें मींजीं, वह सजग होकर उठ पड़ी और बाहर आई। उसने पाया कि उसके पिता के कमरे में लैंप बहुत तेज रोशनी दे रही है। उसे लगा कि बाबूजी आ गए हैं और यह विचार उठते ही वह उस कमरे की ओर चल पड़ी। उसने आकर देखा कि वे तो निश्चित होकर एक मासिक-पत्र पढ़ रहे हैं। ठीक उसी समय उनका ध्यान भी इस ओर खिंचा और दरवाजे की ओर देखते ही जरा उठँगकर बैठते हुए वे बोल उठे—आ गईं अभय? कुशल तो है? क्यों, आदित्य नहीं आए?

—आदित्य आते कैसे?—अभया सरल गति में बोल उठी—वे तो इनटर्न कर लिये गए हैं, मृणाल भी इनटर्न हैं—दोनों की गिरफ्तारी साथ-साथ हुई है......

—तो क्या वे दोनों उपद्रवियों में शामिल थे?

—शामिल?—अभया ने स्पष्ट रूप में कहा—वे दोनों तो समझाते फिरते थे; मगर वहाँ मानता ही कौन?

—यही तो मेरा भी खयाल था।

—मगर उस दिन क्या तुमलोग ठीक से पहुँच गए थे बाबूजी?

—पहुँचना क्या इतना आसान था ?—डा० स्वरूप निश्चिंतता की साँस लेकर बोल उठे—उस दिन दुर्भाग्य तो देखो अभय, इंजिन अपने-आप रास्ते में बिगड़ गई। उसे ठीक करने में गाडी सात घंटे डीटेन हो गई, उसके बाद चालू हुई। समझा, क्या हुआ, देर से ही पहुँचेंगे; मगर इंजिन फिर से बिगड गई, फिर उसे चालू करने में चार घंटे लगे। जी भिन्ना उठा, मगर दूसरा चारा क्या था! फिर गाड़ी चल पड़ी, और इस बार चार-पाँच स्टेशन तो मजे में हमलोग आ ही पाए थे कि एक स्टेशन पर गाड़ी आकर रुकी और रुकी ही रह गई। तभी मालूम हुआ कि आगे के स्टेशन से लाइनक्लियर नहीं आ रही है। लगा, जैसे फोन के तार ही काट डाले गए हैं। स्टेशन-मास्टर से खुद मैंने पूछा, उत्तर में उसने कहा कि मालूम नहीं, बात क्या है, कोई जवाब ही नहीं आ रहा है·········हमलोग बडी चिंता में पड़े। स्टेशन बहुत मामूली था, पर संयोग से हमलोगों के पास खाने के लिए पकवान और फल थे। राजा भाई ने कहा—देखते क्या हो, मृणाल ने जो चीजें छिपाकर रख छोडी हैं, उनका उपयोग तो अब करना ही पड़ेगा। खैर, खाने-पीने की दिक्कत तो न रही। उम्मीद थी कि तार ठीक हो जाने पर लाइनक्लियर आयगी और ट्रेन चल पड़ेगी, मगर तभी पिछले स्टेशन से तार मिला कि क्रांतिकारी रेल की पटरियों को उखाड़ रहे हैं, तार काटे जा रहे हैं, सावधानी से काम चलाइए······और सचमुच हमलोगों ने अपनी आँखों देखा—किस तरह हजारों की संख्या में गाँववाले इकट्ठे होकर उपद्रव करने को टूट पड़े हैं। हमलोग ट्रेन से उतार दिए गए। उसके बाद का समाचार बड़ा ही दुखद है! बड़ी मुश्किल से सात मील पैदल रास्ता तय कर गंगा के किनारे पहुँचे, बहुत ज्यादा दाम लगाकर एक नौका ठीक की और उसी पर चढ़कर यहाँ तक आ सके······

इसी समय महराज ने आकर कहा—रसोई ठंढी हो रही है!

—ओह उठो, अभय—डा० स्वरूप उठते हुए बोल उठे—मैं तुम्हारे लिए ही रुका हुआ था। चलो, भोजन कर लें।

दोनों चौके में आकर बैठ गए। भोजन करते हुए अभया ने पूछा—सुना, आनन्द बाबू की बड़ी नुकसानी हुई है।

—नुकसानी तो होनी ही थी, अभय !

—सो क्यो ?—अभया ने अपने पिता की ओर देखते हुए कहा—वह तो कोई सरकारी सस्था है भी नहीं।

—न हो; मगर लोग कैसे समझें ! जब वे लोग समझ बैठे थे कि जहाँ बड़े-बड़े हाकिम-हुक्काम बुलाए जाते है, जहाँ जिले के कलक्टर-जज, एस० पी० और डिवीजन से कमिश्नर और प्रात के गवर्नर तक बुलाये जाते है और साधारण पब्लिक के देखने पर भी रोक लगाई जाती है, पहरे बैठाए जाते है तो वे क्या समझें ? यह जलसा क्या था, जनसाधारण के दिलो पर चोट पहुँचानी थी ! नतीजा साफ था...... और आज सचमुच वह आनन्द आनन्द ही नहीं रह गया ! 'सर' की टाइटिल क्या मिली, उसका सर ही फिर गया ! आदमी इतना बदल जा सकता है, सो उसे ही पाया ! आज तो मिलिटरी का खासा कैंप बन रहा है वह फार्म !

मगर अभया को अपने पिता की ये बातें प्रिय न जँचीं। उसके हृदय में अब भी आनन्द के प्रति आदर है—एक सम्मान है। वह उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं सुना चाहती ! इसलिए वह उसका पक्ष समर्थन करते हुए बोल उठी—मिलिटरी से वह अपने जान-माल की रक्षा न करें तो क्या करें, इसमें उनका क्या दोष !

डा० स्वरूप अभया के स्वर और उनकी बातों को समझ गए और समझकर ही हँसते हुए बोल उठे—जो अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता, वह दूसरो के सहारे अपने को कबतक बचा सकता है अभया ? आज उसके पास कमिश्नर आते हैं, कलक्टर आते हैं, एस० पी०, दारोगा, सी० आई० डी० इंस्पेक्टर सभी आते हैं, फिर भी उसे हिम्मत नहीं होती कि वह खुलकर मैदान में आ खड़ा हो ! भय की जिंदगी भी कोई जिदगी है भला ! कापुरुष दिन में सौ-सौ बार मरा करते और मर-मरकर जीते हैं अभय,—यह तुम्हें याद रखना चाहिए।

आज वह बागी बन बैठा है, वह व्रजेन्द्र को पकड़वाने की ताक में लगा है, उसपर सरकार की ओर से पाँच हजार का इनाम सुनाया गया है। वह बेचारा निर्दोष, जिसने सिवा समझाने-बुझाने के कुछ किया नहीं, उसपर हमले करवाना, वैर साधना नहीं तो और क्या है? वह इसलिए कि उसने निमंत्रण के उत्तर में स्पष्ट कहा था कि जिस उत्सव में बाहर के बड़े-बड़े अफसर तो बुलाए जा रहे हैं मगर निकट के जन-साधारण को उसे देखने से रोका जाता है, उसमें वह भाग नहीं ले सकता! तुम्हीं बतलाओ, व्रजेन्द्र का ऐसा लिखना क्या खुला विद्रोह था? आज वह विद्रोही समझा जाता है, वह अपने को छिपाने के लिए दर-दर की खाक छानते फिरता है, खुफिया पुलिस उसका पीछा करती-फिरती है, संदेह में घरवालों पर मार पड़ती है, उनकी बहू-बेटियों की इज्जत बर्बाद की जाती······

अभया और अधिक सुन नहीं सकती, वह उठकर मुँह-हाथ धोने लगती है, डा० स्वरूप भी हाथ-मुँह धोकर चल पड़ते हैं। अभया साथ हो लेती है और चलते-चलते ही बोल उठती है—क्या व्रजेन्द्र से भेंट नहीं हो सकती, बाबूजी?

—हो सकती क्यों नहीं!—डा० स्वरूप अपने कमरे में आकर बिछावन पर लेटते हुए बोल उठते हैं,—मगर बड़ी सावधानी से मिलना चाहिए अभय! तुम पर भी आनन्द का संदेह है, मगर यही तो खैरियत रही कि तुम बाहर रहीं! अच्छा ही रहा, तुम इस समय व्रजेन्द्र को सहायता पहुँचा सकती हो। वह निर्दोष है और उसे सहायता की आवश्यकता भी है।

अभया कुछ क्षण पिता के सामने खड़ी रह जाती है, फिर वह अपने कमरे की ओर चल पड़ती है।

दूसरे दिन खूब तड़के जब डा० स्वरूप टहलने को बाहर निकल गए हैं, अभया तैयार होकर फार्म की ओर द्रुत-गति से चल पड़ती है। आज का दिन अभया के लिए सब से पहला दिन है जब वह बिना बुलाए फार्म की ओर चल पड़ी है। कुछ ही क्षण के बाद एक

मिलिटरी-जत्था बंदूक कंधों से लटकाए रात की गश्ती लगाकर बातें करते हुए उसी रास्ते पर आ लगता है, जिस रास्ते से अभया जा रही है; मगर उसका ध्यान उसकी ओर नहीं है, फिर भी उसकी बातों पर अवश्य उसका ध्यान है। वह अपने साथियों के बीच कहता जा रहा है—रात को किस तरह एक आदमी चुपके-से बढ़ा जा रहा था और उसे किस तरह हिट किया गया, वह वार मामूली नहीं था. मगर वह कहाँ जा छिपा—इसका पता न लगा। न भी लगे, मगर गोली खाकर कबतक जीता रह सकता है.........बशर्त्ते कि वह फरार साबित हो जाय.........

—फरार!—अभया भीतर-ही-भीतर काँप उठी, उसे रह-रहकर याद आता है कि फरार तो व्रजेन्द्र भी है! तो क्या वह व्रजेन्द्र के प्रति ही कहा जा रहा है? वह सदा से चौकस रहनेवाला आदमी इस तरह गोली खा जाय, क्या यह संभव है? अभया अपने आप में इस बात का समाधान न पा सकी। वह जिस तरह बढ़ती जा रही थी, बढ़ती ही रही......वह जब आनन्द-निवास के निकट जा पहुँची, तब उसने दूर से ही देखा कि आनन्द फार्म के चौराहे पर कुछ व्यक्तियों के साथ खड़े-खड़े बातें कर रहा है; पर अभया उस ओर न जाकर उसके बँगले की ओर गई। बँगले पर एक पुलिस-कांस्टेबल बंदूक लिये फेरी लगा रहा है, उसने अभया को हाते के भीतर घुसते ही गंभीरता से पूछा—किनको खोजती हैं आप?

—जिनका यह बँगला है, उनसे एक जरूरी काम है मुझे!—अभया ने सीधे तनकर कहा।

—वह अभी बाहर हैं, भीतर मत आइए।

—सो मैं जानती हूँ, वह बाहर चौराहे पर खड़े हैं, उन्हें खबर दो—कहकर अभया द्रुत-गति से कमरे के बरामदे पर आकर टहलने लगी।

उसी समय अभया का एक परिचित आदमी बँगले से निकला।

उसने डा० अभया को देखा और सलाम करके मुस्कराते हुए पूछा—ओह, आप है ! क्या साहब को खबर दूँ ?

—हाँ खबर दो, कहो, डा० अभया आपसे मिलना चाहती हैं ।

वह आदमी भीतर से बैठने के लिए एक कुर्सी निकाल लाया और अभया से कहा—आप बैठिए तबतक, मैं जाकर खबर दे आता हूँ—कहकर वह आदमी चौराहे की ओर चल पड़ा ।

अभया को ज्यादा देर बैठना न पड़ा, आनंद अपने हंटिंग सूट में लैश, छड़ी घुमाता हुआ एक ओर से आकर हँसता हुआ बोल उठा—ओह, आप अभया देवी ! नमस्ते ! कब आईं ?

—नमस्ते आनंद बाबू !—अभया उठ खड़ी हुई और बोली—मैं कल पिछली पहर ही आ गई थी, मगर मैं इधर न आ सकी ।

—मगर अभी कैसे आईं ?

—आती कैसे नहीं—अभया कुछ रुष्ट होकर बोल उठी—क्या मेरा आना गुनाह था ? फिर हँसकर बोली—आजकल आप तो पूरे साहब बन बैठे ! मुझे यह मालूम न था, नहीं तो वैसा इंतजाम कर आती !

—क्या करूँ, साहब बनना पड़ा है !—आनंद निःसंकोच बोल उठा—इसके बगैर तो काम चल सकता नहीं । जान इतनी सस्ती नहीं, अभया देवी !

—कौन कहता है, इतनी सस्ती नहीं है ?—अभया ने व्यंग से ही कहा—दिन-दहाड़े आदमियों का शिकार किया जाता है, गोली के निशाने बनाए जाते हैं, यह सस्ता सौदा नहीं तो क्या है ?

—क्या आप यही कहने आई हैं ?—आनंद ने अभया की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा ।

—नहीं, मैं आपको धन्यवाद देने आई हूँ !—अभया व्यंग के रूप में तनकर बोल उठी ।

—धन्यवाद ?

—हाँ, धन्यवाद ही तो !—अभया उसी तरह फिर बोल उठी—

और इसलिए कि आपसे जितना बने, आप सरकार की मदद करें! लोगो के घरो की तलाशी करवाएँ, उन्हे बेंत लगवाएँ, उनकी बहू-बेटियों की इज्जत को खाक में मिलाएँ, भेड़-बकरियो-जेसा उनके साथ सलूक करें। आज आप 'सर' हैं, कल आप और कुछ बनेंगे! जो-कुछ बनना हो, जितना बनना हो, यह वक्त भागा जा रहा है, बन लें; दिल में कोई हविश बाकी न रह जाय! फिर ऐसा वक्त कब नसीब हो! कौन जानता है—नसीब हो—न भी हो! अच्छा, मैं चली और आपसे कुछ कहना नहीं है, और आपसे मैं कुछ आशा नहीं रखती ····· मेरा नमस्ते लीजिए, इन बातों पर ठंढे दिल से फिर कभी विचार कीजिएगा। अगर मेरी कभी जरूरत महसूस हो तो मैं हाजिर हूँगी······

अभया तीर की तरह बाहर निकल पड़ी, आनंद से कुछ कहते न बना। अभया उसके मुँह पर इतनी बातें कर गई, वह कान पटाकर सुनता रहा। उसके चले जाने पर भी वे बातें अब भी उसके कानों में उसी तरह गूँज रही हैं। वह उसी तरह शून्य दृष्टि से बाहर की ओर देखता रहा, जाने कबतक देखता रहा·····

अभया वहाँ से चलकर सीधे राजा बानू की हवेली में गई, वह चाची से मिली, भाभी से मिली; पर रुकी नहीं, केवल थोड़े-से शब्दों में मृणाल और आदित्य का समाचार सुना गई। वह राजा बानू से मिलना चाहती थी, पर उनसे भेंट न हुई। वह ठहरी नहीं, उसे घर-घर घूमना था। उसे पता लगाना था कि कहाँ कैसा गुजरा है, कहाँ कौन-सी मुसीबत अबतक है। वह जहाँ जाती है, प्रश्नों की झड़ी लगा देती है, और उत्तर में जो-कुछ सुन पाती है, सुनकर चल देती है। इस तरह घूमते-फिरते वह एक गाँव से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में पहुँचकर चंपी के घर जा पहुँचती है; पर चंपी दीख नहीं पड़ती, वह लौट पड़ती है। अब वह कहाँ जाय—सोचकर उसका पाँव आगे नहीं उठता। वह कुछ थमक जाती है, तभी एक ओर से चंपी दौड़ी हुई आती है और आकर बोल उठती है—कब आई अभया बहन, कब आई?

—कल शाम को आई हूँ, चपी, सब कुशल तो है ?—अभया बोलकर उसकी ओर देखने लगती है।

चपी की आँखों में आँसू आ जाते हैं, उसका गला रुद्ध हो जाता है और रुद्ध गले से ही बोल उठती है—कुशल तो उनके साथ ही चली गई, अभया बहन !

—तो क्या मंगल नहीं है ? क्या हुआ था उसे ?

—हुआ था क्या—सो मैं पीछे कहूँगी, अभया बहन !—चंपी चारो ओर देखती हुई बोल उठी—आओ, मेरे साथ, घर पर आओ, रास्ते-पैंड़े में तो यह सब बात कही नहीं जा सकती !

चंपी आगे-आगे बढ़ी, पीछे-पीछे अभया चली। चंपी अपने आँगन में आकर ओसारे पर एक टूटी-सी खाट डालकर उसे बैठने को कहकर उसके सामने खड़ी हो रही। जब अभया बैठ गई, तब चंपी ने कहा—वह तो बहादुर थे, बहादुरों की ही मौत मरे ! दारोगा की गोली का शिकार सबसे पहले उन्हीं को तो होना पड़ा, जब थाने पर……

और न सुनाओ चंपी,—अभया सहानुभूति के स्वर में बोल उठी—यही तो बड़ी दुखद बात है !

—क्या कहती हो अभया बहन, यह दुखद बात है !—चंपी गम्भीर होकर बोल उठी—नहीं, यह तो गलत बात है ! मरना किसे नहीं है बहन ? मगर इस तरह बहादुरी की मौत वही मरता है जिसका कलेजा उतना ही मजबूत रहता है ! कुत्ते-बिल्ली की मौत भी कोई मौत है अभया बहन ! वैसी मौत तो हिजड़े पसन्द करते हैं, मर्द नहीं ! वह शराबी जरूर थे, जुआड़ी जरूर थे, मगर वह मरना भी जानते थे। जबतक आश्रम में काम करते रहे, शराब हाथ से नहीं छुई, अपने आका के बफादार बनकर ही रहे। चाहे गलती समझो चाहे सही, वह मजमें में सामिल हुए, उस समय बिरजू बाबू आश्रम में न थे—कहीं बाहर थे, शायद वे मौजूद रहते तो उन्हें रोक लेते; मगर रोक कैसे और कौन सकता था, जब कि उन्हें इसी राह से मौत के घाट उतरना था ! बिरजू बाबू अब भी उनके लिए दुखी हैं……

—क्या ब्रजेन बाबू से तुम्हारी भेंट होती है ?

चंपी इस बार मुस्कराई और मुस्करा कर ही बोली—भेंट कैसे न होगी। उनकी (मंगल की) जगह मैं ही तो उनके काम आ रही हूँ, अभया बहन !

—यह तो बड़ी अच्छी बात सुनाई तुमने, चंपी !—अभया उसकी पीठ थपथपाती हुई उल्लास में बोल उठी—तो क्या उनसे भेंट हो सकेगी ? वे कहाँ हैं ?

—कहाँ हैं, यह बतलाना तो मेरे लिए भी मुश्किल है, अभया बहन !—चंपी बोलती चली—वह तो एक जगह टिककर रहते नहीं। जान कितनी जोखिम में है—तुम खुद समझ सकती हो ! मगर जब उनसे भेंट होगी, तुम्हारे बारे में कहूँगी और खुद मैं तुम्हें खबर पहुँचाऊँगी ·····समझी।

—अच्छी बात है, चंपी—अभया इसबार उठ पड़ी और उठती हुई बोल उठी—जरूर मुझे खबर देना चंपी, भूल न जाना।

—यह क्या कहती हो, अभया बहन—भूल जाऊँगी ? और तुमको ?

इस बार अभया बाहर की ओर चल पड़ी, दरवाजे तक चंपी पहुँचाने आई और उससे अलग होने के समय वह धीरे से बोल उठी—देखना, अभया बहन, दूसरों को इस बात का जरा भी पता न लगे ! कौन दोस्त है और कौन दुश्मन—इस वक्त समझना मुश्किल है।

अभया हँस पड़ी और हँसती-हँसती ही बोली—ठीक है, री चंपी, ठीक है, मगर खातिर जमा रखो·····

अभया वहाँ से निश्चिंत होकर घर की ओर चल पड़ी।

एकविंश परिच्छेद

कौन दोस्त है और कौन दुश्मन !—चंपी की बात अब भी अभया के कानों में गूँज रही है। विद्रोह जब फूटकर निकलता है तब वह स्वयं फैसला सुना जाता है कि सावधान रहो, दुश्मन उतनी हानि नहीं पहुँचा सकता, जितना दोस्त पहुँचा सकता है ! मगर यह बात सर्वांश में सच्ची नहीं कही जा सकती ! संभव है, अधिकांश में यह ठीक हो भी, पर कुछ ऐसे भी दोस्त जरूर मिलते हैं, जो शांति काल से अधिक भयंकर स्थिति में ही सबसे ज्यादा काम आते हैं और मरकर काम आते हैं। जिस व्रजेन्द्र पर गाँववाले एक दिन अपना सर्वस्व न्यौछावर करने में अपना गौरव समझ रहे थे, आज विपत्तिकाल में पड़े उसी व्रजेन्द्र को कोई अपने घर पर आश्रय देने में भी आगा-पीछा करते हैं—आगा-पीछा ही नहीं, अधिकांश आदमी तो यही चाहते हैं कि कब वह किनारे लगे और कब गाँव शांत हो ! पर जब वह व्रजेन्द्र हठात् किसी के घर आ पहुँचता है, तब वह मुँह पर कुछ नहीं कह सकता, बल्कि उसका समादर ही करता है और जो कुछ वह आज्ञा करता है, उसे पूरा करने में भी नहीं हिचकता। अभया गाँव में आकर—चक्कर लगाकर ये सब बातें जान गई है ! उसे इन बातों पर हँसी नहीं आती, दुख होता है ! दुख होता है

इसलिए कि मनुष्य अपने स्वार्थ के सामने कितना जल्द घुटने टेक देता है !

मगर व्रजेन्द्र आज जितना ही लांछित है, उपेक्षित और विताड़ित है, उतना ही अभया उसके प्रति सजग है, उतना ही उसके प्रति वह सदय भी। पर व्रजेन्द्र है कि वह उसे ऐसा अवसर ही नहीं देना चाहता। वह नहीं चाहता कि वह अभया को अपने स्वार्थ के लिए विपत्ति में डाले, उसका जीवन संकटापन्न बनाया जाय। वह जिस सकट से अपने-आप गुजर रहा है, जिन कष्टों के बीच उसके प्राण घिरे हैं, वह चाहता है कि उसका सपूर्ण उपभोग वह स्वयं करे—उसमें किसी का हिस्सा न बटाए। मगर, इन कष्टों के बीच रहकर भी वह किसी का अनिष्ट नहीं चाहता, उसके जीवन का जो मिशन है, उसपर वह अब भी अडिग है, अचल है ! वह पूर्ण-रूप से सेवा-व्रती है, पूर्ण-रूप से स्वाधीनता का परम पुजारी है। वह जब कभी गाँव आता है तो उसका मतलब साफ है कि वह अपने लिए नहीं आया है, किसी और के लिए आया है—जो बिलकुल निःसहाय है, निःसंबल है—नितांत निःस्व है। उसके सामने उपेक्षा कोई मूल्य नहीं रखती, उपहास कोई अर्थ नहीं रखता। 'वह इससे ऊपर है—बहुत ऊपर ! वह उपेक्षित-जीवन को इसलिए नहीं ढोता कि उसे मरने से भय लगता है, वरन इसलिए वह उपेक्षित होकर भी जीना चाहता कि उसका जीवन किसी और के लिए वास्तव में जीवन हो उठा है। वह अपने अपेक्षितों के लिए उपेक्षाओं को मुक्तावली की तरह गले का हार बनाकर रखना चाहता है और इसीलिए जी रहा है, उसके जीवन का यही एक लक्ष्य है—यही एक उद्देश्य है……

अभया प्रतीक्षा लगाए बैठी है, वह घर से बाहर नहीं निकलती—नहीं निकलती, इसलिए कि कब चंपी कोई खबर लेकर आ जाय और उसे न पाकर खाली लौट जाय ! मगर चंपी का पता नहीं ! वह चंपी पर झुँझलाती है, मन-ही-मन बिगड़ती है; पर बिगड़कर भी चंपी को वह पा नहीं रही। तो क्या व्रजेन्द्र इन दिनों चंपी से मिला नहीं ? तो

फिर वह है कहाँ ? कहाँ जा छिपा है वह ? कौन बतायगा कि वह है कहाँ······

एक रात को जब वह खा-पीकर बिछावन पर आ लेटी है, तब येही प्रश्न बार-बार उसके सामने आते हैं, पर इनका समाधान वह कर नहीं पा रही ! इसी अवस्था में वह अपने पिता के कमरे में आ पहुँचती है और आते ही बोल उठती है—क्या व्रजेन्द्र का कुछ पता न दे सकोगे बाबूजी ? एक बार भी तो उनसे भेंट हो जाती······

डा० स्वरूप तकिए के सहारे उठँगकर बैठते हुए बोल उठते हैं—व्रजेन के बारे में कह रही हो अभय ? सच तो, इन दिनों तो उसका कुछ पता नहीं चलता······वह गाँव में आया होता तो जरूर मुझे खबर लग गई होती; मगर इतनी व्यग्र क्यो हो अभय ? वह खुद चौकस रहनेवाला आदमी है, जहाँ कहीं होगा—आराम से होगा······उसके लिए चिता कैसी ? चिंता तो उसके लिए करनी चाहिए जो निरीह है, कमजोर है।

उसी समय अभया को उस दिन की बात याद हो आती है जब मिलिटरी का जत्था रास्ते में कहता जा रहा था गोली लगने की बात—और उसी के आधार पर चिंतित होकर अभया बोल उठती है—यह तो मैं भी जानती हूँ कि वह कमजोर नहीं हैं, जहाँ कहीं होंगे, आराम से होंगे; मगर मुझे तो भय है, कहीं गोली के शिकार तो वह नहीं हो गए ? सुना है, इधर एक आदमी पर, जब कि वह अंधकार में भागा जा रहा था, किसी फौजी सिपाही ने गोली चलाई है—और शायद उसे गोली लगी भी है······

—भगवान के नाम पर ऐसा न कहो, अभय—डा० स्वरूप स्थिर-शांत होकर बोले—वह कोई और हो सकता है, व्रजेन्द्र नहीं······सच कहता हूँ व्रजेन्द्र नहीं !

इसके बाद कुछ क्षण तक डा० स्वरूप शांत होकर चुप हो रहे, फिर आप-ही-आप बोल उठे—यह जो आशका तुम्हारे हृदय में घर

कर गई है, वह शायद अस्वाभाविक नहीं। प्रियजनों के प्रति आशंकित हो उठना स्वाभाविक ही है, अभय !

अभया पिता के वचनों से प्रसन्न न हो सकी, वह लजाई और लज्जा से उसका मस्तक आप-से-आप अवनत हो गया। डा० स्वरूप ने एक बार उसकी ओर अपनी दृष्टि डालकर देखा कि वह अबतक सिर झुकाए उसी तरह पड़ी थी, पिता की दृष्टि से वह छिपी न रह सकी। उन्होंने उस दृष्टि में जो कुछ पाया, वह स्वाभाविक था। उनका हृदय कुछ क्षण के लिए विह्वल हो उठा, फिर उन्होंने उसी क्षण के भीतर अपने को संयत किया, फिर वे बोल उठे—आशंका मुझे भी कुछ कम नहीं हो रही है, अभय ; पर मैं इतना जरूर समझता हूँ कि व्रजेन अपना मिशन पूरा कर चुका है, उसके हृदय में अपनी मातृ-भूमि के प्रति कितना अनुराग है, वह उसके कार्य से स्पष्ट दीख रहा है ! इतना त्याग कुछ साधारण त्याग नहीं अभय ! आज जिस ओर से निकलता हूँ, उसकी ही चर्चा होती है; पर उसका मूल्य आँकनेवाले आज कितने हैं ? जवाहर का पारखी कोई जौहरी ही हो सकता है, कुँजड़े नहीं ! यहाँ तो कुँजड़े-ही-कुँजड़े ठहरे, फिर अगर वे अपनी दृष्टि से चाहे जो कह लें, उसकी कीमत ही क्या ?

—मगर यही तो दुख की बात है, बाबूजी !—अभया अपने उत्तेजित स्वर में बोल उठी—जिसने अपनी सेवा अर्पित कर गाँवों में जान फूँकी, जीवन डाला, देखने और परखने की दृष्टि डाली, आज वे ही गाँव उनके प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं—इससे अधिक और क्या दुखद होगा, बाबूजी ? हमारा पतन साधारण पतन नहीं है। हम इतने गिरे हुए हैं कि कौन अच्छा है और कौन बुरा—अपने स्वार्थ के निकट इतना भी परख नहीं सकते ! आज वह बागी समझा जाता है, देश का दुश्मन और जाने क्या-क्या लोग उसे कहा करते हैं·····

—यह उनका दोष नहीं, अभय, उनके संस्कार का दोष है—डा० स्वरूप शांत स्वर में बोल उठते हैं—वे क्षमा के पात्र हैं ! जिन्हें

समझने का ज्ञान नहीं. वे ऐसा कहते हैं तो इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। हीरा हीरा ही रहेगा और कंकड़ कंकड़ ही।

अभया और ठहर न सकी, वह अपने कमरे में आई और बिछावन पर लेट गई।

प्रातःकाल हुआ। डा० स्वरूप अपने नित्य के कार्य-क्रम के अनुसार टहलने को निकल गए हैं। अभया उठी है, वह अपने नित्य-नैमैत्तिक कामों को पूरा कर अपनी फुलवारी में टहल रही है, लगता है, जैसे उसे और कोई काम करने को मिल नहीं रहा है। वह कहाँ जाय, क्या करे—कुछ निश्चय कर पा नहीं रही है। फिर भी वह निश्चिन्त होकर ही अपनी भाभी से मिलने को निकल पड़ी।

हाँ, अभया अपनी भाभी से ही मिलने आ गई है, उससे आज बहुत-सी बातें कहनी-सुननी हैं। उसके सिवा दूसरा है ही कौन जो उसके हृदय के अत्यन्त निकट हो। भाभी प्रसन्न-वदना है, हास्यमुखी है, विदग्ध-हृदया है, उसकी वाणी में सरसता और आँखों में मधुरिमा है। आज उसी भाभी के निकट आकर अभया कुछ कहना ही चाहती है कि तभी भाभी स्वयं उससे कह बैठती हैं—आजकल मेरी अभया बहन को जाने कैसे पर लग गए हैं कि एक क्षण के लिए भी फ़ुर्सत नहीं मिलती। उस दिन मैं कितनी रोकती रही, मगर रुक न सकीं। क्या आदित्य बाबू के निकट जाकर यही सीख आई, अभया बहन ?

अभया मुस्कराई और मुस्कराती हुई बोली—आदित्य मुझे क्या सिखलाते भाभी, वे तो अभी निरे बच्चे हैं ! सीखना तो आपसे चाहती हूँ जो अपनी विद्या में किसी से सानी नहीं रखतीं। कहिए भाभी, और कितने दिन ? कब आप मुँह मीठा करती हैं ?

इस बार भाभी हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—इसका जवाब मुझसे अधिक तो कोई डाक्टर ही दे सकता है ! और आप तो स्वयं डाक्टर हैं......

—वाह, यह तो खूब कही भाभी !—अभया उसी तरह हँसती हुई बोली—गठरी तो आप ढोएँ और वजन मैं बताऊँ ? ऐसा तो कहीं

देखा नहीं। मगर यह कहने से काम न चलेगा भाभी, देखती हूँ, आप मिठाई खिलाना नहीं चाहती······

—मिठाई से कब इनकार है ?—सिर झुकाकर हँसती हुई भाभी बोली !

मगर यही कहकर ठग न सकोगी, बहूरानी—हठात् चाची स्वयं वहाँ आकर बोल उठी—अभया बेटी आती है और इसी तरह लौट जाती है, यह क्या ठीक है ? तुम केवल मीठी-मीठी बातों में इसे भुलाकर रखना चाहती हो बहूरानी—मैं खूब समझती हूँ ! मगर आज इस तरह मैं अपनी बेटी को कैसे जाने दूँगी ? देखो, जलपान तैयार हो चुका होगा—ले आओ।

—मुझे इससे कब एतराज है, चाचीजी !—अभया हँसती हुई बोली—चाहे यहाँ खाऊँ चाहे वहाँ, बात तो एक ही है, चाचीजी ! खाना तो वहाँ भी मिल सकता है; मगर भाभी की मीठी बातें तो वहाँ नहीं मिल सकती ! जभी तो मैं उन्हें पाने को यहाँ दौड़ पड़ती हूँ ! क्यों, भाभी ?

इसबार भाभी और अभया दोनों हँस पड़ीं, चाची ने भी उस हँसी में योग दिया।

भाभी हँसती हुई बाहर की ओर दौड़ पड़ी। इधर चाची ने मृणाल और आदित्य का सविस्तर समाचार जानना चाहा। सच तो यह कि इसे ही जानने के लिए वह स्वयं यहाँ आ पहुँची हैं। अभया ने भी इसे समझा और उसने एक-एक कर वहाँ की सारी बातें कह सुनाईं। चाची ने स्थिर-शांत होकर सारी बातें सुनीं और सुनकर बोल उठी—आदित्य कितना पागल है बेटी, क्या बताऊँ ! जो खाने-खेलने के दिन थे, वे दिन जेल में कटेंगे—यह कितना दुर्भाग्य है ! मगर मृणाल को देखकर मुझे और भी दुख होता है, एक पागल रहे तो रहे—दोनों-के-दोनो पागल ! मैं तो पहले से ही जानती थी कि देश-सेवा कोई फैशन नहीं है, वह तो खाँड़े की धार पर चलना है ! मगर उस दिन मृणाल ने सुनकर हँस दिया था······

···मृणाल तो उस दिन भी हँस रही थी, चाचीजी, जब वह जेल जाने के लिए कार पर आ बैठी।······और पागल होने की बात कहती हो, चाचीजी, पागल बने बगैर कुछ मिला भी है कहीं?

—खाक मिला है!—चाची जरा खिन्न होकर ही बोली—उस दिन यहाँ के लोग भी तो पागल बने थे! जाने कैसे-कैसे उत्पात न किए! मगर नतीजा क्या निकला? पुलिस और फौजी सिपाही चक्कर लगा रहे हैं, घुड़सवार आदमी को आदमी नहीं समझते! लोगों पर मार पड़ी, बेगुनाह जेल में डाले गए······आज बेचारे व्रजेन बानू की कैसी दुर्दशा हो रही है? छिपने को भी जगह नहीं मिलती······

व्रजेन्द्र का नाम सुनकर अभया सजग हो उठी। उसे लगा कि वह क्यों यहाँ दौड़ी आई, शायद उसका समाचार लेकर चंपी इतजार करते-करते थक न गई हो? वह अब क्या करे, कैसे कहे अपनी चाची को कि उसे अब जाना ही चाहिए। वह भीतर-ही-भीतर अत्यन्त ही चंचल हो उठी, मगर चंचलता को छिपाए बोली—ठीक कहती हो चाचीजी, पागलों को इसी तरह की सजाएँ मिलनी ही चाहिए।

इसके बाद झटपट अभया उठ खड़ी हुई और खड़ी होती हुई बोली—मैं बानूजी से बगैर मिले ही आ गई थी चाचीजी, अभी मुझे घर जाना ही चाहिए।

—मगर, यह कैसे होगा, अभया बेटी, भाभी जो जलपान लाने गई है······

—जलपान उसी जगह जाकर कर लेती हूँ, चाचीजी!—अभया हँसती हुई बोली—जलपान क्या मैं योंही छोड़कर चली जाऊँगी—कहकर हँसती हुई अभया वहाँ से बाहर की ओर दौड़ पड़ी, ठीक उसी क्षण भाभी उधर से बहुत-सी चीजें थाली में भरकर उसी ओर आ रही थी, बीच रास्ते में ही अभया को आते हुए देखकर बोल उठी—मैं तो आ ही रही थी, अभया बहन······

मैं तो आपको ही देखने जा रही थी भाभी!—अभया हँसकर

उसके पास आकर बोली—मैंने देखा कि भाभी चुपचाप वहीं बैठकर खाने तो नहीं लगीं, क्यों न चलकर वहीं उन्हें पकड़ूँ !

—और आपने पकड़ ही लिया ?

दोनो एक दूसरे को देखकर हँस पड़ीं। मगर अभया हँसते-हँसते ही बोली—सुबह-सुबह मुझे जलपान करने की आदत नहीं, भाभी, मैं न खा सकूँगी। मगर आप तो योंही मुझे छोड़ेंगी नहीं, तभी तो मुझे कुछ खा लेना पड़ेगा—कहकर अभया ने थाली उनके हाथ से ले ली और झपटकर बरामदे के टेबिल पर उसे रखकर वह वहीं खड़ी-खड़ी खाने लगी। भाभी हँसती हुई बोली—इस तरह नहीं खाया जाता, अभया बहन......

—इसी तरह खाया जाता है जरूरत पर, भाभी!—अभया मुस्करा कर ही बोली—फौजी सिपाही इसी तरह लड़ाई के मैदान में खाते हैं, यह तो सुना होगा भाभी ?

—तो क्या आप भी फौजी सिपाही हैं ?—भाभी हँस पड़ी।

—कौन नहीं जानता—मैं फौजी सिपाही से कुछ कम नहीं हूँ !

फिर दोनों हँस पड़ीं। अभया सचमुच चंचल हो उठी थी, उसने बड़ी चतुराई से अपने लिए छुट्टी निकाली। वह वहाँ अटकी हुई न रह सकी, पानी पीकर मुँह पोछते-पोछते वह बाहर की ओर चल पड़ी। भाभी समझ नहीं सकी कि उसे इतनी जल्दी क्या है ! वह अपनी जगह अचल-अटल खड़ी हो उसकी ओर देखती रही।

उपसंहार

घर लौट आने पर अभया को न तो चंपी मिली और न कोई समाचार ही; मगर उसने पाया कि उसके पिता बरामदे पर की आराम-कुर्सी पर लेटे हैं, उनके सामने कुछ और लोग हैं, जो बीमार हैं, जिन्हें या तो दवा लेनी है या सलाह······अभया की ओर दृष्टि जाते ही डा० स्वरूप उत्कंठित हो बोल उठे—कहाँ से आ रहीं अभय ?

—राजा चाचा की हवेली से बाबूजी, क्यों ?

—क्या तुम्हें मालूम है कि रात को रामपुर में घेरा पड़ा था, सुना है, गोली चली है ?

—रामपुर में !—अभया ने चकित-विस्मित होकर पूछा—किसने कहा, बाबूजी ?

—रास्ते में ही मालूम हो गया था अभय, जब मैं टहलकर वापस आ रहा था।

—तो क्या कोई मरा भी है ?

—मरा तो नहीं, मगर दो-एक को गोली जरूर लगी है।

—लगने दो इन अभागों को—कहकर अभया भीतर की ओर जा रही थी कि डा० स्वरूप ने कहा—ये पुर्जे लिये जाओ अभय, दवा दे दो।

अभया भीतर से ही बोली—भेज दो रोगियों को खिड़की पर बानूजी, मै वहीं जाती हूँ।

अभया के लिए यह अच्छा रहा, उसे काम मिल गया। इसी तरह वह अपने काम के भीतर अपने को कुछ घंटे लगाए रही। जब यह काम शेष हुआ, तब निश्चित से वह बाथ-रूम की ओर गई और बड़ी इतमीनान के साथ उसने स्नान किया, कपड़े बदले, केशों को सुखाया, तेल मले, कंघी की, फिर खाना खाया। इस तरह जब वह अपने सारे कामो से छुट्टी पा गई, तब वह अपने कमरे में आराम करने आई। उसे दिन को सोने की आदत न थी, इसलिए सोई नहीं, लोट-पोट करती रही, पर लेटे-लेटे ही उसे नींद हो आई और गहरी नींद·········

और इस तरह जब उसने नींद पूरी कर आँखें खोलीं, तब झुटपुटा हो चुका था। उसने आँखें खोलते ही पाया कि वहाँ तो चंपी जाने कब से आकर टेबिल के एक सिरे पर बैठी उसके उठने की प्रतीक्षा कर रही है! अभया धड़फड़ाकर उठ बैठी और उठते-उठते ही बोली—क्या हाल है री चंपी?

—हाल अच्छा नहीं है, अभया बहन!—चपी उसके पास आकर कानों-कानो में बोली—उन्हें गोली लगी है, उनका बुरा हाल है, तुम्हारी बड़ी जरूरत है अभया बहन!

—मेरी जरूरत है उन्हें, यह क्या कहती हो चंपी?

—हाँ, ठीक कहती हूँ अभया बहन, तुम्हीं उन्हें बचा सकती हो।

—मगर वह है कहाँ अभी?

—सो मैं तुम्हारे साथ रहूँगी!

अभया कुछ क्षण मौन साधे जाने क्या सोचती रही, फिर आप-ही-आप बोल उठी—तो क्या करना होगा, चंपी! मेरी समझ में नही आता कि मैं क्या करूँ।

—करना क्या होगा अभया बहन।—चंपी जरा मुस्कराई—घबराओ नहीं, अभया बहन! मैं जो कहती हूँ सो सुनो। यहाँ से तो

किसी सवारी पर चलो, मैं भी तुम्हारे साथ रहूँगी। कोई पूछे तो कह देना कि जगदीशपुर के ठाकुर साहब के घर बीमारी देखना है। वहाँ तो तुम गई ही हो, उन तक जाने में कोई दिक्कत है भी नहीं। वहाँ जाकर दूसरी सवारी का इंतजाम करना होगा। तुम तो घोड़े पर चढ़ती हो भी, तुम्हें कुछ दिक्कत न होगी, उनके हाथी पर भी जा सकती हो, जरा जंगल का रास्ता है······मैं वहाँ कह भी आई थी, शायद अब तो सवारी आ भी जानी चाहिए······

अभया उठकर बाहर गई; उसने मुँह-हाथ धोया, फिर अपने कमरे में आकर चीड़-फाड़ के औजारों को ठीक किया और कुछ आवश्यक दवाइयाँ अपने हैंडबेग में भर-भराकर, कपड़े बदलकर वह तैयार हो उठी। सवारी आ चुकी थी, तबतक संध्या की छाया सघन भी न हो पायी थी कि अभया गाड़ी पर आ बैठी, चंपी को भी उसने अपने पास ही बैठा लिया! गाड़ी यथासंभव तेज चाल में चल पड़ी। जगह-जगह आदमी तैयार थे। चंपी का काम अभया को एक हद तक पहुँचा देना था। वह गाड़ी से जगदीशपुर गाँव के बाहर ही उतारी गई। वहीं दो तेज घोड़े मिले, अभया गाड़ी से उतरकर चंपी से बोली—क्या तू मेरे साथ न जायगी चंपी?

—नहीं, अब तो ये आपके साथ जायँगे, मैं नहीं।

अभया कुछ न बोली, वह घोड़े पर चढ़ी। दूसरा आदमी घोड़े पर चढ़ा। चंपी ने अस्त्र और दवा की पेटी उसे थमाई। वह आगे बढ़ा, अभया पीछे चली। दोनों अंधकार में बढ़ते रहे—बढ़ते रहे—अंधकार के सिवा और कुछ देखने में न आया। हाँ, जंगलों में इधर-उधर कुछ सियार अवश्य भूँक-भूँककर अपने अस्तित्व का परिचय दे रहे थे। अधिक नहीं, दो घंटे के भीतर वे लोग पद्मा के एक किनारे आकर रुक गए। अगला आदमी रुककर बोल उठा—अब हमलोग नाव पर चलेंगे, —कहकर उसने टार्च की लाइट फेंकी ·····प्रकाश में अभया ने देखा कि पास ही एक छोटी-सी नाव बँधी पड़ी है, उसमें ऊपर से

छप्पर डाला हुआ है, जिसके भीतर शायद दो-एक आदमी लेटे पड़े दीखे........

उस आदमी ने कहा—उतरिए न आप, घोड़े छोड़ दीजिए यहीं, आदमी है यहाँ, आकर बैठिए नाव पर......

अभया आकर चुपचाप नाव पर बैठ गई, वह आदमी भी दवा की पेटी के साथ आ बैठा। नाव खोल दी गई। कई टेढ़ी-मेढ़ी दिशाओं को पारकर नाव एक जगह आ लगी। अभया ने अलग से ही देखा कि एक जगह से प्रकाश की क्षीण रेखा आ रही है, शायद वह जुगनू की कतार हो......पर नहीं, वह जुगनू की कतार न थी, अभया की नाव वहाँ आकर टकराई, तब उसे पता लगा कि वह भी तो नाव ही है और तभी उसे भीतर से कराह की आवाज भी सुन पड़ी......

अभया इस नाव से चलकर उस नाव पर गई। उसपर भी छप्पर डाला हुआ था और दरवाजे पर कपड़े के पर्दे पड़े हुए थे। अभया ने पर्दे को हटाया, भीतर घुसी, वहाँ उसने पाया कि वृजेन मोटे गद्दे पर लेटा पड़ा है, उसके बदन के खून से वहाँ की जगह बुरी तरह पट रही है, उसके पास कुछ नौजवान बैठे प्रत्याशित दृष्टि से उसकी ओर देख रहे हैं। लैंप धीमी गति में जल रही है......

अभया ने सबसे पहले लैंप की बत्ती तेज की और उसके तीक्ष्ण प्रकाश में उसने एक बार वृजेन की आकृति की ओर देखा। वृजेन भी उसे देखकर प्रसन्न-वदन कुछ बोलना ही चाहता था कि अभया स्वयं ही बोल उठी—यह क्या देख रही हूँ व्रजेन बाबू?

यही तो देखने को बुलाया है, अभय!—वृजेन मुस्कराया और तकिए के सहारे उठने को उद्यत हुआ। मगर अभया ने उसे उठने न दिया? वह बोल उठी—नहीं, आप इसी तरह पड़े रहें, हिलना-डोलना आपके लिए ठीक नहीं।

अभया घाव की जगह को गौर से देखने लगी, देखा—कुछ घाव तो साधारण हैं सही, पर छाती का घाव बड़ा ही सांघातिक है। उसे देखकर अभया आप-ही-आप सिहर उठी; पर उसने अपने को तुरत

सजग किया और सजग होकर ही बोली—क्या आप बता सकेंगे कि सबसे ज्यादा कहाँ दर्द है ?

—सबसे ज्यादा तो छाती में ही है, अभय !—वृजेन बोला—मेरा खयाल है, यहीं से पहले गोलियाँ निकाल दो। भीतर तीर की तरह टीस मार रही है·····

अभया ने अपनी पेटी मँगवाई और उन बैठे हुए लोगों से कहा—अगर आपलोगों को विशेष कष्ट न हो तो आपलोग उस नाव पर चले जाइए। मुझे अपने तरीके से ही अपना काम करना होगा और वह काम मैं अकेली ही अच्छी तरह कर सकूँगी।

वे सब-के-सब चुपचाप दूसरी नाव की ओर बढ़े।

अभया ने अपनी साड़ी के पल्ले को अपनी कमर में लपेटा, पेटी खोली, औजार झनझना उठे, फिर उसने इंजक्सन की दवा निकाली, सिरिंज में भरी। उसे इंजेक्ट किया और तब वह हँसकर बोल उठी—आप डाक्टर की छुरी सह सकेंगे, वृजेन बाबू ?

—जो बंदूक की गोलियाँ सह सकता है, वह क्या डाक्टर की छुरी सह नहीं सकेगा ?—वृजेन के ओठो पर हँसी आ गई—तुम्हें मैं अपनी ओर से अधिकार दिए देता हूँ, अभय, तुम्हें जहाँ चीरना हो, जिस तरह चीरना हो—चीरो, निर्भय होकर चीरो, मैं आह तक न लूँगा।

—आपसे ऐसी ही आशा रखती हूँ, वृजेन बाबू !

अभया बड़ी मुस्तैदी से लग गई। उसके दोनों हाथ बड़ी तेजी से चल रहे थे, उसकी छुरी चल रही थी, अनेक छोटे-बड़े अस्त्र काम में लाये जा रहे थे। वह इस तरह काम में लगी थी जैसे वह अपने-आपको भूल चुकी है, वहाँ केवल खच-खुच के सिवा और जैसे कुछ सुन ही नहीं पड़ रहा हो। घावों से, बड़ी सावधानी से, गोलियाँ निकाली जा रही हैं, मगर छाती का घाव कुछ साधारण नहीं। यद्यपि वृजेन ने कह रखा है कि वह सब कुछ सह लेगा, तथापि अभया सावधान है कि ऐसी अवस्था में उसे किस तरह काम लिया जाना

चाहिए। और वह जो कुछ कर रही है, अपने प्रत्युत्पन्नमतित्व और पूर्ण निश्चिंतता के साथ ही कर रही है। अनवरत तीन घंटे के बाद अभया एक बार निश्चिंतता की साँस लेकर बोल उठती है—अब तो मेरा खयाल है, उस तरह का दर्द न होना चाहिए। क्यों ?

—ठीक कहती हो, अभय, अब मैं मरूँगा नहीं, जी गया, जी गया, अभय !—बृजेन्द्र मुस्करा उठा।

ब्रजेन ने उठने की कोशिश की, पर अभया ने उसे बीच में ही रोककर फिर से अच्छी तरह लिटाते हुए कहा—आप लेटे ही रहिए, अभी तो इनपर पट्टियाँ बाँधने जो हैं..........अभी काम पूरा हुआ कहाँ है ?

अभया अब क्षत स्थानों को साफ करती जा रही है और उसके साथ इधर-उधर की बातें भी हँस-हँसकर करती जाती है। इस तरह बृजेन का मन भी बहल रहा है और अभया का काम भी पूरा हो रहा है। इसी तरह बात-ही-बात में अभया पूछ बैठती है—अगर मैं बाहर से घर पर न आ गई होती तो आज यह काम कौन करता, ब्रजेन बाबू ?

ब्रजेन हँस पड़ता है और हँसते--हँसते ही कहता है—तुम रुक कैसे सकती थीं, अभय ? विल-फोर्स (आत्म-शक्ति) की बात तो तुमने पढ़ी ही होगी ?

—ओह, जाना !—अभया जरा भवों पर बल डालती हुई कहती है—क्या आपका विल-फोर्स इतना जबर्दस्त है कि......

—सो मैं कैसे कहूँ,—बीच में ही बात काटकर ब्रजेन बोल उठता है—मेरा ज्यादा है या तुम्हारा ? मुझे लगता है कि तुम्हारा ही विल-फोर्स काम कर गया, अभय, नहीं तो मैं तुम्हें एक तरह से भूल ही बैठा था, तुम्हारी याद भी न रही इन दिनों। और याद रखकर ही क्या करता, जब कि तुम्हारी अनुपस्थिति में यहाँ सब-कुछ हुए, मैं स्वयं इसमें उलझा, भागा-भागा फिरा, काम तो कुछ रह भी नहीं गया है, सारी कांग्रेस जेल के सीकचों में बंद है, कुछ मुझ जैसे अभागे इधर-

उधर डोल रहे हैं ; मगर उनकी सुनता ही कौन है ?······फिर तुम याद आतीं कैसे ?

—मगर मैं आई कैसे ?

—अभी तो मैं कह रहा था—व्रजेन मुस्कराया—जानती हो अभय, मरने के समय सबसे अधिक उसकी याद आती है जो सबसे अधिक आत्मीय हैं ! तुम नहीं जानतीं—तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में कितना आदर है ! वह इसलिए नहीं कि तुम अच्छी कार्यकर्त्ता रहीं, इसलिए नहीं कि तुम विदुषी हो, इसलिए नहीं कि, तुम्हें भगवान ने अपने हाथों रचने में कोई कंजूसी नहीं की है; पर इसलिए कि मुझे लगता है, तुम मेरे लिए ही ऐसी तैयार होकर आई थीं। मैं तुमसे बहुत बार झगड़ चुका हूँ, बहुत बार तुम्हारी झिड़कियाँ भी सही हैं; पर मैंने तभी यह भी पाया है कि, कोई है जो मेरे हृदय के भीतर घुसकर कह रहा है कि मैं यहाँ हूँ—यह जगह मेरी है······

व्रजेन्द्र कुछ क्षण चुप साधे पड़ा रहा, फिर अभया का हाथ अपनी छाती पर रखते हुए वह बोल उठा—देखो, अभय, यहीं जो देख रही हो जिस जगह से तुमने कुरेद-कुरेद कर गोलियाँ निकाली हैं—क्या तुम नहीं पातीं कि वहाँ वह तुम्हारे भीतर की चीज घुसकर पड़ी हुई है······

व्रजेन्द्र अभया की तलहथी को अबतक छाती पर रखे हुए है, अभया उसे वहाँ से हटाती नहीं, पर बोल उठती है—तुम्हारी बातें कुछ समझ में नहीं आतीं, तुम क्या कह रहे हो ? मगर तुम चुप रहो, तो अच्छा !

इस बार व्रजेन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़ता है और हँसकर ही कहता है—चुप तो हो लूँगा अभय, मगर इस समय नहीं ! आज हमलोग जिस क्षण में मिल रहे हैं, वह क्षण क्या फिर कभी आनेवाला है ?······इस जीवन में······इस जीवन में !

—यह पागलपन की बात न सुनाओ, व्रजेन ! लेट जाने की

कोशिश करो, ज्यादा बोलना अच्छा नहीं ! मैं कहे देती हूँ—मैं कुछ नहीं सुना चाहती !

—क्या सच कह रही, अभय, सुना नहीं चाहतीं ? सच कहती हो ?—व्रजेन्द्र टकटकी लगाकर अभया की ओर देखने लगता है।

—देखो, ज्यादा बोलना अच्छा नहीं !

व्रजेन्द्र कुछ क्षण तक चुप रहता है, फिर बोल उठता है—लो भई, लो मैं कुछ नहीं बोलता। अब तो खुश हो अभय ?

—हाँ, बहुत खुश !

व्रजेन्द्र कुछ क्षण तक जाने क्या सोचता रह जाता है ! पर उसके लिए चुप रहना असह्य हो उठता है। लगता है जैसे वह अपने को बरबस रोक रखने में समर्थ नहीं हो रहा ! वह अभया की ओर सतृष्ण नयनों से देखते हुए मुस्कराकर आप-ही-आप बोल उठता है—मुझे अब न रोको प्रिय......मुझे बहुत-सी बातें जो कहनी हैं ! लगता है जैसे मैं उन्हें कह नहीं पा सकूँगा......आज ही वह अवसर मुझे मिला है, हाँ, इसी क्षण ! मुझे कहने से न रोको अभय ! जो मैं कहा चाहता हूँ, उसे कह लेने दो, फिर शायद मैं कहने के लिए रुका नहीं रहूँगा ! मगर तुम चुप क्यों हो गईं, अभय—मेरी प्रिय ?......तुमसे कुछ सुनने को मेरा हृदय अधीर हो उठा है। जीवन में सब कुछ सुना—घृणा भी सुनी, व्यंग भी सुने, प्रशंसा भी सुनी, पर प्रिय कहकर पुकारनेवाला मुझे कोई न मिला। मुझे क्या नहीं मिला—आदर मिला, सम्मान मिला, घृणा और वितृष्णा भी मिली—सब कुछ मिला ! मेरा सौभाग्य ! क्या नहीं पाया ? पर, एक यही नहीं पाया ! आज प्रेम के बिना यह पृथ्वी कितनी कदर्य हो उठी है ! क्या यह नहीं मिलेगा, अभय, क्या कहती हो, यह मिलेगा नहीं ?

अभया सिर झुकाए पड़ी ये सब बातें सुन रही है; पर वह पा नहीं रही कि वह उत्तर में क्या कहे ? क्या करे वह ? उसे लगता है—यह उद्वेग तो शुभ लक्षण नहीं ! यह तो एक संकेत है—जिसे वह जानती है ! उसका पौरुष यहीं शेष हो जाता है ! उसका नारी-

हृदय चंचल हो उठता है। वह अपने-आप में अत्यंत ही भयभीत हो उठती है; वह कठोर-कर्मा नारी ममतामयी हो उठती है। उसका नारीत्व अपने आराध्य देव के चरणों में प्रणिपात होने को आतुर हो उठता है। वह उसकी ओर अपलक दृष्टि से निहारने लगती है! लगता है जैसे उसके रूप को अपनी मुँदी पलकों के बीच छिपा रखना चाहती हो वह! उसका हृदय भर आता है, उसकी समुज्ज्वल आँखें आँसुओं से गीली हो उठती हैं; पर वह बलपूर्वक अपने-आप को संयत करती है और कुछ साहस का संग्रह भी, तभी वह बोल उठती है—मैं हाथ जोड़ती हूँ, तुम बको नहीं—चुप रहो! थोड़ी नींद लाने की कोशिश करो, मैं तुम्हारे केश सहलाए देती हूँ।

और अभया उसके केश सहलाने लगती है! व्रजेन्द्र कुछ देर के लिए शांत-शिथिल हो पड़ता है। अभया प्रसन्न-बदन उसकी ओर देखती रहती है। व्रजेन्द्र निश्चित हो आँखें मूँद चुपचाप पड़ा रहता है। लगता है जैसे वह बहुत आराम से लेटा पड़ा हो। अभया की उँगलियाँ उसके केशों में उलझी पड़ी हैं और वह अपलक नेत्रों से उसकी सौम्य आकृति की ओर निहार रही है। वह पाती है कि उसके प्रफुल्ल मुख-मंडल पर अनिर्वचनीय शांति और सुषमा परिव्याप्त हो रही है! वह अपने-आप में प्रसन्न-प्रफुल्ल हो उठती है, उसे अपनी सफलता पर संतोष होता है। उसे लगता है कि इन पिछले कुछ दिनों में वह व्रजेन्द्र जो इतना सर्व-प्रिय था, आज औरों के लिए कितनी वितृष्णा का पात्र हो उठा है! फिर भी वह उस अभया के लिए अब भी कितना महान है? ओह, कितना महान! मगर आज जो अपने-आप में इतना महान है, जिसके हृदय में देश के प्रति इतनी ममता है, उसका मूल्य जन-साधारण की दृष्टि में क्या रह गया है? क्या देश-सेवा का यही मूल्य है? हाँ, यही तो—यही तो! जभी तो इसे आज छिपने के लिए जगह नहीं मिलती, आश्रय नहीं मिलता, न कोई अपेक्षा, न उपचार, न सगे-संबंधी, न हित-मित्र! अभया इससे अधिक सोच नहीं सकती, उसका हृदय वितृष्णा से भर उठता है और

जितना ही वितृष्णा से भर उठता है, उतनी ही उस उपेक्षित व्रजेन्द्र के प्रति उसकी श्रद्धा उमड़ पड़ती है। इसी समय सहसा व्रजेन्द्र सजग हो उठता है और सजग होकर ही बोल उठता है—तुम्हें याद है अभय ? एक दिन प्रथम-प्रथम मैं गया था तुम्हें आमंत्रित करने को ? याद है तुम्हें—याद है ?

—हाँ, याद है।

—हाँ, याद तो होगी ही। वह एक चिर-स्मरणीय घटना है ! तुमने एक दिन मेरा आमंत्रण स्वीकार किया था अभय, और मैं धन्य हुआ था तुम्हारी स्वीकारोक्ति को सुनकर। वह तुम्हारा मुझपर अतिशय अनुग्रह था और वह अनुग्रह मैं एक-रस आजतक तुमसे पाता रहा। लगता है, वह आमंत्रण आज पूरा हो रहा है ! उस दिन मैं ही क्या जानता था कि वह आमंत्रण आज तुम इस रूप में पूरा करोगी !

अभया इस बार और भी सशंकित हो उठती है। वह समझ नहीं पाती कि इन अनर्गल बातों का क्या उत्तर दे उसे। वह अपने-आप में व्यथित हो उठती है, और उसी व्यथा को लेकर बोल उठती है—क्यों तुम इस तरह अनर्गल बके जा रहे हो ? नींद लाने का प्रयत्न करो !—कहकर अभया बड़े स्नेह के साथ धीरे-धीरे उसकी छाती सहलाने लगती है।

व्रजेन्द्र की आकृति प्रसन्न दीखने लगती है और प्रसन्न-वदन ही वह बोल उठता है—तुम्हारे स्पर्श-मात्र से मेरे हृदय में कितनी शांति मिल रही है अभय ? ओह, यह स्पर्श······यह स्वर्गिम स्पर्श ······ अभय······अभय यह स्पर्श !······व्रजेन्द्र भावावेश में आ जाता है गौर उसे अपनी ओर खींच लेता है ! वह उसकी छाती पर झुक पड़ती जेन्द्र का हाथ उसकी पीठ पर आ पड़ता है और उसे अपनी यों से थपथपाते हुए बोल उठता है—इसी तरह मेरी छाती पर हो, अभय ! ओह, कितनी ज्वाला थी यहाँ ? मगर तुम्हारा ······तुम्हारा स्पर्श······छाती ठंढी हुई जा रही है ! ओह, एक

बात कहूँ अभय ? अभय, तुम कितनी मेरी अपनी हो ! मैं नहीं जानता था कि तुम मेरे हृदय के इतने निकट हो ! मगर, हाँ, अभय, एक बात कहूँ ? कहूँ अभय ? मानोगी ? बोलो ? बोलो ?

अभया मंत्र-मुग्ध की तरह टकटकी बाँधे उसकी ओर देखती हुई बोल उठती है—कहो, क्या कहते हो।

—क्यों, संकोच तो नहीं कर रहीं अभय ?

—नहीं।

—तो एक बार प्रिय कहकर मुझे पुकारो न, अभय ! प्रिय, हाँ, बस इतना ही।

इस बार अभया की आँखें आँसुओं से छलछला उठती हैं, उसका सारा शरीर काँप उठता है और काँपते हुए स्वर में कहती है—नहीं-नहीं, प्रिय नहीं !

व्रजेन्द्र विहँस उठता है, उसकी आकृति विहँस उठती है और उसी रूप में वह बोल उठता है—मैं इतने से ही धन्य हुआ, प्रिय ! मेरे जीवन की एक बड़ी प्यास मिटी !—व्रजेन्द्र की दोनो बाहें उसके शरीर को लता-जैसी आवेष्ठित कर लेती हैं, अभया कुछ नहीं बोलती, अपने-आपको वह ढीली कर छोड़ती है ! लगता है, जैसे यह प्रगाढ़ आलिंगन कितना सुखमय हो, कितना स्वर्गोपम !! कुछ क्षण तक दोनों अपने-आपको भूल बैठते हैं, फिर व्रजेन्द्र प्रकृतिस्थ होता है और आप-ही-आप बोल उठता है—सचमुच आज मैं धन्य हुआ, अभय ! आज ही मैंने जाना कि प्रेम क्या है ! आज ही मैंने जाना कि प्रेम जीवन के लिए कितना अपेक्षित है ! पर, कर्त्तव्य···कर्त्तव्य···अभय ?

—कहो।

—मैं तुमपर एक भार सौंपना चाहता हूँ, अभय, क्या तुम उसे स्वीकार करोगी ?

—स्वीकार !—अभया कुछ क्षणों तक उसके मुख की ओर देखने लगती है, फिर बोल उठती है—हाँ स्वीकार है, तुम कहो और मैं उसे स्वीकार न करूँ ? जो भी आज्ञा होगी··कहो···

ब्रजेन्द्र कुछ कहता नहीं, उसकी उँगलियाँ पास के फैले रक्त की ओर बढ जाती हैं; मगर अभया की दृष्टि उधर नहीं जाती, ब्रजेन की अनामिका रक्त से आरक्तिम हो उठती है, और उसी अनामिका से अभया के समुज्ज्वल-ललाट पर एक गोल-सा टीका लगाते हुए वह अपनी प्रसन्नता में बोल उठता है—आज रक्त का सिंदूर ही तुम्हारा सुहाग-सिंदूर बने, अभय ! अपसे हृदय के प्रज्वलित अग्नि-देव ही साक्षी हों और यह मरण-सेज......हाँ, मरण-सेज ही हमारी पुष्प-शय्या बने......अभय !

और अभया कुछ क्षण तक विस्मय-विमुग्ध हो किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो उठती है, फिर आप-ही-आप सजग होती है, उसकी मुख-श्री नव परिणीता की सहज-सरल लज्जा से और भी स्निग्ध हो उठती है, तभी ब्रजेन्द्र पाता है कि अभया विनम्रता-पूर्वक दोनों हाथों को अपने सिर से लगाए उसके चरण-तल पर पड़ी है !

ब्रजेन्द्र धीरे-से उसे उठाता है, अभया की आँखें आँसुओं से भरी दीखती हैं, ब्रजेन्द्र उसकी ओर देखते ही रह जाता है, अभया सिर झुकाए पड़ी है, जाने क्या सोच रही है वह......

ब्रजेन्द्र बोल उठता है—अभय !

—कहो !—अभया सिर झुकाए ही छोटा-सा उत्तर देती है।

—मरण-सेज पर जिस रक्त से तुम्हें अभिनन्दित किया है, अभय, वह एक स्मृति-चिह्न बनकर रहे और यह उस समय तुम्हें बल पहुंचाये जब कभी तुम अपने-आप में कमजोर हो पड़ो ! मैं अपने कर्त्तव्य-पथ पर अविचल रहा; जब जैसा मुझे आमंत्रण मिला, तब वैसा ही करता चला। इसके अतिरिक्त मैं कुछ और न कर सका ! पर मैं अपनी मातृ-भूमि को स्वतन्त्र न देख पाया; फिर भी मुझे उसके लिए दुख नहीं ! मैं अपने कर्त्तव्य में सच्चा रहा, ईमान्दार रहा—मेरे लिए यही बहुत है ! मैंने अपना काम कर लिया है, मेरा काम आग भड़काना था—वह आग जो निष्प्राण जीवन में प्राण फूँकती है, अकर्मण्य को कर्मण्य बनाती है, कायर में पुंसत्व भरती है......आग ही तो है जो मनुष्य

को जिंदा रखती है ! शीतलता मृत्यु है और उष्णता जीवन ! आज उसी उष्णता की आवश्यकता है—हमारी नशो मे, रगों में······आज उसी आग की जरूरत है, हमारी पराधीना माता की आजादी के लिए···उसी आग की जरूरत है बूढ़ों में, बच्चों में, जवानो में······जर्रें-जर्रें में······आकाश में, अंतरिक्ष में······बाहर-भीतर—सर्वत्र ! वह अग्नि···वह लपलपाती हुई आग···हाँ, वह आग जो सदियों से राख बनी पड़ी है, उसे बड़ी मुश्किल से संजोया है,···बड़ी मुश्किल से हमारे देश-बधुओ ने इसके महत्व को समझा है······अभय······वह आग······मैं चाहता हूँ, वह बलती रहे, वह बुझने न पाय······मैं हिन्दू हूँ और आर्य-शास्त्रो को मै जानता हूँ—श्रद्धा भी करता हूँ, मुझे पुनजन्म पर विश्वास है। मैं जबतक फिर लौटकर नहीं आता तबतक यह आग···प्रतिक्षण···प्रतिपल जलती रहे···यही मेरी अंतिम साध है····"

व्रजेन इससे अधिक न बोल सका। उसकी आँखें अभया की ओर लगी है जिनमें स्पष्टतः एक जिज्ञासा है। अभया एक बार उसकी ओर देखती है और अपनी अभय-निर्भय वाणी में वह बोल उठती है—

तुम्हारी आज्ञा मेरी सिर-आँखो पर ! मैं प्रयत्न करूँगी, प्रिय ! प्रयत्न करती चलूँगी ·····जिससे यह आग बुझने न पाय।

—क्या सच अभय ? ऐसा कर सकोगी ?

—हाँ, सच मानो, अभया एक बार 'हाँ' कहकर 'ना' कहना नहीं जानती। जबतक आपकी अभया जीती रहेगी—इस आग को अपनी आत्मा की तरह संजोए रहेगी·········यह अग्नि ही आज से इसकी देवता रही, यही धर्म और यही कर्म ! तुम विश्वास मानो, प्रिय······इसके लिए चाहे जो भी कुर्बानी मुझे······चाहे जो भी बलिदान·······सच मानो, यह आग बुझने न पायगी।

—हाँ, बुझने न पाय !

व्रजेन्द्र की आँखें प्रसन्नता से चमक उठती हैं। लगता है जाने

उसे कैसी तृप्ति मिल रही है। अभया भी सप्रसन्न उसके विहँसते मुख-मंडल की ओर देख रही है।

पर, यह क्या? अंतिम दीप-शिखा की तरह व्रजेन्द्र की आँखें तिलमिलाने लगती हैं, फिर एक जोर की हिचकी उठती है और उसी हिचकी के साथ......ओह, यह क्या? अभया घबरा उठती है, उसके मुँह में पानी डालती है, पर व्यर्थ! एक आग थी, बुझ गई, एक चिनगारी थी, अंतिम चमक दिखलाकर वह सदा के लिए निभ गई!

अभया उसकी छाती पर उसी तरह पड़ी हुई है, लगता है जैसे उस छाती से चिपककर कितनी आत्म-विभोर हो उठी हो वह! वह अब भी उसी तरह उसकी छाती पर पड़ीं हुई है, न चीखती है वह, न रोती है, न कुछ बोलती ही है। उस समय रात्रि का अवसान हो रहा है, लैंप की बत्ती फीकी पड़ गई है, पौ फटने-फटने को है, तभी वह सुनती है—बाहर कुछ दूर से पपीहे की हूक भरी—दर्द भरी पुकार—पी कहाँ-पी कहाँ !!

— समाप्त —